CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सं० ४६९

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य प्रकाशन

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

Recd 25/11/84

प्रधान सम्पादक	सितम्बर, 1983	सम्पादक
जगत नारायण	[पृष्ठ 889—1228]	पूरन सिंह कर्नवाल

[1983] 3 उम० नि० प०

उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित विधि की अद्यतन जानकारी के लिए उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के महत्वपूर्ण मुद्दों का प्रकाशन पत्रिका के इस अंक से प्रारम्भ किया जा रहा है। यद्यपि उपर्युक्त मुद्दों का प्रकाशन अनुवाद के आधार पर किया जा रहा है तथापि सम्बद्ध निर्णयों का प्रकाशन पत्रिका के आगामी अंकों में यथावत् होता रहेगा। —सम्पादक

विधि साहित्य प्रकाशन

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मन्त्रालय (विधायी विभाग), भारत सरकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Fouhdation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1983 उम० नि० प० सितम्बर, 1983 अंक

शुद्धिपत्र

पृष्ठ सं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
मुख्य पृष्ठ	नीचे से पंक्ति सं० 5	उपर्युत	उपर्युक्त
(ii)	पंक्ति 13 के बाद "उच्चतम न्यायालय के (प्रकाशनीय और अप्रकाशनीय) निर्णयों के महत्वपूर्ण मुद्दे"---1197 जोड़ दिए जाएं।		
889-973	फोलियो	होक्स्ट, हेकल्ट	हेक्स्ट
905	22	के 246(3)	के अनुच्छेद 246(3)
928	8	कतस	जिस
928	9	उतार चढ़ाव	उतार चढ़ाव की
930	16	संदल	संसद्
931	17	कठीन	कठिन
931	नीचे से 2	व्यवहारि	व्यवहारी
945	प्रोद्धरण 2	...	(1899) 2 ए० सी० 580.
	प्रोद्धरण 3	....	(1943) ए० सी० 356.
	प्रोद्धरण 4	...	(1894) ए० सी० 189.
	प्रोद्धरण 5	(1946) ए० सी० 36	(1947) ए० सी० 33.
975	1	(श्रीमती) दीपो	दीपो (श्रीमती)
1197	1	उच्चतम न्यायालय के (प्रकाशनीय और अप्रकाशनीय) निर्णयों के महत्वपूर्ण मुद्दे	उच्चतम न्यायालय के (प्रकाशनीय और अप्रकाशनीय) निर्णयों के महत्वपूर्ण मुद्दे[1]
1227-1228	निर्णय सूची		
	1.	(प्रकाशित)	(प्रकाशनीय)
	2.	(प्रकाशित)	(प्रकाशनीय)
	3.	(अप्रकाशित)	(अप्रकाशनीय)
	4.	(अप्रकाशित)	(अप्रकाशनीय)
	5.	(प्रकाशित)	(प्रकाशनीय)
	6.	(प्रकाशित)	(प्रकाशनीय)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्णय-सूची

[1983] 3 उम० नि० प०

पृष्ठ संख्या

अमृत भीकाजी काले और अन्य बनाम काशीनाथ जनार्दन ट्रेड और एक अन्य
(Amrit Bhikaji Kale and Others v. Kashinath Janardhan Trade and Another). 1141

अरुण बसु मल्लिक (श्रीमती) बनाम श्रीमती दोरोथिया मित्रा
(Mrs. Aruna Basu Mullick v. Mrs. Dorothea Mitra). 1155

आर० विश्वन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य
(R. Viswan and Others v. Union of India and Others). 1043

दीपो (श्रीमती) बनाम वास्सन सिंह और अन्य
(Shrimati Dipo v. Wassan Singh and Others). 974

नैशनल टैक्सटाइल वर्कर्स यूनियन बनाम पी० आर० रामकृष्णन और अन्य
(National Textile Workers' Union v. P. R. Ramakrishnan and Others). 981

प्रेम नाथ रैना और अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य
(Prem Nath Raina and Others v. State of Jammu and Kashmir and Others). 1184

भगवन्त सिंह बनाम पुलिस आयुक्त, दिल्ली
(Bhagwant Singh v. Commissioner of Police, Delhi). 1025

मांगे राम बनाम बृज मोहन और अन्य
(M Ram v. Brij Mohan and Others). 1168

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मैसूर राज्य और अन्य बनाम एम० एल० नागडे और गडग और अन्य
(State of Mysore and Others *v.* M. L. Nagade and Gadag and Others). 992

लक्ष्मण और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य
(Lakshman and Others *v.* State Madhya Pradesh). 1016

शिवदत्त राय फतह चन्द बनाम भारत संघ और एक अन्य
(Shiv Dutt Rai Fateh Chand *v.* Union of India and Another). 1088

हेक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य
(M/s. Hoechst Pharmaceuticals Limited and Another *v.* State of Bihar and Others). 889

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषय-सूची

[1983] 3 उम० नि० प०

पृष्ठ संख्या

आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) लैण्ड रेवेन्यू रूल्स, 1951

—नियम 71(1958 में यथा-अधिनियम)—(सपठित बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू रूल्स, 1951—1958 में यथा-संशोधित नियम 81)—कृष्येत्तर या विशेष निर्धारण—नियमों के अधीन कृष्येत्तर निर्धारण का उद्ग्रहण—निर्धारण उद्गृहीत किए जाने के पूर्व सूचना देने के लिए नियमों में किसी उपबन्ध का न होना—यदि ऐसी स्थिति है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वे नियम अविधिमान्य हैं।

मैसूर राज्य और अन्य बनाम एम० एल० नागडे और गडग और अन्य 992

केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 (1956 का 74) (1976 के संशोधन अधिनियम, 103 द्वारा यथा संशोधित)

—धारा 9(2क)—अधिनियम के अधीन की जाने वाली कार्यवाहियों को राज्यों की साधारण बिक्री कर विधि के अधीन उद्ग्रहणीय शास्तियों से सम्बन्धित उपबन्ध लागू करना और उन्हें अंगीकृत करना—संशोधन अधिनियम की धारा 9 द्वारा संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व उदगृहीत सभी शास्तियों को विधिमान्य करते हुए भूतलक्षी प्रभाव देना—राज्य की शास्ति-सम्बन्धी साधारण बिक्री कर विधि के उपबन्धों को केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम लागू करना संसद् के अनिवार्य विधायी कर्तव्यों का अधित्यजन नहीं है और इसलिए इसमें अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष नहीं है तथा शास्तियों को भूतलक्षी प्रभाव देना संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) और (छ) तथा अनुच्छेद 20(1) का अतिक्रमण नहीं है।

शिव दत्त राय फतह चन्द बनाम भारत संघ और एक अन्य 1088

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जम्मू एण्ड कश्मीर एग्रेरियन रिफार्म्स ऐक्ट, 1976 (1976 का 17)

—उद्देशिका [सपठित संविधान, 1950—अनुच्छेद 14, 19, 31 और 31क (जम्मू-कश्मीर को यथा-लागू)]—उक्त अधिनियम खेती सम्बन्धी सुधार का अभ्युपाय है उसे संविधान के अनुच्छेद 19 अथवा 31 के अधीन किए जाने वाले आक्षेप से अनुच्छेद 31-क की संरक्षा प्राप्त है ।

प्रेम नाथ रैना और अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य 1184

—धारा 7(2) (बी) तथा 2(12)—निजी काश्त—यद्यपि सम्बद्ध व्यक्ति की रिहायश उसी ग्राम में या साथ वाले ग्राम में होनी चाहिए, जहां तक प्रतिरक्षा कार्मिक का प्रश्न है, यह अपेक्षित नहीं है और धारा 2(12) के खण्ड (बी) से (जी) के अन्तर्गत आने वाले रक्षा कर्मचारियों के पक्ष में इस छूट का विस्तार कर दिया जाना न्यायसंगत होगा ।

प्रेम नाथ रैना और अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य 1184

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1973 का 2)

—धारा 172(1)—पुलिस केस डायरी—पुलिस केस डायरी में प्रविष्टियां पूर्ण ब्यौरे सहित, सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख करते हुए सावधानीपूर्वक कालानुक्रम में और पूर्ण विषय-निष्ठा सहित शीघ्रता से दर्ज की जानी चाहिएं ।

भगवन्त सिंह बनाम पुलिस आयुक्त, दिल्ली 1025

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 (1971 का 70)

—धारा 12—उच्च न्यायालय के चार न्यायमूर्तियों तथा उनके निर्णयों के विरुद्ध अवमानकर्त्ता द्वारा अपने समाचारपत्रों में अन्धाधुंध, निराधार और विद्वेषपूर्ण कथन किया जाना—इन अभिकथनों का उद्देश्य मात्र यह होना कि न्यायमूर्तियों को उन मामलों में जिनमें कि प्रत्यर्थी हितबद्ध हैं उनके विरुद्ध प्रतिकूल विनिश्चय देने से प्रवारित किया जाए—उच्चतम न्यायालय के समक्ष लिखित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

माफीनामा पेश किया जाना, जिसका उद्देश्य संभावित दण्ड से बचना था—तत्पश्चात् दिए गए वचनबन्ध में उसकी अवहेलना करते हुए अवमानजनक कथनों का किया जाना—तथ्यों के आधार पर अवमानकर्ता का आचरण तथा उसके लेख न्याय प्रशासन में गम्भीर बाधा डालने वाले हैं—अत: अवमानकर्ता धारा 12 के अधीन अवमान करने का दोषी है।

नेशनल टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन बनाम पी० आर० रामकृष्णन और अन्य 981

परिसीमा अधिनियम, 1965 (1965 का 36)

—द्वितीय अपील के ज्ञापन के साथ विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रति फाइल की जाना—परिसीमाकाल की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् डिक्री की प्रति फाइल की जाना—विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रति परिसीमाकाल के पर्यवसान के पश्चात् प्रस्तुत की जाना—यह तकनीकी त्रुटि है और इसे फाइल करने में हुए विलम्ब को माफ किया जा सकता है।

वीपो श्रीमती बनाम वास्सन सिंह और अन्य 974

बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकलचरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 (1948 का 67)

—धारा 32च, 32छ, 14, 29—किसान दिवस को अभिधारी द्वारा भूमि खरीदी गई समझा जाना—भूस्वामी द्वारा भूमि अवयस्क को वसीयत करना—भूस्वामी का किसी भी प्रकार निर्योग्य न होना और किसान दिवस के बाद उसकी मृत्यु हो जाना—ऐसी स्थिति में उस विक्रय की बाबत यह नहीं समझा जा सकता कि वह स्थगित हो गया है—इसलिए जो कार्यवाहियां बाद में की जाती हैं, वे शून्य होती हैं।

अमृत भीकाजी काले और अन्य बनाम काशीनाथ जनार्दन ट्रेड और एक अन्य 1141

बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू कोड (1879 का 5)

—धारा 48 और 214 [सपठित बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू रूलस, 1951—नियम 81(1958 में यथा-संशोधित)]—नियम 81 के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधीन उद्ग्रहणीय क्रयेतर निर्धारण की दर का नियत किया जाना—यह आपत्ति कि इस नियम में मार्गदर्शक सिद्धांतों का अभाव है, गलत है—इसलिए नियम असांविधानिक नहीं है।

मैसूर राज्य और अन्य बनाम एम० एल० नागडे और गडग और अन्य 992

बिहार फाइनेंस ऐक्ट, 1981 (1981 का 5)

—धारा 5(1) और (3)—अधिभार का उद्ग्रहण—सकल व्यापारावर्त की संगणना—इसके अन्तर्गत अन्तर्राज्यीय विक्रयों के व्यापारावर्त निरूपण को शामिल करना होगा—धारा 5(1) संविधान के अधिकारातीत नहीं हैं।

हेक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 889

—धारा 5(1) और (3)—[सपठित आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955—धारा 3(1)]—औषधि (कीमत नियन्त्रण) आदेश, 1979, पैरा 21—बिहार ऐक्ट की धारा 5(1) तथा 5(3) में विद्यमान उपबन्ध द्वारा अधिभार उद्गृहीत किया जाना जिससे कि क्रेता से ऐसे अधिभार के संग्रहण को प्रतिषिद्ध किया जाना—उक्त उपबन्ध नियन्त्रण आदेश के पैरा 21 के प्रतिकूल नहीं है।

हेक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 889

—धारा 5(3)—औषधियों के ऐसे विनिर्माताओं तथा उत्पादकों पर अधिभार का उद्ग्रहण जिनका सकल आवर्त 5 लाख रुपये से अधिक बनता है—उक्त उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं करता है।

हेक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य 889

—धारा 5(3)—उक्त धारा के अधीन विक्रय कर पर अधिभार, आय पर कर नहीं होता है और न ही इसके द्वारा व्यापार स्वातंत्र्य पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित किए जा सकते हैं।

हेक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 889

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43)

—धारा 37—स्थायी निर्वाहिका—न्यायालय द्वारा निर्णीत-ऋणी-पति के विरुद्ध डिक्रीदार-पत्नी के पक्ष में स्थायी निर्वाहिका की डिक्री का दिया जाना—निर्णीत-ऋणी-पति की मृत्यु होने पर निष्पादिका द्वारा इस आधार पर निर्वाहिका का संदाय बन्द किया जाना कि वह भार न होने के कारण, डिक्रीदार का दावा निर्वापित हो गया—यदि निर्णीत-ऋणी-पति मृत्यु के समय अपने पीछे कोई सम्पदा छोड़ जाता है, तो निर्वाहिका विषयक डिक्री के निर्वापित होने का कोई भी प्रश्न नहीं है—विधिक प्रतिनिधि ऐसी डिक्री की तुष्टि के लिए बाध्य हैं।

अरुणा बसु मल्लिक (श्रीमती) बनाम श्रीमती दोरोथिया मित्रा 1155

—धारा 37(2)—"किसी पक्षकार की प्रेरणा पर" पद का निर्वचन—यह पद पति/पत्नी तक ही सीमित नहीं है—उसकी परिधि के भीतर विधिक प्रतिनिधि भी आते हैं।

अरुणा बसु मल्लिक (श्रीमती) बनाम श्रीमती दोरोथिया मित्रा 1155

संविधान, 1950

—अनुच्छेद 14, 19 और 301 [सपठित वन अधिनियम, 1927, धारा 32(1) और 76 तथा मध्य प्रदेश ग्रेजिंग रेट्स रूल्स, 1979, नियम 7, 6, 3(2) और 5]—मध्य प्रदेश सरकार द्वारा नियमावली के नियम 6 और 7 अधीन मध्य प्रदेश से भिन्न अन्य राज्यों के व्यक्तियों से संबंधित पशुओं के बारे में अधिसूचना जारी की जाना—अधिसूचना में चरवाई की अधिक दर उद्गृहीत की जाना—राज्य में होकर गुजरने के लिए 45 दिनों की अधिकतम सीमा का नियत की जाना—चरवाई की अधिक दर उद्गृहीत करना और राज्य में पशुओं के ठहरने की सीमा बांधना असांविधानिक है तथापि राज्य में पशुओं के गुजरने का मार्ग नियत करना सांविधानिक है।

लक्ष्मण और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य 1016

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—अनुच्छेद 20(1)—शब्द और वाक्यांश—'शास्ति' और 'अपराध' शब्दों का अर्थ एवं विस्तार—अनुच्छेद 20(1) में प्रयुक्त 'शास्ति' शब्द का यह अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता कि इसमें कानूनी उपबंधों के अतिक्रमण के लिए विभागीय प्राधिकारियों द्वारा बिक्री कर विधि के अधीन उद्गृहीत शास्ति भी सम्मिलित है।

शिव दत्त राय फतह चन्द बनाम भारत संघ और एक अन्य 1088

—अनुच्छेद 32 [सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 190 और 192 तथा भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45)]—धारा 302, 306 और 309—अधिकारिता—उच्चतम न्यायालय पुलिस की निष्क्रियता के विरुद्ध विनिश्चय नहीं कर सकता—यदि यह हत्या या आत्महत्या का मामला है, तो एकमात्र समुचित या अधिकारिताप्राप्त न्यायालय ही उस प्रश्न के बारे में अन्वेषण कर सकता है।

भगवन्त सिंह बनाम पुलिस आयुक्त, दिल्ली 1025

—अनुच्छेद 32 [सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 173(2) और भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 302 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28)—धारा 4]—पुलिस की निष्क्रियता—दहेज के कारण हुई पुत्री की मृत्यु के बारे में पिता द्वारा पुलिस के पक्षपातपूर्ण अन्वेषण के विरुद्ध पिटीशन का प्रस्तुत किया जाना—पुलिस से विस्तृत स्पष्टीकरण देने की मांग की जानी—पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण में अविश्वास प्रकट किया जाना—अन्वेषण करने वाले केन्द्रीय जांच ब्यूरो को शीघ्रता से निपटारा करने का निदेश दिया जाना—पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में, पदधारी पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कोई दाण्डिक कार्यवाही नहीं की जा सकती।

भगवन्त सिंह बनाम पुलिस आयुक्त, दिल्ली 1025

—अनुच्छेद 136, 200 और 226 और 271—[सपठित बिहार फायनेंस ऐक्ट, 1981—धारा 5(1) तथा (3)]—राष्ट्रपति की अनुमति—राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदान किए जाने हेतु विधेयक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को परिरक्षित रखने की आवश्यकता है और यह न्याय नहीं है कि राष्ट्रपति ने अपनी मन: बुद्धि का प्रयोग किया था।

हेक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 889

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

—आदेश 16, नियम 1 और 1-क [सपठित लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 87(1) का परन्तुक—निर्वाचन-अर्जी]—अपीलार्थी-अर्जीदार द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने की तारीख को अपने साक्षियों को न्यायालय में पेश किया जाना—उच्च न्यायालय द्वारा उसकी इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया जाना कि जिन साक्षियों के नाम साक्षी-सूची में नहीं दिए हैं, उनका साक्ष्य ले लिया जाए—यह तथ्य कि कतिपय साक्षियों के नाम साक्षी-सूची में नहीं दिए गए हैं, तात्विक नहीं है—ऐसे साक्षियों को भी साक्ष्य देने की इजाज़त दी जानी चाहिए जिनके नामों का उल्लेख साक्षियों की सूची में नहीं था।

मांगे राम बनाम बृज मोहन और अन्य 1168

सेना अधिनियम, 1950 (1950 का 46)

—धारा 4(1)(4), 21, 102(4) और 191—धारा 4(1) में "केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार के अधीन भारत में समुत्थापित और बनाए रखा गया बल" पद का अर्थ और उसकी परिधि—केन्द्रीय सरकार जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स के सदस्यों के बारे में सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के कतिपय उपबन्धों को लागू करते हुए धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी कर सकती है—अत: जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स के सदस्य संविधान के अनुच्छेद 33 के अधीन सशस्त्र बल के सदस्य हैं।

आर० विश्वन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1043

—धारा 4(1), (4)—अधिसूचना के अधीन अनुशासन के प्रयोजनों के लिए जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स के सदस्यों को सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के उपबन्धों को लागू करना संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता है।

आर० विश्वन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1043

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—धारा 21—सांविधानिक विधिमान्यता—यद्यपि अनुच्छेद 19(1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन मूल अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित करने के लिए धारा 21 के अधीन केन्द्रीय सरकार की प्रदत्त शक्ति व्यापक दृष्टि से ऐसी अनियंत्रित और अनिर्बन्धित शक्ति है जो संवैधानिक परिसीमा का अतिक्रमण करती है, तथापि धारा 21 इस आधार पर अविधिमान्य नहीं है।

आर० विश्वन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1043

हरियाणा साधारण बिक्री कर अधिनियम, 1973

—धारा 48—राज्य सरकार द्वारा की रकम का संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर प्राधिकारियों को शास्ति उद्गृहीत करने के लिए प्राधिकृत करना—शास्ति उद्गृहीत करने के लिए प्राधिकृत करना प्राधिकारियों को मनमानी और अनियंत्रित शक्ति का प्रदत्त करना नहीं है—अतः उससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता है।

शिव दत्त राय फतह चन्द बनाम भारत संघ और एक अन्य 1088

हरियाणा साधारण बिक्री कर नियम, 1975

—नियम 4(क) (सपठित हरियाणा साधारण बिक्री कर अधिनियम, 1973 की धारा 3)—यदि राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत निर्धारण प्राधिकारी तथा उत्पाद शुल्क एवं कराधान प्राधिकारी शास्ति का आदेश देता है, तो ऐसा आदेश विधिमान्य है।

शिव दत्त राय फतह चन्द बनाम भारत संघ और एक अन्य 1088

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30)

—धारा 8—निर्वसीयत उत्तराधिकार का सामान्य नियम—अनुसूची—वर्ग 2—11(4)—यदि किसी अविभक्त कुटुम्ब में ऐसा कोई उत्तरजीवी सदस्य (वंशज या अन्यथा) न हो जो उत्तर-जीविता के द्वारा सम्पत्ति प्राप्त कर सकता हो, तो पूर्वजों द्वारा विरासत में प्राप्त की गई सम्पत्ति मृत स्वत्वधारी (प्रापोजिट्स) की पुरुष संतान की दशा में 'पैतृक सम्पत्ति' है, किन्तु अन्य नातेदारों के सम्बन्ध में यह उसकी पैतृक सम्पत्ति न होकर आत्यंतिक सम्पत्ति है।

दीपो (श्रीमती) बनाम वास्सन सिंह और अन्य 974

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैदराबाद लैण्ड रेवेन्यू ऐक्ट (सन् 1317 फसली का 8)

—धारा 50 और 172 [सपठित आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) लैण्ड रेवेन्यू रूल्स, 1951—नियम 71(1958 में यथा-संशोधित)]—नियम 71 के अधीन उद्ग्रहणीय कृष्येतर निर्धारण की दर का नियत किया जाना—यह आपत्ति कि इस नियम में मार्गदर्शक सिद्धान्तों का अभाव है या यह कि उसमें अत्यधिक प्रत्या-योजन का दोष है, गलत है इसीलिए नियम असांविधानिक नहीं है।

मैसूर राज्य और अन्य बनाम **एम० एल० नागडे और गडग और अन्य** 992

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अगस्त, 1983

तुलनात्मक सारणी

क्रम सं०	निर्णय तथा दिनांक	ए० आई० आर०	एस० सी० आर०	एस० सी० सी०	एस० सी० जे०
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1.	हेक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लि० बनाम बिहार राज्य (6-5-1983)	1983 अक्तूबर, 1019			
2.	दीपो (श्रीमती) बनाम वास्सन सिंह और अन्य (5-5-1983)	1983, सितम्बर, 846		(1983) 3 सितम्बर, 376	

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
3.	नेशनल टैक्सटाइल वर्कर्स यूनियन बनाम पी० आर० रामाकृष्णन और अन्य (5-5-1983)	1983, अगस्त, 759		(1983) 1 922	
4.	मैसूर राज्य और अन्य बनाम एम० एल० नागडे और गडग और अन्य (6-5-1983)	1983, अगस्त, 762		(1983) 3 अगस्त, 253	
5.	लक्ष्मण और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (6-5-1983)	1983, जुलाई, 656		(1983) 3 अगस्त, 275	
6.	भगवन्त सिंह बनाम पुलिस आयुक्त, दिल्ली (6-5-1983)	1983, सितम्बर, 826		(1983) 3 अगस्त, 344	

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
7.	आर० विश्वन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (6-5-1983)	1983, जुलाई, 658		(1983) 3 सितम्बर, 401	
8.	शिव दत्त राय फतह चन्द बनाम भारत संघ और एक अन्य (6-5-1983)			(1983) 3 सितम्बर, 529	
9.	अमृत भीकाजी काले और अन्य बनाम काशी नाथ जनार्दन ट्रेड और एक अन्य (11-5-1983)	1983, जुलाई, 643		(1983) 3 सितम्बर; 437	
10.	अरुण बसु मल्लिक (श्रीमती) बनाम श्रीमती दोरोथिया मित्रा (2-8-1983)	1983, सितम्बर, 916		(1983) 3 सितम्बर, 522	

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
11.	मांगे राम बनाम बृज मोहन और अन्य (3-8-1983)	1983 अगस्त, 803	—	(1983) 3 सितम्बर, 387	—
12.	प्रेम नाथ रैना और अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य (4-8-1983)	1983 सितम्बर, 925	—	—	—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हेक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

(M/s. Hoechst Pharmaceuticals Limited
and Another

v.

State of Bihar and Others)

मैसर्स जमुना फ्लोर एण्ड आयल मिल्स और अन्य

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

(M/s. Jamuna Flour & Oil Mills and Others

v.

State of Bihar and Others)

तथा

मैसर्स फार्मा एसोसिएट्स और अन्य

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

(M/s. Pharma Associates and Others

v.

State of Bihar and Others)

(6 मई, 1983)

(न्यायाधिपति ए० पी० सेन, ई० एस० वेंकटरामय्या और
आर० बी० मिश्र)

बिहार फाइनेंस ऐक्ट, 1981 (1981 का 5) धारा 5(3)—
उक्त धारा के अधीन विक्रय कर पर अधिभार, आय पर कर नह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होता है और न ही इसके द्वारा व्यापार स्वातंत्र्य पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित किए जा सकते हैं।

बिहार फाइनेंस ऐक्ट, 1981 (1981 का 5)—धारा 5(1) और (3)—[सपठित आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955—धारा 3(1)]—औषधि (कीमत नियंत्रण) आदेश, 1979, पैरा 21—बिहार ऐक्ट की धारा 5(1) तथा 5(3) में विद्यमान उपबंध द्वारा अधिभार उद्गृहीत किया जाना जिससे कि क्रेता से ऐसे अधिभार के संग्रहण को प्रतिषिद्ध किया जाना—उक्त उपबंध नियंत्रण आदेश के पैरा 21 के प्रतिकूल नहीं है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 136, 200, 226 और 271—[सपठित बिहार फाइनेंस ऐक्ट, 1981—धारा 5(1) तथा (3)]—राष्ट्रपति की अनुमति—राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदान किए जाने हेतु विधेयक को परिरक्षित रखने की आवश्यकता है और यह न्याय्य नहीं है कि राष्ट्रपति ने अपनी मनः बुद्धि का प्रयोग किया था।

बिहार फाइनेंस ऐक्ट, 1981 (1981 का 5)—धारा 5(3)—औषधियों के ऐसे विनिर्माताओं तथा उत्पादकों पर अधिभार का उद्ग्रहण जिनका सकल आवर्त पांच लाख रुपए से अधिक बनता है—उक्त उपबंध संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं करता है।

बिहार फाइनेन्स ऐक्ट, 1981 (1981 का 5)—धारा 5(1) और (3)—अधिभार का उद्ग्रहण—सकल व्यापारावर्त की संगणना—इसके अन्तर्गत अन्तर्राज्यीय विक्रयों के व्यापारावर्त निरूपण को शामिल करना होगा—धारा 5(1) संविधान के अधिकारातीत नहीं है।

इस मामले में अपीलार्थी-कम्पनियां विभिन्न दवाओं तथा जीव रक्षा करने वाली औषधियों का निर्माण कर रही हैं। यह कार्य सम्पूर्ण भारत में किया जा रहा है जिसके अन्तर्गत बिहार राज्य भी शामिल है। बिहार राज्य में उनका विक्रय-डिपो पटना में है जिसे अधिनियम की धारा 14 के अधीन व्यवहारी के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया है। उनके द्वारा बेची गई दवाएं तथा औषधियों में से लगभग 94 प्रतिशत नियंत्रित कीमत पर बेची जाती हैं जिनमें कि अत्यावश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए औषधि (कीमत नियंत्रण) आदेश, 1979 के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधीन स्थानीय करों को अन्तर्विष्ट नहीं किया गया है—अपीलार्थियों की दर-सूचियों से यह दर्शित होता है कि उनकी संविधान के निबंधनों में से एक निबंधन यह है कि विक्रय कर तथा स्थानीय करों को जहां कहीं भी वे लागू हों प्रभावित किया जाएगा। अपीलार्थियों ने उक्त अधिसूचना द्वारा धारा 5 (1) के अधीन अधिभार के उद्ग्रहण की सांविधानिक विधि-मान्यता पर आक्षेप किया है और धारा 5(3) के अधीन चुनौती दी है जो कि ऐसे व्यवहारियों को क्रेताओं से उन्हें संदेय अधिभार की रकम को संगृहीत करने से प्रतिषिद्ध करती है। उच्च न्यायालय ने अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता को कायम रखा। उच्चतम न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने पर उच्च न्यायालय के विनिश्चय को पुष्ट करते हुए और वर्तमान अपीलों तथा सम्बद्ध रिट पिटीशनों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—अन्तर्निहित सिद्धांत यह है कि प्रतिकूलता का प्रश्न केवल वहां उद्भूत होता है जहां दोनों ही विधानमण्डल एक ही क्षेत्र में विधान बनाने के लिए सक्षम हों अर्थात् समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से किसी भी विषय की बावत सक्षम हो। अत: अनुच्छेद 254 (1) तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि संघ और राज्य विधियां दोनों का समवर्ती सूची में विनिर्दिष्ट विषय से सम्बन्ध न हो और उनका क्षेत्र एक ही हो। (पैरा 69)

इसका उपपरिणाम यह होगा कि दोनों विधियां अर्थात् बिहार फाइनेंस ऐक्ट की धारा 5 की उपधारा (3) तथा आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए नियंत्रण आदेश का पैरा 21 दो अलग-अलग और सुभिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त होती हैं और दोनों का अनुपालन किया जा सकता है। इन दोनों विधियों के बीच किसी संघर्ष का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता और प्रतिकूलता के प्रश्न की तो बात ही क्या है। (पैरा 76)

यह अभिनिर्धारित करने के लिए कदाचित् कोई आधार नहीं है कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) मनमानी अथवा विवेकहीन है या यह कि इसमें असमान व्यक्तियों को समान व्यक्तियों के रूप में माना गया है अथवा यह कि यह व्यवहारियों के कतिपय वर्ग पर अननुपातिक भार अधिरोपित करती है। यह स्मरणीय है कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) में उनके द्वारा संदेय कर के 10 प्रतिशत की समान दर से अधिभार के उद्ग्रहण का उपबंध है जहां कि एक वर्ष में पांच लाख या उससे अधिक सकल आवर्त विद्यमान हो; इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि क्या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वे आवश्यक वस्तुओं के व्यवहारी हैं अथवा नहीं, सही प्रकृति और प्रकार में कोई अधिभार मात्र की उचित दर हैं जिससे कि सामान्य प्रयोजनों के लिए राजस्व जुटाया जा सके। अधिनियम की धारा 5 (1) के अधीन अधिभार का उद्ग्रहण एक रूप से व्यवहारियों के किसी विशिष्ट वर्ग पर पड़ता है जो कि अतिरिक्त भार को वहन करने पर उनकी क्षमता पर निर्भर करता है। (पैरा 79)

न्यायालय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह कर के औचित्य अथवा उसके न्यायोचित होने पर विचार करे या विधायी नीति के क्षेत्र में प्रवेश करे। यदि कर संबंधी विधान का सुव्यक्त आशय तथा सामान्य प्रवर्तन भार को उचित तथा युक्तियुक्त गणता की कोटि-पर्यन्त समायोजित करना है, तो सांविधानिक अध्यपेक्षा पूरी हो जाएगी। अनुच्छेद 14 का समता खण्ड राज्य से उस शक्ति को ग्रहण नहीं कर लेता है जिसके आधार पर कि वह व्यक्तियों के किसी ऐसे वर्ग का वर्गीकरण करता है जिसे अधिक कर संबंधी भार का वहन करना हो। किंचित युक्तियुक्ति आधार धारण करने वाला वर्गीकरण मात्र इस कारण उस खण्ड का विरोध नहीं करता कि वह गणितीय शुद्धता से निर्मित किया गया है अथवा इस कारण कि व्यवहारिक रूप में उसके परिणामस्वरूप कतिपय असमान्यताएं उत्पन्न होती हैं। (पैरा 84)

मात्र इस कारण से कि बिहार फाइनेंस ऐक्ट की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन निर्धारित वर्ग के अन्तर्गत किसी व्यवहारी को उससे वसूल किए गए अधिभार को संग्रहण से रोका गया है, राज्य विधानमण्डल के उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) जैसे उपबंध बनाने की सक्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, न ही यह उसकी आय पर कर बन जाता है। निस्सन्देह यह सत्य है कि विक्रय कर स्वीकृत धारणा के अनुसार, क्रेता को संक्रान्त किए जाने के लिए आशयित है और विक्रेता द्वारा क्रेता से विक्रय कर संग्रहण को प्राधिकृत और विनियमित करने वाले उपबंध विक्रय कर विधान की सामान्य विशेषताएं हैं। किन्तु विक्रय कर का यह अनिवार्य लक्षण नहीं है कि विक्रेता को इसे संक्रान्त करने का अधिकार अवश्य मिलना चाहिए। न ही विधानमण्डल को यह शक्ति प्राप्त है कि वह क्रेताओं से कर संग्रह करने हेतु विक्रेताओं के लिए उपबंध करके विक्रयों पर सशर्त कर अधिरोपित करे। विक्रय कर अधिरोपित करने वाली कोई विधि अधिनियमित की जानी चाहिए या नहीं या विक्रय कर का अधिरोपित किया जाना विधिमान्य है या नहीं जबकि विक्रेता इस स्थिति में नहीं है कि वह इसका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपभोक्ता को, संक्रामण करे, यह एक नीति का मामला है और विधानमण्डल की क्षमता पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। (पैरा 86)

राज्य विधानमण्डल, संविधान के अनुच्छेद 286 में किसी बात के होते हुए सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन कोई विधि बनाते समय, किसी व्यवहारी के रजिस्ट्रीकरण और विक्रय कर की विवरणियों को प्रस्तुत करने के प्रयोजनों के लिए संविधान के अनुच्छेद 286 के अन्तर्गत आने वाले संव्यवहारों को सम्मिलित कर सकता है, इसका अर्थ यह है कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1), जिसमें ऐसे व्यवहारियों के वर्गीकरण का उपबंध है जिनका सकल आवर्त एक वर्ष में उसके द्वारा संदेय कर के अतिरिक्त अधिभार के उद्ग्रहण के प्रयोजन के लिए पांच लाख रुपए से अधिक है, सांविधानिक रूप से अविधिमान्य नहीं है। यह दलील कि पांच लाख रुपए के सकल आवर्त की संगणना करने के लिए अन्तरराज्यिक विक्रयों और बाह्य विक्रयों को लेखे में लेने से उक्त अधिनियम अधिकारातीत हो जाएगा, चलने योग्य नहीं है। जब तक अन्तरराज्यिक व्यपार और वाणिज्य, बाह्य विक्रयों के अनुक्रम में विक्रयों पर भारत के राज्यक्षेत्र में आयात और उससे निर्यात के अनुक्रम में विक्रयों पर कर नहीं लगता, तब तक राज्य विधानमण्डल को, सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन अधिभार का उद्ग्रहण करने के लिए विधि बनाते समय कोई बात राज्य के भीतर किसी व्यवहारी के कुल आवर्त को लेखे में लेने से और यह उपबंध करने से, जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) द्वारा किया गया है, रोक नहीं सकती कि यदि ऐसे किसी व्यवहारी का सकल आवर्त किसी एक वर्ष में पाँच लाख रुपए से अधिक है तो वह कर के अतिरिक्त, अधिभार का भी कर के 10 प्रतिशत से अधिक ऐसी दर पर संदाय करेगा जैसा उपबन्धित किया जाए। ऐसे व्यक्ति जिनसे प्रभार की मांग की गई है और उनसे कर पाने वाले राज्य के बीच पर्याप्त क्षेत्रीय संबन्ध है। क्षेत्रीय संबन्ध की पर्याप्तता में दो तत्वों पर विचार करना अन्तर्वलित है, अर्थात् (क) सम्बन्ध वास्तविक होना चाहिए न कि भ्रामक और (ख) अधिरोपित किया जाने वाला दायित्व उस क्षेत्रीय सम्बन्ध के संगत हो। किसी व्यवहारी के सकल आवर्त को अधिभार का संदाय करने के दायित्वाधीन व्यवहारियों के वर्ग को पहचानने के प्रयोजन के लिए उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) में लेखे में सकल आवर्त को न लेकर उनके द्वारा संदेय कर पर लिया जाता है। (पैरा 93)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1982]	[1982] 2 उम० नि० प० 1249=[1982] 1 एस० सी० आर० 519 : सदर्न फार्मास्यूटिकल्स और कैमिकल्स, त्रिचूर बनाम केरल राज्य (Southern Pharmaceuticals and Chemicals, Trichur *v.* State of Kerala);	52
[1981]	[1981] 4 उम० नि० प० 891=[1981] 2 एस० सी० आर० 364 : इण्टरनेशनल टूरिस्ट कार्पोरेशन इत्यादि, इत्यादि बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (International Tourist Corporation etc. etc. *v.* State of Haryana and Others);	93
[1974]	[1974] 2 उम० नि० प० 1157=[1975] 1 एस० सी० आर० 121 : एस० कोदार बनाम केरल राज्य (S. Kodar *v.* State of Kerala);	6, 9, 10, 85; 86
[1962]	[1962] 2 एस० सी० आर० 1 : मैसर्स जे० के० जूट मिल्स कं० लि० बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य (M/s. J. K. Jute Mills Co. Ltd. *v.* State of Uttar Pradesh and Another);	86
[1959]	[1959] सप्ली० 2 एस० सी० आर० 8 : दीप चन्द बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (Deep Chand *v.* State of Uttar Pradesh and Others);	65
[1958]	[1958] एस० सी० आर० 1355 : टाटा आयरन एन्ड स्टील कं० लि० बनाम बिहार राज्य (Tata Iron & Steel Co. Ltd. *v.* State of Bihar);	86, 93

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

	हिक्स्ट फार्मास्यूटिकल्स लि० ब० बिहार राज्य	895
[1958]	[1958] एस० सी० आर० 1422 : एम० पी० वी० सुन्दररेमीयर एन्ड कं० बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य (M. P. V. Sundararamier and Co. *v.* State of Andhra Pradesh and Another);	76
[1957]	[1957] एस० सी० आर० 399 : ए० एस० कृष्णा बनाम मद्रास राज्य (A. S. Krishna *v.* State of Madras);	52, 70
[1957]	[1957] एस० सी० आर० 837 पृ० 852-53 : ए० वी० फरनान्डेज बनाम केरल राज्य (A. V. Fernandez *v.* State of Kerala);	93
[1956]	ए० सी० आर० 393 : चौ० टीका रामजी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (Ch. Tika Ramji and Others *v.* State of Uttar Pradesh and Others);	66, 71
[1945]	[1945] एस० सी० आर० 179 : गवर्नर जनरल-इन-काउन्सिल बनाम प्राविन्स आफ मद्रास (Governor General-in-Council *v.* Province of Madras);	50
[1942]	[1942] एफ० सी० आर० 90 : दि प्राविन्स आफ मद्रास बनाम मेसर्स बोड्डू पायदन्ना एण्ड सन्स (The Province of Madras *v.* Boddu Paidanna and Sons);	50
[1940]	[1940] एफ० सी० आर० 188 : ए० एल० एस० पी० पी० सुब्रह्मणियन चेट्टियार बनाम मुथुस्वामी गौंडन (A. L. S. P. P. L. Subrahamanyan Chettiar *v.* Muttuswami Goundan);	48

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1939]	[1939] 1 एफ० सी० आर० 1 : सेन्ट्रल प्राविन्सिज एन्ड बेरार सेल्स आफ मोटर स्पिरिट एण्ड लुब्रीकेन्ट्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1938 (Central Provinces and Berar Sales of Motor Spirit and Lubricants Taxation Act, 1938);	44, 49, 50
[1881]	[1881] एल० आर० 7 ए० सी० 96 पृ० 108 : सिटीजन इन्श्योरेंस कंपनी बनाम विलियम पारसन्स (Citizen Insurance Company *v.* William Parsons).	40, 47

अनुमोदित निर्णय

[1947]	ए० आई० आर० 1947 एस० सी० 60 : प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी और अन्य बनाम बैंक आफ कामर्स लि०, खुलना (Prafulla Kumar Mukherjee and others *v.* Bank of Commerce Ltd., Khulna).	51, 52; 61

प्रभेदित निर्णय

[1983]	एल० आर० [1983] एस० सी० 150 : टी बरई बनाम हेनरी आह हक (T. Barai *v.* Henry Ah Hoe);	66
[1980]	एल०आर० [1980] ए०सी० 458 पृ० 473 : तेह चेन्ग पोह उर्फ चार मेर बनाम पब्लिक प्रासीक्यूटर, मलेशिया (Teh Cheng Poh alias Char Mer *v.* Public Prosecuter, Malaysia).	87

निर्दिष्ट निर्णय

[1932]	[1932] 48 काम० एल० आर० 128 : स्टाक मोटर प्लो लिमिटेड बनाम फोरेस्थ (Stock Motor Plough Limited *v.* Forsyth);	64, 67

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1930] [1930] 43 काम० एल० आर० 472 :
एक्स-पार्टी मैक्लीन
(Ex-parte Maclean); 64, 67

[1926] [1926] 37 काम० एल० आर० 466 :
क्लाईड इन्जीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड बनाम काओबर्न
(Clyde Engineering Company Limited v. Cowburn); 64, 67

[1907] एल० आर० [1907] ए० सी० 65 :
ग्रान्ड ट्रंक रेलवे कम्पनी ऑफ कैनेडा बनाम अटार्नी जनरल आफ कैनेडा
(Grand Trunk Railway Company of Canada v. Attorney General of Canada); 54, 55, 61

[1894] [1894] ए० सी० 189 :
अटार्नी जनरल ऑफ ओनटेरियो बनाम अटार्नी जनरल आफ कैनेडा
(Attorney General of Ontario v. Attorney General of Canada); 54, 58

[1894] एल० आर० [1894] ए० सी० 31 :
टेनन्ट बनाम यूनियन बैंक आफ कैनेडा
(Tennant v. Union Bank of Canada). 54, 57

सिविल अपीली अधिकारिता : 1982 की सिविल अपील सं० 2567, 2818-20, 2648, 3277, 2817, 2918, 3079-83, 3001-04, 3543-48, 2810-16, 3375, 2864-2917, 2989-3000, 3084-3088, 3268-71, 3253-54 और 3399-3400.

1981 के सिविल रिट अधिकारिता मामला सं० 1788, 3726, 3727 और 4529, 1982 के 253, 688 और 1473, 1981 के 2771; 1982 के 96, 1981 के 1233, 1498, 1907 और 1906, 1982 के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1042, 1043, 1121, और 1044, 1981 के 3198, 3197, 3195, 3147, 3146 3148, 1573, 1377, 1802, 1852, 1800, 1950 और 1776; 1982 के 1038, 1981 के 1300, 1301, 1303, 1329; 1334, 1383 और 1648, 1982 के 255, 1981 के 1193, 1198, 1204; 1206, 1209, 1211, 1213, 1214, 1262-64, 1273, 1282, 1283, 1287, 1331, 1351, 1382, 1384, 1386, 1431, 1432, 1448, 1488, 1489, 1548, 1645, 1734 और 1833, 1982 के 78, 1981 के 1154, 1160, 1168, 1169, 1186, 1187, 1191, 1549, 1556, 1557-58, 1415, 1461, 1465 और 1487, 1982 के 251, 1981 के 228 और 1321, 1982 के 394 और 1478, 1981 के 1320, 1982 के 902 और 565, 1981 के 1775; 1177 और 1801, 1982 के 503, 1981 के 1804, 1982 के 1, 3, 4, 6 और 7, 1981 के 3079 और 3528, 1982 के 1947, 1982 के 1254, 1981 के 2922, 1982 के 1372 तथा 1981 के 1408 और 1482 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 30 अप्रैल, 1982, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13 और 18 मई, 1982, 3, 17 और 23 अगस्त, 1982 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपीलें।

तथा

1982 के विशेष इजाजत पिटीशन सं० 10744-53, 9554-58, 9788; 9821-22, 10907, 9095, 11202-05, 9886-88, 9500-2, 9753, 9523, 10912, 11069, 10754-56, 10797-10812, 10891, 9702, 9782, 9561, 14001 और 14364-66 तथा 1983 के 1393-96, 1422-23 और 1472-73.

1982 के सिविल रिट अधिकारिता मामला सं० 1176, 1516, 1435, 1177, 1618, 1469 और 1252, 1981 के 3368, 1982 के 1355, 1982 के 525, 1982 के 3640, 3641, 3642, 3743 और 3745, 1981 के 1326, 1784, 1405, 1854, 3337 और 1656, 1982 के 349, 1108, 1148, 4073, 4074 और 4075 1981 के 3118, 3080, 1161, 1374, 2804 और 3035, 1982 के 4213, 1982 के 1517, 1981 के 1278, 1414, 1290, 1291, 1292, 1297, 1306, 1200, 1212, 1256, 1276, 1277 और 1485, 1982 के 484 और 509, 1981 के 1517, 1578, 1450, 4037, 2944, 1788 और 2889, 1982 के 1547, 506, 507, 508, 4931,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1253, 1431, 1432, 207 और 214 तथा 1983 के 182 और 203 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 30 अप्रैल, 1982, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12 और 13 मई, 1982, 19 अगस्त, 1982, 9 और 15 सितम्बर, 1982, 8 और 18 अक्तूबर, 1982 तथा 20 और 21 जनवरी, 1983 वाले निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध किए गए पिटीशन।

तथा

1982 के रिट पिटीशन सं० 9266, 10055-56, 7002-09, 7019-23, 7024, 7921-22, 7996-97, 8508-10, 9680-92, 9322, 7647-53, 8005, 8067 और 7160 तथा 1983 के 415, 76-78, 640-41 और 652.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पेश किए गए रिट पिटीशन।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री ए० बी० दीवान, ए० के० सेन, शंकर घोष, पी० आर० मृदुल, हरदेव सिंह, एस० टी० देसाई, तलत अंसारी, अशोक सागर, संदीप ठाकुर, श्रीमती रैनु वालिया, सर्वश्री डी० एन० मिश्र, डी० पी० मुखर्जी और बी० आर० अग्रवाल, कुमारी विजयलक्ष्मी मैनन, सर्वश्री यू० पी० सिंह, बी० बी० सिंह, बी० एस० चौहान, अनिल कुमार शर्मा, परवीन कुमार, ए० टी० पात्रा, विनीत कुमार, ए० के० झा, एम० पी० झा, आर० एस० सोढी और ए० मिनोचा, श्रीमती इन्दु गोस्वामी, सर्वश्री एस० के० सिन्हा, बीनू भगत, पी० एन० मिश्र, के० के० जैन और प्रमोद दयाल।

प्रत्यर्थियों की ओर से — श्री के० पाराश्रन, सालिसिटर जनरल; श्री आर०बी० मेहतो, अपर महान्यायवादी, सर्वश्री प्रमोद स्वरूप और यू०एस० प्रसाद

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ए० पी० सेन ने दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायाधिपति सेन—

ये अपीलें पटना उच्च न्यायालय के तारीख 30 अप्रैल, 1982 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई हैं, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने बिहार वित्त अधिनियम, 1981 (जिसे संक्षेप में अधिनियम कहा गया है) की धारा 5 की उपधारा (1) की, जिसमें प्रत्येक ऐसे व्यवहारी पर जिसका सकल व्यापारावर्त वर्ष के दौरान पांच लाख रुपए से अधिक है, उसके द्वारा संदेय कर के अलावा, ऐसी दर से जो कि कर की कुल रकम के 10 प्रतिशत से अनधिक हो, अधिकर का उद्ग्रहण करने के लिए उपबन्ध करती है और अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) की, जो कि ऐसे व्यवहारी को क्रेता से व्यवहारी द्वारा संदेय अधिभार की रकम संगृहीत करने से प्रतिषिद्ध करती है, सांविधानिक विधिमान्यता को कायम रखा था।

2. बिहार वित्त अधिनियम, 1981 न केवल माल के विक्रय या क्रय पर कर के उद्ग्रहण के लिए अधिनियम है, बल्कि अन्य विभिन्न विधियों को समेकित और संशोधित करने वाला अधिनियम भी है। यहां पर हमारा संबंध अधिनियम की धारा 5 से है। जो कि अधिनियम के भाग I में है जिसका शीर्षक "बिहार में माल के विक्रय और क्रय पर कर का उद्ग्रहण" है और सप्तम् अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 से सम्बन्धित है। तारीख 15 जनवरी, 1981 वाली दो अलग-अलग अधिसूचनाओं द्वारा बिहार राज्य की सरकार ने, अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, 15 जनवरी, 1981 को वह तारीख नियत की जिससे धारा 5 के अधीन अधिभार उद्ग्रहणीय होगा और, ऐसे व्यवहारी द्वारा जिसका सकल व्यापार आर्वत वर्ष के दौरान पांच लाख रुपए से अधिक है, उसके द्वारा संदेय कर के अलावा, संदेय कर की कुल रकम के 10 प्रतिशत की दर से अधिभार की दर नियत की। वह अधिनियम राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के लिए आरक्षित था और 20 अप्रैल, 1981 को उसे राष्ट्रपति की अनुमति मिल गई। जहां तक कि प्रश्नगत अधिसूचनाओं की विधिमान्यता का सम्बन्ध है, कोई भी मुद्दा नहीं उठाया गया है और इसी कारण से हमें उसके सम्बन्ध में विचार करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।

3. इन अपीलों में अपीलार्थियों ने जो मुख्य दलील पेश की है वह यह है कि साधारणतः आवश्यक वस्तुओं के और विशिष्टतः औषधियों और विनिर्मितियों के कीमत नियतन का क्षेत्र आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन समय-समय पर केन्द्रीय सरकार द्वारा निकाले गए विभिन्न नियंत्रण संबंधी आदेशों के बल पर नियंत्रित क्षेत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है; धारा 3 की उपधारा (1) माल के विनिर्माता या उत्पादक को कर का दायित्व उपभोक्ता को संक्रांत करने की इजाज़त देती है और इसी कारण से बिहार राज्य के विधानमण्डल को अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) को अधिनियमित करने की कोई भी विधायी सक्षमता नहीं थी जो कि यह प्रतिषिद्ध करती है कि कोई भी व्यवहारी, जो कि स्वयं द्वारा संदेय कर के अलावा, अधिभार का संदाय करने के दायित्वाधीन हो, अधिभार की रकम संगृहीत करने का हकदार नहीं होगा और तद्द्वारा उसने संसद् द्वारा बनाई गई विधि के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र का अतिक्रमण किया है। अनुकल्पित रूप से, दलील यह है कि यदि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) की परिधि के भीतर आवश्यक वस्तुओं के विक्रय सहित, सभी विक्रय आते हैं जिनकी कीमत केन्द्रीय सरकार आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन निकाले गए विभिन्न नियंत्रण आदेशों द्वारा नियत करती है, तो राज्य की विधि और विभिन्न नियंत्रण आदेशों के बीच विधि की दृष्टि से विरोध होगा जो कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 के अनुसार अवश्य ही अभिभावी होंगे। अपीलार्थियों की ओर से दूसरी दलील यह भी पेश की गई है कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) विधानमण्डल के अधिकारातीत है, क्योंकि अधिभार संदत्त करने का दायित्व ऐसे व्यवहारी पर होता है जिसका वर्ष के दौरान सकल व्यापारावर्त पांच लाख रुपए से अधिक होता है अर्थात् जिनका सम्बन्ध ऐसे माल से होता है जिसके अन्तर्गत विक्रय या क्रय से संबंधित ऐसे संव्यवहार शामिल होते हैं जो कि अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य के दौरान या राज्य के बाहर या भारत के राज्य-क्षेत्र में आयात के या उसके बाहर माल के निर्यात के दौरान किए गए हैं। दलील यह है कि ऐसे संव्यवहार संविधान के अनुच्छेद 286 की परिधि के भीतर आते हैं और इसी कारण से वे अधिनियम की परिधि के बाहर है और इस प्रकार उन्हें सकल व्यापारावर्त की संगणना करने के लिए, जैसा कि अधिनियम की धारा 2 (झ) में परिभाषित है, अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन अधिभार के आपतन के प्रयोजनार्थ विचार में नहीं लिया जा सकता।

4. दलीलों में अपनाए गए ढंग को ध्यान रखते हुए उन तथ्यों के प्रति संक्षेप में निर्देश करना सुविधाजनक होगा जो कि 1982 की सिविल अपील सं० 2567 में—अर्थात् मैसर्स होएस्ट फार्मास्युटिकल्स लि० और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य वाले मामले में और 1982 की सिविल अपील सं० 3277 में अर्थात् मैसर्स ग्लैक्सो लैबोरेटरीज (इण्डिया) लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य—के अभिलेख से प्रकट होते हैं। मैसर्स होएस्ट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड और मैसर्स ग्लैक्सो लैबोरेटरीज (इण्डिया) लिमिटेड ऐसी कम्पनी हैं जो कि कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन रजिस्ट्रीकृत है और बिहार राज्य सहित, सम्पूर्ण भारत में विभिन्न प्रकार की दवाओं और जीवन रक्षा औषधियों के विनिर्माण-विक्रय में लगी हुई हैं। पटना में उनकी शाखा या विक्रय डिपो है जो कि अधिनियम की धारा 14 के अधीन व्यवहारी के रूप में रजिस्ट्रीकृत हैं और वे बिहार के लगभग सभी जिलों में नियुक्त किए गए थोक वितरकों और स्टाक रखने वालों के जरिए अपने विनिर्मित उत्पादों का विक्रय करते हैं, जो कि खुदरा व्यापारियों को बेचते हैं जिनकी मार्फत दवाएं और औषधियां उपभोक्ताओं तक पहुंचती हैं। उनके द्वारा बेची गई औषधियों और औषधियों का लगभग 94% की कीमत नियंत्रित होती है। इसके अन्तर्गत आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा निकाले गए औषधि (कीमत नियंत्रण) आदेश, 1979 के अधीन स्थानीय-कर शामिल नहीं हैं और वे अभिव्यक्त रूप से केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर इस प्रकार नियत की गई कीमत से अधिक उन औषधियों और औषधियों को बेचने से प्रतिषिद्ध है, जो कि विनिर्माता या उत्पादक को कर दायित्व उपभोक्ता के पास संक्रान्त करने की इजाजत देती है। अपीलार्थियों ने स्वयं द्वारा विनिर्मित सुपरिचित औषधियों और औषधियों की मुद्रित कीमत-सूची अभिलेख पर पेश की है जिसमें वह कीमत दर्शित की गई है जिस पर वे फुटकर व्यापारियों को बेचते हैं और फुटकर कीमत भी दर्शित की गई है जिनमें से दोनों में उत्पादक शुल्क शामिल है। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी संविदा के निबन्धों में से एक यह है कि विक्रय-कर तथा स्थानीय कर वहां प्रभारित किए जाएंगे जहां कि लागू हो।

5. इन अपीलार्थियों ने 1980-81 और 1981-82 वाले निर्धारण वर्षों के लिए मांग सूचनाओं सहित, यदि कोई हो तो, निर्धारण सम्बन्धी उनके आदेश को अभिलेख पर पेश किया है। 1980-81 वाले निर्धारण वर्ष के लिए, वाणिज्य-कर अधिकारी, पटना सर्किल, पटना ने पटना स्थिति उनकी शाखा कार्यालय के जरिए बिहार राज्य में उनके द्वारा फाइल की गई विवरणी के आधार पर मैसर्स होएस्ट फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड के विक्रयों के सकल व्यापारावर्त का अवधारण 3,13,69,598.12 रुपए किया था और उस पर संदेय कर 19,65,137.52 रुपए किया था। 15 जनवरी, 1981 से लेकर 31 मार्च, 1981 की कालावधि के लिए यह दायित्व 3,85,023.33 रुपए आता है और 10% की दर से उस पर अधिभार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

38,503.33 रुपए होता है। इस प्रकार से मैसर्स होएस्ट फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड पर निर्धारित कर जिसके अन्तर्गत 1980-81 वाले निर्धारण वर्ष के लिए अधिभार शामिल है, 20,03,640.85 रुपए की रकम होगी। 1981-82 वाले निर्धारण वर्ष के लिए जो आंकड़े हैं वे उपलब्ध नहीं हैं। 1980-81 और 1981-82 वाले निर्धारण वर्षों के लिए मैसर्स ग्लैक्सो लैबोरेटरीज (इण्डिया) लिमिटेड द्वारा फाइल की गई वार्षिक विवरणियों में पटना स्थित उनकी शाखा की मार्फत बिहार राज्य में उनके विक्रयों का सकल व्यापारावर्त क्रमशः 5,17,83,985.76 रुपए और 5,89,22,346.64 रुपए दिखाया गया है उन्होंने विवरणी के साथ-साथ कर का संदाय किया है जो कि 34,06,809.80 रुपए और 40,13,057.28 रुपए होता है जिनमें क्रमशः 5 जनवरी, 1981 से लेकर 31 मार्च, 1981 तक और अप्रैल, 1980 से लेकर 19 जनवरी, 1982 तक की कालावधि के लिए कर की 10% की दर से अधिभार शामिल है जो कि क्रमशः 34,878.62 रुपए और 30,995.86 रुपए होता है। 1980-81 वाले निर्धारण वर्ष में 55,383.98 रुपए और 1981-82 वाले वर्ष में 13,112.35 रुपए का अधिक संदाय किया गया है। इन आंकड़ों से यह पता चलता है कि बिहार में ही ये अपीलार्थी इतना बड़ा कारोबार चलाते हैं और अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन उद्गृहीत अधिभार का अधिक भाग वहन करने की उनकी कितनी क्षमता है।

6. उच्च न्यायालय ने एस० कोदार बनाम केरल राज्य[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिनमें इस न्यायालय ने तमिलनाडु एडीशनल सेल्स टैक्स ऐक्ट की धारा 2 की उपधारा (2) की सांविधानिक विधिमान्यता को कायम रखा था जो कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) से तात्विक रूप से समान थी और जिसने इस बात का प्रतिषेध किया था कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई भी व्यवहारी स्वयं द्वारा संदेय अतिरिक्त कर संगृहीत करने का हकदार नहीं होगा। उसने यह अभिनिर्धारित किया था कि धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन उद्गृहीत अधिभार वस्तुतः वर्ष के दौरान व्यवहारी द्वारा किए गए विक्रयों के जोड़ पर अतिरिक्त कर है और यह कि यह आवश्यक नहीं है कि व्यवहारी क्रेता को विक्रय पर कर का आपतन इस दृष्टि से संक्रान्त करने में समर्थ होना चाहिए जिससे कि वह माल के विक्रय पर कर हो सके। मात्र इसलिए क्योंकि व्यवहारी अधिभार संगृहीत करने से अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) द्वारा निवारित किया

[1] [1974] 2 उम० नि० प० 1156=[1975] 1 एस० सी० आर० 121.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया है, वह विक्रय कर पर अधिभार बना रहता है। उसने कोदार वाले मामले का अवलम्ब लेते हुए अभिनिर्धारित किया था कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन ऐसे सभी व्यवहारियों पर जो कि उसमें विनिर्दिष्ट वर्ग के भीतर आते हैं, अर्थात् जिनका वर्ष के दौरान सकल व्यापारावर्त पांच लाख रुपए से अधिक होता है, कर के 10% की समान दर से प्रभार लगता है और इसीलिए वह विभेदक नहीं है तथा संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं करता है और न ही यह कहना संभव है कि चूंकि व्यवहारी अधिभार का आपतन क्रेता को संक्रान्त करने में असमर्थ बना दिया गया है इसलिए धारा 5 की उपधारा (3) अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकार पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करती। उसने इस दलील को अस्वीकार कर दिया कि धारा 5 राज्य विधान-मण्डल की विधायी सक्षमता के परे है क्योंकि जैसा कि अधिनियम की धारा 2 (2) में परिभाषित है, "सकल व्यापारावर्त" अभिव्यक्ति की परिधि के भीतर न केवल अधिभार के उद्ग्रहण के प्रयोजनार्थ, किसी व्यवहारी द्वारा किए गए माल के विक्रय के सम्बन्ध में किसी विशिष्ट कालावधि के दौरान उसके द्वारा प्राप्त और प्राप्य विक्रय की कीमतों का जोड़ मात्र नहीं आता, बल्कि राज्य के बाहर या अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य या निर्यात के दौरान किया गया माल का विक्रय भी आता है। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन अधिभार के उद्ग्रहण का आधार, जैसा कि कोदार वाले (उपर्युक्त) मामले में इस न्यायालय ने स्पष्ट किया था, 'संदत्त करने की क्षमता' है। इसके अलावा, उसने यह भी अभिनिर्धारित किया था कि धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन किसी व्यवहारी का सकल व्यापारावर्त ऐसे व्यवहारियों के वर्गीकरण के लिए ही है जो कि कुल कर के 10% की दर से उनके द्वारा संदेय कर के अतिरिक्त अधिभार संदत्त करने के दायित्वाधीन हैं। मात्र इस तथ्य से कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) के कारण अधिभार संदत्त करने का दायित्व संक्रान्त नहीं किया जा सकता है, यह अभिप्रेत है कि उसके परिणामस्वरूप व्यवहारियों द्वारा उपार्जित लाभ कम हो जाता है और यह कि उन्हें अधिभार के अतिरिक्त बोझ को वहन करने के लिए कार्यकलाप का संयोजन करना पड़ता है। जहां तक कि दवाओं और औषधियों के विनिर्माताओं और उत्पादकों का संबंध है, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) और औषधि (कीमत नियंत्रण) आदेश, 1979 के पैरा 21 के बीच कोई भी ऐसा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

टकराव नहीं है जिसका सुलझाव न हो सके और दोनों ही विधियों का अनुपालन किया जा सकता है। यदि औषधियों के ऐसे विनिर्माता और उत्पादक यह पाते हैं कि वे अधिभार को आमेलित करने के लिए कीमत का पुनर्संयोजन नहीं कर सकते तो उपाय नियंत्रण आदेश के पैरा 16 के अधीन कीमत के ढांचे का पुनरीक्षण करना हो सकता है। यदि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) और नियंत्रक आदेश के पैरा 21 के बीच विधि की दृष्टि से विरोध है, तो अधिनियम, जिसे अनुच्छेद 254 के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो चुकी है, अभिभावी होगा। कोदार वाले (उपर्युक्त) मामले में इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय से निरुत्साहित न होकर अपीलार्थियों ने अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) की सांविधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी कि उस मामले में न्यायालय ने आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा आवश्यक वस्तुओं की कीमत नियतन के प्रभाव पर विचार नहीं किया था जिसका, उस अधिनियम की धारा 6 के कारण, उससे असंगत किसी अन्य विधि के होते हुए भी, अध्यारोही प्रभाव है।

7. इन अपीलों में जो दलीलें दी गई थीं, वे विशिष्टतः परिसंघ की सर्वोच्चता के संबंध में और संघ और राज्य विधानमण्डल के बीच शक्तियों के टकराव के संबंध में और इस बात के संबंध में भी, यदि ऐसा कोई टकराव हो तो, उनकी सबंधित शक्तियों का किस प्रकार उचित रूप से समन्वय किया जा सकता है, तात्विक विद्वता और कुशाग्र बुद्धि के साथ पेश की गई है। इन अपीलों के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेलों ने निम्नलिखित दलीलें पेश की हैं : (1) संविधान के 246(3) के प्रारम्भिक ये शब्द "खण्ड (1) और खण्ड (2) के अधीन रहते हुए" किसी राज्य के विधानमण्डल को सातवीं अनुसूची की सूची 2 में प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में उस राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की शक्ति को अनुसूची 1 की सूची 3 में प्रगणित विषयों में से किसी के संबंध में संघ द्वारा विधान बनाने की शक्ति के अध्यधीन करते हैं। अर्थात् यह कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) पर, जिसमें यह उपबंध किया गया है कि कोई भी व्यवहारी उस पर उद्गृहीत अधिभार संगृहीत करने का हकदार नहीं होगा, इसी कारण से, आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 अभिभावी होगी, जिसमें यह उपबंध किया गया है कि अधिनियम की धारा 3 के अधीन किए गए आदेश अधिनियम या अधिनियमिति या किसी ऐसी लिखत से भिन्न जिसका प्रभाव अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति के बल पर हो,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तर्विष्ट उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, का प्रभाव होगा। सम्पूर्ण दलील नियंत्रित क्षेत्र के सिद्धान्त पर और परिसंघीय सर्वोच्चता की संकल्पना पर आधारित है। संक्षेप में दलील यह है कि संघ की शक्ति सूची 2 की सूची 3 के बीच टकराव होने की दशा में अभिभावी होंगे। (2) अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) जिसमें यह उपबंध किया गया है कि कोई भी व्यवहारी उस पर उद्गृहीत अधिभार की रकम संगृहीत करने का हकदार नहीं होगा, स्पष्ट रूप से सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के भीतर आती है और वह ओषधि (कीमत) नियंत्रण आदेश, 1979 की युक्ति से साधारण रूप से वहां तक जहां तक कि ओषधि के कीमत नियत का संबंध है और विशिष्टतः पैरा 21 से जो कि ओषधि के विनिर्माता या उत्पादक को विक्रय कर संदत्त करने का दायित्व उपभोक्ता के पास संक्रान्त करने में समर्थ बनाता है, से टकराती है और/या उससे असंगत है या उसके विरुद्ध है। यदि ऐसा है, तो राज्य की विधि का नियंत्रण आदेश के बीच विरोध होगा, जो कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 के अनुसार अवश्य ही अभिभावी होगी। न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह दोनों ही विधियों के बीच टकराव को रोकने के लिए, सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वियन के नियम को अपनाए और यह सुनिश्चित करने की सावधानी बरतनी चाहिए कि दोनों किसी अधिक्रमण के बिना भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त हो सकती है। इसलिए यह निवेदन किया गया कि विरोध का तो कोई प्रश्न ही नहीं है और समन्वय के सिद्धान्त के आधार पर उससे बचा जा सकता है। यह आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 में आए हुए सर्वोपरि खण्ड को पूर्ण रूप से प्रभावी बनाकर ही संभव हो सकता है। (3) अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) में अन्तर्विष्ट उपबंध प्रत्यक्षतः और स्पष्टतः विभेदक है। आवश्यक वस्तु अधिनियम कतिपय नियंत्रित वस्तुओं और उनके विक्रेताओं को नियंत्रित कीमतें नियत करके विशिष्ट रीति से मानता है। इस केन्द्रीय विधि द्वारा इस प्रकार समझे गए विक्रेता ऐसी परिस्थिति में हैं कि उनकी समानता ऐसे अन्य विक्रेताओं से नहीं की जा सकती है जिन पर किन्हीं नियंत्रण आदेशों का प्रभाव न पड़ा हो। ऐसे वर्ग के विक्रेताओं को जो कि अपनी विक्रय कीमतें बढ़ा सकते हैं और धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन उद्गृहीत अधिभार आमेलित कर सकते हैं तथा ऐसे वर्ग के विक्रेताओं को जैसे कि ओषधियों और ओषधियों के विक्रेता और उत्पादक हैं, जो कि नियंत्रित कीमत से अधिक अपने विक्रय की कीमत नहीं बढ़ा सकते हैं, को समान रूप से माना जाता है। यदि यह तथ्य भिन्न-भिन्न वर्ग अलग-अलग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैं, मान लिया जाता है, तो राज्य की ऐसी विधि से, जो कि दोनों वर्गों को समान रूप से मानती है और उन पर भिन्न-भिन्न भार लादती है, अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होगा। राज्य असमान को समान रूप से मानकर भिन्न-भिन्न वर्गों पर भिन्न-भिन्न भार अधिरोपित नहीं कर सकता है। (4) अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) द्वारा, जो कि ओषधियों और ओषधियों के विनिर्माताओं और उत्पादकों को अधिभार संदत्त करने का दायित्व संक्रान्त करने से निवारित करती है, अधिरोपित निर्बन्धन अविहारी है और ऐसे विनिर्माताओं और उत्पादकों पर अननुपातिक भार लादती है तथा अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन गारंटीकृत उनके कारबार चलाने के स्वातंत्र्य पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन है। (5) अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) बिहार राज्य के विधानमण्डल के अधिकारातीत वहां तक है जहां तक कि कतिपय वर्ग के व्यवहारियों पर अधिभार के उद्ग्रहण के प्रयोजनार्थ, वह अधिनियम की धारा 2(ञ) में यथा-परिभाषित उसके सकल व्यापारावर्त को विचार में लेती है। इस बात पर जोर दिया गया है कि राज्य का विधानमण्डल सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) जैसे उपबंध अधिनियमित करने के लिए सक्षम नहीं है, जो कि किसी व्यवहारी के सकल व्यापारावर्त को, जैसा कि धारा 2(ञ) में परिभाषित है, अधिभार के उद्ग्रहण का आधार बनाता है। इसके अन्तर्गत माल के विक्रय या क्रय से संबंधित ऐसे संव्यवहार शामिल हैं जो कि अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य के अनुक्रम में या भारत के परिक्षेत्र के बाहर किया गया हो। ऐसे संव्यवहार अधिनियम की परिधि के बाहर हैं और इसी कारण से उन्हें अधिभार के आपतन के वहन के प्रयोजनार्थ अधिनियम की धारा 2(झ) में परिभाषित सकल व्यापारावर्त की संगणना करने के प्रयोजनार्थ विचार में नहीं लिया जा सकता।

8. बिहार राज्य की ओर से उपस्थित होते हुए विद्वान् सालिसिटर जनरल ने जो इसके विरुद्ध दलील पेश की है, वह यह है कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) और नियंत्रण आदेश के पैरा 21 में कोई भी असंगति नहीं है और दोनों ही विधियों का पालन किया जा सकता है। उसके मतानुसार, संसद् द्वारा बनाई गई विधि और राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधि के बीच अनुच्छेद 254(1) के अधीन विरोध का प्रश्न केवल ऐसे मामले में ही उत्पन्न होता है जिसमें कि दोनों विधान समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से किसी एक के संबंध में एक ही क्षेत्र के संबंध में हो और इन दोनों विधियों के बीच में कोई प्रत्यक्ष टकराव हो। केवल वहीं जहां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि इन दोनों अपेक्षाओं की पूर्ति होती है, राज्य की विधि, विरोध की सीमा तक, शून्य होगी। विद्वान सालिसिटर जनरल की दलील यह है कि इस प्रश्न का अवधारण नियंत्रित क्षेत्र के सिद्धान्त को लागू न करके बल्कि सार और तत्व के नियम द्वारा करना होगा। उसने इसके अलावा यह दलील दी कि चूंकि अपीलार्थी औषधि के विनिर्माता या उत्पादक हैं इसलिए उनको नियंत्रण आदेश का पैरा 21 लागू नहीं होता जो कि खुदरा विक्रय से संबंधित है बल्कि उनको उसका पैरा 24 लागू होगा जिसमें विनिर्माता या उत्पादक द्वारा किसी थोक वितरक को किए गए विक्रय के बारे में उपबंध किया गया हो। नियंत्रण आदेश के पैरा 24 के अधीन, विनिर्माता या उत्पादक विक्रय कर के संदाय करने के दायित्व संक्रान्त करने का हकदार नहीं होता है और ऐसी कीमत में जो कि वह थोक व्यापारी या वितरक पर प्रभारित करता है, विक्रय कर शामिल होता है। उसने इस बात की भी दलील दी है कि आवश्यक वस्तुओं की, विशिष्टत: आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा निकाले गए नियंत्रण आदेश द्वारा, नियत औषधि और औषधि की नियंत्रित कीमत उसकी अधिकतम कीमत ही होती है और औषधि तथा औषधि के विनिर्माता या उत्पादक को नियंत्रित कीमत से नीचे कीमत पर उसमें ऐसी कोई भी बात रोकती हो। विद्वान सालिसिटर जनरल ने यह तर्क दिया है कि इससे जो बात होगी वह यह है कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन अधिभार के उद्ग्रहण के परिणामस्वरूप विनिर्माता या उत्पादक का लाभ कम हो जाएगा किन्तु उससे राज्य की विधि केन्द्रीय विधि से असंगत नहीं हो जाएगी। जहां तक कि औषधियों और औषधियों का संबंध है, चूंकि अधिभार अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) के अधीन विनिर्माता या उत्पादक ही वहन करते हैं, इसलिए ऐसी औषधियों और औषधियों की नियंत्रित कीमत उपभोक्ता के लिए एक ही होगी। अंत में, सालिसिटर जनरल की दलील यह है कि अपीलार्थियों ने यह दर्शित करने के लिए कोई भी सामग्री पेश नहीं की है कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन अधिभार का उद्ग्रहण ऐसा भार अधिरोपित कर देगा जो कि उनके द्वारा उपार्जित लाभ का अननुपातिक होगा और यह कि वह अधिहारी प्रकृति का है। हमारी राय में, इन दलीलों में पर्याप्त बल है।

9. और आगे विचार करने से पूर्व यह उल्लेख करना आवश्यक है कि औषधियों और औषधियों के विनिर्माताओं और उत्पादकों की ओर से पेश की गई दलीलें केवल उन्हीं अपीलार्थियों को लागू होती हैं जो कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आवश्यक वस्तुओं के व्यवहारी हैं, जिनकी नियंत्रित कीमत में वह विक्रय-कर शामिल है जो कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा निकाले गए नियंत्रण आदेश द्वारा नियत किया गया हो, किन्तु उनका फायदा अन्य ऐसे अपीलार्थी नहीं उठा सकते जो कि अन्य वस्तुओं के व्यवहारी हैं। ऐसे अपीलार्थियों के मामले को एस० के० कोदार[1] वाले उपर्युक्त मामले में इस न्यायालय द्वारा निकाला गया विनिश्चय पूरी तरह से लागू होगा, और अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन अधिभार संदत्त करने के उनके दायित्व के बारे में; इन अपीलों में पेश की गई ऐसी दलीलों को ध्यान में न रखते हुए यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए और वे संविधान के अनुच्छेद 226(1) में आए हुए प्रारम्भिक शब्दों "खण्ड (1) और (2) के अधीन रहते हुए" तथा आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 पर आधारित है। अतः यह आवश्यक है कि कोदार[1] वाले उपर्युक्त मामले में अधिकथित सिद्धान्तों पर पहले विचार कर लिया जाए।

10. कोदार वाले उपर्युक्त मामले में इस न्यायालय ने तमिलनाडु एडीशनल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1970 की सांविधानिक विधिमान्यता को कायम रखा था जो कि ऐसे व्यवहारी पर जिसका वार्षिक सकल व्यापारावर्त 10 लाख रुपए से अधिक होता है, 5% की दर से अतिरिक्त विक्रय-कर अधिरोपित करता है। उस अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (1) में का प्रभारी उपबंध अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के समरूप है और उसमें यह उपबंध किया गया है कि ऐसे व्यवहारी द्वारा संदेय कर को एक वर्ष के लिए व्यापारावर्त 10 लाख रुपए से अधिक होता है, उसके द्वारा संदेय कर के 5% की दर से अतिरिक्त कर के बराबर बढ़ा दिया जाएगा। उस अधिनियम की उपधारा (2), अधिनियम की अपनी धारा 5 की उपधारा (3) के तात्विक रूप से समान है और उसमें यह उपबंध किया गया है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई भी व्यवहारी स्वयं द्वारा संदेय अतिरिक्त कर को संगृहीत करने का हकदार नहीं होगा। न्यायालय ने व्यवहारियों की ये दलीलें अस्वीकृत कर दीं कि राज्य विधानमण्डल को सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन अतिरिक्त कर अधिरोपित करने की कोई भी विधायी सक्षमता प्राप्त नहीं है क्योंकि वह आय पर कर, न कि माल के विक्रय पर कर है; जहां तक कि अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (2) में

---

[1] [1974] 2 उम० नि० प० 1156=[1975] 1 एस० सी० आर० 121.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तर्विष्ट उपबंध अतिरिक्त संगृहीत करने से किसी व्यवहारी को प्रतिषिद्ध करता है, वहां तक वह अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन व्यापार चलाने के उनके मूल अधिकार पर और अनुच्छेद 19(1)(च) के अधीन सम्पत्ति धारण करने के उनके अधिकार (मूल) पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन है और यह कि अधिनियम के उपबंधों से अनुच्छेद 14 के अधीन वाले उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण होता है, क्योंकि वे व्यवहारी के व्यापारावर्त के अनुसार उसी माल के विक्रय पर कर की भिन्न-भिन्न दरें अधिरोपित करते हैं। न्यायालय ने यह अधिकथित किया कि (1) उस अधिनियम की धारा 2 की उपधारा(1) के अधीन उद्गृहीत अतिरिक्त कर वास्तव में वर्ष के दौरान व्यवहारी द्वारा किए गए विक्रयों के प्रयोग पर कर है और इसी कारण से, यदि कर वास्तव में माल के बिक्रय पर, न कि ऐसे व्यवहारी की आय पर कर है और इसी कारण से वह सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन आता है। (2) साधारण तौर से कर की रकम या दर ऐसा विषय है जो कि विधायी निर्णय की परिधि के भीतर अनन्य रूप से है और जब तक कि कर अपना स्वीकृत स्वरूप कायम रखता है और कर के आवरण में वह सम्पत्ति का अधिहरण राज्य के पक्ष में नहीं करता है तब तक उसकी युक्तियुक्तता को किसी न्यायालय द्वारा प्रश्नगत नहीं किया जा सकता। ऐसे व्यवहारी पर अतिरिक्त कर का अधिरोपण जिसका वार्षिक व्यापारावर्त 10 लाख रुपए से अधिक होता है, अनुच्छेद 19(1)(छ) या (च) के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन नहीं है क्योंकि कर माल के विक्रय पर लगाया जाता है और उसकी बाबत यह दर्शित नहीं किया गया कि वह अधिहारी है। (3) विक्रय-कर के ये आवश्यक लक्षण नहीं हैं कि विक्रेता को उसे उपभोक्ता पर संक्रान्त करने का अधिकार अवश्य ही होना चाहिए और न ही विक्रयों पर विधानमण्डल की कर अधिरोपित करने की शक्ति इस पर आधारित है कि विक्रेताओं से कर संगृहीत करने के लिए विक्रेता के पक्ष में उपबंध किया जाना चाहिए। मात्र इसलिए क्योंकि अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (2) ने क्रेता पर अतिरिक्त कर के आपतन को संक्रान्त करने से किसी व्यवहारी को निवारित करता है, यह नहीं कहा जा सकता कि वह अधिनियम अनुच्छेद 19 (1) (छ) या (च) के अधीन वाले मूल अधिकारों पर अभियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करता है। अधिनियम से संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता क्योंकि अतिरिक्त कर के उद्ग्रहण के प्रयोजनार्थ व्यवहारियों के व्यापारावर्त के आधार पर उनका वर्गीकरण ऐसे व्यवहारियों की क्षमता पर आधारित था जो कि कारबार के अधिक होने के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारण, आर्थिक रूप से सम्पन्नता की स्थिति में हैं अर्थात् यह कि वह संदाय करने की क्षमता पर आधारित है और उद्ग्रहण के प्रयोजनों के लिए ऐसा वर्गीकरण अयुक्तियुक्त नहीं था।

11. हमारे समक्ष पेश की गई विस्तृत दलीलों की विवक्षाओं को समझने की दृष्टि से सुसंगत कानूनी उपबंधों को उपवर्णित करना आवश्यक है।

12. अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) में ऐसे प्रत्येक व्यवहारी पर अधिभार उद्ग्रहण किए जाने के लिए उपबंध किया गया है, जिसका वर्ष के दौरान सकल व्यापारावर्त 5 लाख रुपए से अधिक होता है और वह निम्नलिखित पदों में है—

> * "5. अधिभार—(1) प्रत्येक ऐसा व्यवहारी जिसका सकल व्यापारावर्त वर्ष के दौरान पांच लाख रुपए से अधिक होता है, इस भाग के अधीन उसके द्वारा संदेय कर के अतिरिक्त, ऐसी दर से अधिभार का भी संदाय करेगा जो कि उसके द्वारा संदेय कर की कुल रकम के इस प्रतिशत से अधिक न हो, जैसी कि राज्य सरकार राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा नियत करे—
>
> परन्तु इस भाग के अधीन संदेय कर और अधिभार का योग ऐसे माल के संबंध में जो कि केन्द्रीय विक्रय-कर अधिनियम, 1956 (1956 का 74) की धारा 14 द्वारा अन्तर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य में विशेष महत्व के घोषित किए गए हैं, उस दर से अधिक

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "5. Surcharge—(1) Every dealer whose gross turnover during a year exceeds rupees five lakhs shall in addition to the tax payable by him under this part, also pay a surcharge at such rate not exceeding ten per centum of the total amount of the tax payable by him, as may be fixed by the State Government by a notification published in the official Gazette :
>
> Provided that the aggregate of the tax and surcharge payable under this part shall not exceed, in respect of goods declared to be of special importence in inter-State trade or commerce by section 14 of the

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं होगा जो कि उक्त अधिनियम की धारा 15 द्वारा नियत की गई हो—

परन्तु यह और कि ऐसे निर्धारण वर्ष की दशा में जो कि इस भाग या इस धारा के प्रारम्भ होने के पूर्व प्रारम्भ हो चुका है, यदि इस धारा के प्रारम्भ होने के लिए भिन्न-भिन्न तारीख हो, तो ऐसे सम्पूर्ण निर्धारण वर्ष के व्यापारावर्त को यह अवधारित करने के प्रयोजनार्थ विचार में लिया जाएगा कि क्या व्यवहारी इस धारा के अधीन अधिभार संदत्त करने के दायित्वाधीन है; किन्तु अधिभार व्यापारावर्त के उस भाग के संबंध में ही संदेय होगा जो कि इस धारा के प्रारम्भ के पश्चात् वाली कालावधि से सम्बन्धित है।"

उपधारा (1) के दोनों परन्तुक हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं हैं। अधिनियम की धारा 2 (ञ) में यथा-परिभाषित जहां तक कि "सकल व्यापारावर्त" अभिव्यक्ति तात्विक हैं, निम्नलिखित रूप में है—

* 2 (ञ) "सकल व्यापारावर्त" से अभिप्रेत है—

(i) विक्रय कर उद्ग्रहण के प्रयोजनों के लिए, माल के विक्रय के सम्बन्ध में (जिसके अन्तर्गत राज्य से बाहर या अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य या निर्यात के दौरान किया

Central Sales Tax, 1956 (Aat 74 of 1956), the rate fixed by section 15 of the said Act.

Provided further that in the case of an assessment year which has commenced before the commencement of this part or this section if there be a different date of the commencement of this section, turnover of the whole of such assessment year shall be teken into account for the purposes of determining whether the dealer is liable to pay surcharge under this section, but the surcharge shall be payable only in respect of that part of the turnover which relates to the period after the commencement of this section."

"2(j) "gross turnover" means—

(i) for the purpose of levy of sales tax, aggregate of sale prices received and receivable by a dealer, during any given period, in respect of sale of goods

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया माल का विक्रय है) किसी विशिष्ट कालावधि के दौरान, किसी व्यवहारी द्वारा प्राप्त और प्राप्य विक्रय कीमतों का योग, किन्तु उसके अन्तर्गत ऐसे माल के या ऐसे वर्ग या वर्गों या वर्णन के माल के विक्रय पर की कीमत शामिल नहीं है, जिस पर धारा 4 के अधीन क्रय-कर के आपतन का प्रभाव पड़ता है।"

अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3), जिसकी सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी गई है, में यह उपबंध किया गया है—

*" 5(3) इस भाग में अन्तर्विष्ट तत्प्रतिकूल किसी बात के होते हुए, उपधारा (1) में उल्लिखित कोई भी व्यवहारी जो अधिभार का संदाय करने के दायित्वाधीन है, इस अधिभार की रकम संगृहीत करने का हकदार नहीं होगा।"

13. उचित रूप से यह बात मानी गई है कि न केवल अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) जिसमें ऐसे व्यवहारियों पर जिनका वर्ष के दौरान सकल व्यापारावर्त 5 लाख रुपए से अधिक होता है, अधिभार के उद्ग्रहण के लिए उपबंध किया गया है किन्तु अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) भी जो यह व्यादिष्ट करती है कि कोई भी ऐसा व्यापारी जो कि उपधारा (1) के अधीन अधिभार संदत्त करने के दायित्वाधीन है, स्वयं द्वारा संदेय अधिभार की रकम संगृहीत करने का हकदार नहीं होगा, दोनों ही सप्तम अनुसूची 2 की प्रविष्टि 54 से सम्बन्धित हैं, जो कि निम्नलिखित रूप में है—

"54. सूची 1 की प्रविष्टि 92क के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, समाचारपत्रों से भिन्न माल के विक्रय या क्रय पर कर।"

(including the sale of goods made out side the State or in course of inter-State trade or commerce or export) but does not include sale price of goods or class or classes or description of goods which have borne the incidence of purchase tax under section 4."

"5 (3) Not with standing anything to the contrary contained in this part, no dealer mentioned in sub-section (1), who is liable to pay surcharge shall be entitled to collect the amount of this surcharge."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

14. इस सम्बन्ध में कोई भी सन्देह नहीं हो सकता कि केन्द्र और राज्य विधान दो अलग-अलग और सुभिन्न क्षेत्रों में प्रवर्तित होते हैं। आवश्यक वस्तु अधिनियम में आवश्यक वस्तु के विनियम, उत्पादन, प्रदाय और वितरण के लिए उपबन्ध किया गया है और वह सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 33 से सम्बन्धित है जो कि निम्नलिखित रूप में है—

"33. (क) जहां संसद् द्वारा विधि द्वारा किसी उद्योग का संघ द्वारा नियंत्रण लोक हित में समीचीन घोषित किया जाता है, वहां उस उद्योग के उत्पादों का और उसी प्रकार के आयात किए गए माल का ऐसे उत्पादों के रूप में ;

व्यापार वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, प्रदाय और वितरण ।"

15. आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 2 (क) में "आवश्यक वस्तु" की परिभाषा के अन्तर्गत अब 1974 के अधिनियम सं० 30 द्वारा उसमें खण्ड (ivक) के अन्तः स्थापन के परिणामस्वरूप 'औषधि' सम्मिलित कर दी गई है। आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) में यह उपबन्ध किया गया है—

"3. आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय वितरण आदि का नियंत्रण करने की शक्तियाँ—

(1) यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय हो कि किसी आवश्यक वस्तु के प्रदाय को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए या उसका साम्यिक वितरण और उचित कीमतों पर उसकी उपलभ्यता सुनिश्चित करने के लिए अथवा भारत की रक्षा के लिए या सैनिक संक्रियाओं के दक्ष संचालन के लिए किसी आवश्यक वस्तु की प्राप्ति के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह आदेश द्वारा उसके उत्पादन, प्रदाय और वितरण तथा उसमें व्यापार और वाणिज्य के विनियमन या प्रतिषेध के लिए उपबन्ध कर सकेगी।"

उपधारा (2) में यह अधिकथित किया गया है कि उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, तदधीन किए गए आदेश द्वारा निम्नलिखित का उपबन्ध किया जा सकेगा—

"ऐसी कीमत नियंत्रित करना जिस पर किसी आवश्यक वस्तु का क्रय या विक्रय किया जा सकेगा।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 जिसका सम्बन्ध इन अपीलों से महत्वपूर्ण है, इन पदों में है—

"6. अन्य अधिनियमितियों से असंगत आदेशों का प्रभाव—धारा 3 के अधीन किया गया कोई आदेश, इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति में या इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति के आधार पर प्रभावी किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभाव रखेगा।"

16. औषधि (कीमत नियन्त्रण) आदेश, 1979 में जिसे केन्द्रीय सरकार ने आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए निकाला था, जहां तक कि थोक औषधि तथा सूत्रण का सम्बन्ध है, कीमत नियतन की व्यापक स्कीम के लिए उपबन्ध किया गया है। पैरा 2(क) और 2(च) में "थोक औषधि" और "सूत्रण" की परिभाषा इस प्रकार दी गई है —

"2. इस आदेश में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,—

(क) 'प्रपुंज औषधि' से, औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अधीन स्वीकार औषध संग्रह या अन्य मानकों के अनुरूप कोई भी पदार्थ अभिप्रेत है, जिसके अन्तर्गत औषधीय गैस भी है। इनका प्रयोग उसी रूप में या किसी संरूपण में संघटक के रूप में किया जाता है;

(च) 'विनिर्मिति' से किसी भैमजि की सहायता से या उसके बिना, मानव प्राणियों या जीव-जन्तुओं के रोगों में आन्तरिक या बाह्यय प्रयोग के लिए या उसके निदान, इलाज, शमन या उनसे बचाव के लिए एक या अधिक प्रपुंज औषधि या औषधियों से मिलाकर तैयार की गई औषधि अभिप्रेत है, परन्तु इसके अन्तर्गत निम्नलिखित नहीं है—

× × × ×

17. यद्यपि यहां पर हमारा सम्बन्ध विनिर्मितियों की कीमत के ढांचे पर पड़ने वाले अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) के प्रभाव से है, तथापि पैरा 3(2) के अधीन प्रपुंज औषधि की कीमत के नियतन पर अधिक जोर दिया गया है, जो कि उसके उप-पैरा (3) के अधीन विनिर्माता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

युक्तियुक्त प्रत्यागम प्राप्त करने की इजाजत देता है। ऐसी प्रपुंज ओषधि का विनिर्माता या उत्पादक उप-पैरा (1) के अधीन अधिसूचित कीमत से अधिक कीमत, पर, जिसमें स्थानीय कर, यदि कोई हो, शामिल है, कर दिया जाएगा, बेचने का हकदार है।

18. जो महत्वपूर्ण है, वह विनिर्मितियों का कीमत-नियतन है और सुसंगत उपबन्ध पैरा 10 से लेकर 15 तक में, 17, 20, 21 और 24 में अन्तर्विष्ट हैं। पैरा 10 में ऐसे सूत्र के लिए उपबंध किया गया है जिसके अनुसार विनिर्मित की फुटकर कीमय की संगणना की जाएगी और वह इस प्रकार से है—

"10. विनिर्मितियों की फुटकर कीमत की संगणना—

किसी विनिर्मिति की फुटकर कीमत निम्नलिखित सूत्र के अनुसार संगणित की जाएगी, अर्थात्—

$$\text{फु० की०} = (\text{सा० ला०} + \text{सं० ला०} + \text{पै० सा०} + \text{पै० प्र०}) \times \frac{1 + \text{घ० को०}}{100} + \text{उ० शु०}$$

वहां—

"फु० की०" से फुटकर कीमत अभिप्रेत है।

"सा० ला०" से सामग्री की कीमत अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत, विनिर्दिष्ट किए गए ऐसे मानों के अनुसरण में ओषधियों की लागत और अतिरिक्त माल, यदि कोई हो, सहित प्रयुक्त अन्य भेषजीय सहायता, तथा उस पर प्रक्रियागत हानि भी है।

"सं० ला०" से ऐसे मानों के अनुसार निकाली गई वह संपरिवर्तन लागत अभिप्रेत है जो सरकार इस बारे में समय-समय पर राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

"पै० सा०" से ऐसे मानों के अनुसार निकाली गई पैकिंग सामग्री की लागत, जिसके अन्तर्गत उस पर हुई प्रक्रियागत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हानि भी है, अभिप्रेत है जो सरकार इस बारे में समय-समय पर राज्यपत्र में अधिसूचना द्वारा बिनिर्दिष्ट करे।

"पै० प्र०" से ऐसे मानों के अनुसार निकाले गए पैकिंग प्रभार अभिप्रेत हैं जो सरकार इस बारे में समय-समय पर राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

"व० की०" से पैरा 11 में विनिर्दिष्ट वर्धित कीमत अभिप्रेत है।

"उ० शु०" से उत्पाद-शुल्क अभिप्रेत है :

परन्तु किसी आयातित विनिर्मित की दशा में, उसके उतरने तक की लागत ऐसे मार्जिन सहित जैसा समय-समय पर अनुज्ञात करे, उसकी कीमत नियत करने का आधार होगी।

परन्तु यह और कि जहां कोई आयातित विनिर्मिति पुनः पैक की जाती है, वहां उसकी कीमत नियत करने का आधार यह योग होगा जो ऐसे मानों के अनुसार, जैसे सरकार समय-समय पर राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, उसके उतरने तक की लागत, पैकिंग सामग्री की लागत और पैकिंग प्रभार को जोड़कर आए।

स्पष्टीकरण---इस पैरा के प्रयोजनों के लिए "उतरने तक की लागत" से सीमा-शुल्क और निकासी प्रभारों सहित औषधि के आयात की लागत अभिप्रेत है।"

19. "वर्धित कीमत" अभिव्यक्ति जो कि ऊपर निर्दिष्ट की गई है, के बारे में पैरा 11 में दिया गया है और उसमें यह उपबन्ध किया गया है—

"11, पैरा 10 में निर्दिष्ट वर्धित कीमत के अन्तर्गत है, वितरण लागत, जावक भाड़ा, उन्नयन व्यय, विनिर्माता मार्जिन और व्यवसाय कमीशन और वह निम्नलिखित से अधिक नहीं होगी —

(i) तृतीय अनुसूची के प्रवर्ग 1 में विनिर्दिष्ट विनिर्मितियों की दशा में चालीस प्रतिशत।

(ii) उक्त अनुसूची के प्रवर्ग 2 में विनिर्दिष्ट विनिर्मितियों की दशा में पचपन प्रतिशत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(iii) उक्त अनुसूची के प्रवर्ग 3 में विनिर्दिष्ट विनिर्मितियों की दशा में शत-प्रतिशत"

20. हमारे प्रयोजनों के लिए पैरा 12 से लेकर 14 तक के उपबन्धों को दोहराना अनावश्यक है जिनके अन्तर्गत कीमत के नियत किए जाने संबंधी विस्तृत स्कीम विरचित की गई है।

21. पैरा 15 में कीमतों के पुनरीक्षण की शक्ति प्रदत्त की गई है और वह इस प्रकार है—

"15. विनिर्मितियों की कीमत पुनरीक्षित करने की शक्ति—इस आदेश में किसी बात के होते हुए भी,—

(क) सरकार, विनिर्माता या आयातकर्ता से ऐसी जानकारी प्राप्त करने के पश्चात्, जैसी वह आवश्यक समझे ऐसे विनिर्माता या आयातकर्ता द्वारा विक्रय की जाने वाली एक या अधिक विनिर्मितियों की जिसके अन्तर्गत तृतीय अनुसूची के प्रवर्गों में से किसी भी प्रवर्ग में विनिर्दिष्ट न की गई विनिर्मिति भी आती है, फुटकर कीमत ऐसी रीति में नियत या पुनरीक्षित कर सकेगी कि ऐसी विनिर्माता या आयातकर्ता के विक्रय आवर्त पर कर पूर्व प्रत्यागम पांचवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट अधिकतम कर पूर्व प्रत्यागम से अधिक न हों।

(ख) सरकार, यदि वह ऐसा करना लोकहित में आवश्यक समझे, तो, तृतीय अनुसूची के प्रवर्गों में से किसी प्रवर्ग में विनिर्दिष्ट किसी विनिर्मिति की फुटकर कीमत को आदेश द्वारा पुनरीक्षित कर सकेगी।"

22. पैरा 17 केन्द्रीय सरकार पर "औषधि कीमत समकारी लेखा" रखने का आज्ञापक कर्तव्य डालता है, जिसमें—

(क) यथास्थिति, विनिर्माता, आयातकर्ता या वितरक द्वारा,

(i) पैरा 7 के उप-पैरा (2) के अधीन अवधारित रकम;

(ii) अपनी प्रतिधारण कीमत के ऊपर यथास्थिति, सामान्य विक्रय कीमत या पूलित कीमत का आधिक्य; जमा किया जाएगा,

(ख) ऐसी अन्य धनराशियां जो इस बाबत विधि द्वारा संसद् द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, केन्द्रीय सरकार समय-समय पर अनुदत्त करे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ओषधि कीमत समकारी लेखा में जमा की गई रकम, बिनिर्माता, आयातकर्ता या वितरक की, उत्पादन बढ़ाने के प्रयोजन के लिए, उसकी प्रतिधारण कीमत और सामान्य विक्रय कीमत या, यथास्थिति, पूलित कीमत के बीच पड़ी कमी की प्रतिपूर्ति करने के लिए या सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में उपगत व्ययों को पूरा करने के पश्चात् ओषधियों के उचित दरों पर समान वितरण और उन्हें उपलब्ध कराने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए है। प्रत्येक बिनिर्माता, आयातकर्ता या बितरक कमी के लिए प्रतिकर के रूप में दावा करने का हकदार है।

23. पैरा 19 में यह निषेध किया गया है कि विक्रय के लिए आशयित किसी विनिर्मिति का प्रत्येक विनिर्माता या वितरक, व्यवहारियों, राज्य ओषधि नियंत्रकों और सरकार को एक मूल्य-सूची भेजेगा जिसमें वह कीमत दर्शित होगी जिस पर उस विनिर्मिति को उत्पादन-शुल्क सहित फुटकर विक्रेता को बेचा जाएगा। प्रत्येक ऐसे विनिर्माता या फुटकर विक्रेता को सरकार द्वारा यथा अनुमोदित कीमतों में परिवर्तन को प्रभावी करना होता है। प्रत्येक व्यवहारी से मूल्य सूची को अपने परिसर के सहजदृश्य स्थान पर लगाने की अपेक्षा की गई है।

24. फिर भी, पैरा 20, 21 और 24 को दोहराना जरूरी है क्योंकि वे हमारे उद्देश्य के लिए पर्याप्त महत्व के हैं और वे निम्नलिखित रूप में हैं—

20. **आधान के लेबल पर फुटकर कीमत प्रदर्शित करना :**—विक्रय के लिए आशयित बिनिर्मिति का प्रत्येक विनिर्मिता, आयातकर्ता या वितरक, विनिर्मित के आधान के लेबल पर या फुटकर विक्रय के लिए दिए गए उसके छोटे से छोटे पैक पर, अमिट मुद्रण चिह्न उस विनिर्मिति की अधिकतम फुटकर कीमत निम्न प्रकार दर्शित करेगा, अर्थात्, "खुदरा कीमत से अधिक नहीं होगी।" "स्थानीय कर अतिरिक्त।"

"21. **तृतीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट विनिर्मितियों की विक्रय कीमतों पर नियंत्रण :**—कोई भी फुटकर बिक्रेता किसी व्यक्ति को तृतीय अनुसूची के प्रवर्गों में से किसी प्रवर्ग में विनिर्दिष्ट किसी विनिर्मिति का विक्रय चालू कीमत-सूची में विनिर्दिष्ट कीमत या आधान या उसके पैक के लेबल पर प्रदर्शित कीमत से, इनमें से जो भी कम है, अधिक कीमत पर विक्रय नहीं करेगा। स्थानीय कर, यदि कोई है, भी संदेह होंगे।

स्पष्टीकरण :—इस पैरा के प्रयोजनों के लिए, "स्थानीय कर" में, किसी विशिष्ट क्षेत्र में तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन फुटकर विक्रेता द्वारा वस्तुतः संदत्त कोई विषय कर और चुंगी भी है।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"24. थोक विक्रेता और फुटकर विक्रेता के लिए कीमतें (1) :— कोई भी विनिर्माता, आयातकर्ता या वितरक किसी थोक विक्रेता को, जब तक कि इस आदेश या किसी अन्य आदेश के अधीन बनाए गए उपबन्धों के अधीन अन्यथा अनुज्ञात न हों, किसी विनिर्मिति का विक्रय निम्नलिखित से अधिक कीमत पर नहीं करेगा, अर्थात्—

(क) नैतिक औषधि की दशा में फुटकर कीमत में से उसके 14 प्रतिशत को घटाकर, आई कीमत; और

(ख) नैतिकेतर औषधि की दशा में, फुटकर कीमत में से उसके 12 प्रतिशत को घटाकर आई कीमत।

(2) कोई भी विनिर्माता, आयातकर्ता, वितरक या थोक विक्रेता, किसी फुटकर विक्रेता को, जब तक कि इस आदेश या किसी अन्य आदेश के अधीन बनाए गए उपबन्धों के अधीन अन्यथा अनुज्ञात न हो, किसी विनिर्मिति का विक्रय निम्नलिखित से अधिक कीमत पर नहीं करेगा, अर्थात् :—

(क) नैतिक औषधि की दशा में, फुटकर कीमत में से उसके 12 प्रतिशत को घटाकर आई कीमत; और

(ख) नैतिकेतर औषधि की दशा में, फुटकर कीमत में से उसके 10 प्रतिशत को घटाकर आई कीमत।

स्पष्टीकरण :—इस पैरा के प्रयोजनों के लिए,—(i) "नैतिक औषधि" के अन्तर्गत वे सभी औषधियां है जो औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 (1940 का 23) के अधीन निर्मित औषधि और प्रसाधन सामग्री नियम 1945 से संलग्न अनुसूची ग, अनुसूची ग(1) की प्रविष्टि सं० 1,2,3,7,8 और 9, अनुसूची ङ, अनुसूची छ, अनुसूची ज और अनुसूची ठ में विनिर्दिष्ट की गई हैं; और

(ii) "नैतिकेतर औषध" से नैतिक औषधियों में भिन्न सभी औषधियां अभिप्रेत हैं।

(3) उप-पैरा (1) और (2) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, सरकार, थोक विक्रेता या फुटकर विक्रेता को ऐसी किसी विनिर्मिति की बाबत, जिसकी कीमत इस आदेश के अधीन नियत या पुनरीक्षित हो चुकी है, कीमत लोक हित में साधारण या विशेष आदेश द्वारा नियत कर सकेगा।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

25. पैरा 3 के अधीन थोक भेषजों की कीमत के नियत किए जाने पर पर्याप्त बल दिया है जिस पैरा में कि उप-पैरा (1) द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि सरकार पहली अनुसूची या दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी देशीय रूप से विनिर्मित थोक औषधि के एक समान वितरण को विनियमित करने के विचार से और इसे उचित दर पर और उप-पैरा (2) के उपबन्धों के अधीन उपलब्ध कराने के लिए और ऐसी जांच कराने के, जैसी वह उचित समझे, पश्चात्, समय-समय पर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा वह अधिकतम कीमत नियत कर सकेगी जिस पर ऐसी प्रपुंज औषधि को बेचा जाएगा। पैरा (2) में यह आदेश है कि उप-पैरा (1) के अधीन प्रपुंज औषधि की कीमत नियत करते समय सरकार दक्ष विनिर्माता द्वारा विनिर्मित प्रत्येक प्रपुंज औषधि के उत्पादन की औसत कीमत को ध्यान में रखेगी और शुद्ध-मूल्य पर उचित लाभ की मंजूरी देगी। उसके स्पष्टीकरण में "दक्ष विनिर्माता" पद को परिभाषित किया गया है जिसमें उससे ऐसा विनिर्माता अभिप्रेत है—(i) जिसका देश में ऐसी प्रपुंज औषधि के कुल उत्पादन के सम्बन्ध में ऐसी प्रपुंज औषधि का उत्पादन बहुत बड़ा है, या (ii) जिसने ऐसी प्रपुंज औषधि के उत्पादन में दक्ष प्रौद्योगिकी लगाई है। उप-पैरा (3) में यह उपबन्ध है कि कोई भी व्यक्ति किसी प्रपुंज औषधि को उप-पैरा (1) के अधीन अधिसूचित कीमत से अधिक कीमत पर उस पर संदेय स्थानीय करों को मिलाकर, यदि कोई हों, नहीं बेचेगा।

26. इस बात पर जोर दिया गया कि प्रपुंज औषधि की कीमत नियत करते हुए, सरकार को किसी विशिष्ट विनिर्माता द्वारा उस प्रपुंज औषधि के उत्पादन की औसत लागत को किसी विनिर्माता की, जो दक्ष विधियों का प्रयोग करता है, लागत को ध्यान में रखते हुए और विनिर्मित औषधि के शुद्ध-मूल्य पर उचित लाभ की मंजूरी देते हुए विचार करना पड़ता है। अन्यथा, प्रत्येक विनिर्माता उत्पादन की लागत के ऐसे आंकड़े दिखाएगा जो स्वीकार्य नहीं होंगे। किसी दक्ष विनिर्माता के उत्पादन की औसत लागत की कीमत नियत करने के लिए मानक बनाया जाता है किन्तु, प्रपुंज औषधि की कीमत के इस प्रकार नियत किए जाने में विनिर्माता को उचित प्रत्यागम की मंजूरी दी जाती है। उप पैरा (3) के अधीन ऐसी प्रपुंज औषधि का विनिर्माता या उत्पादक इसे ऐसी कीमत पर बेचने का हकदार होता है जो इस प्रकार नियत की गई कीमत, उस पर संदेय करों को मिलाकर, से अधिक न हो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

27. अधिक बल इस बात पर दिया गया है कि किसी दक्ष विनिर्माता को औसत कीमत में विनिर्मित औषधि के शुद्ध-मूल्य पर उचित प्रत्यागम की मंजूरी दी गई है और इस प्रकार नियत की गई कीमत में स्थानीय कर अर्थात् विक्रय कर सम्मिलित नहीं है। इसके अतिरिक्त जोर देकर यह भी कहा गया कि उप-पैरा (3) में "स्थानीय करों" पद से किसी राज्य में उद्ग्रहणीय विक्रय कर अभिप्रेत और सम्मिलित हैं और उस प्रयोजन के लिए पैरा 21 के स्पष्टीकरण की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। हम पैरा 3 के उप-पैरा(3) की, जिसका प्रपुंज औषधि के विनिर्माता या उत्पादक से संबन्ध है या नियंत्रण आदेश के पैरा 21 की, जो कि तीसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट विनिर्मितियों की नियंत्रित कीमत, जिसमें स्थानीय कर, अर्थात् विक्रय कर सम्मिलित नहीं है, सुसंगति का समर्थन करने में असमर्थ हैं। अपीलार्थी औषधियों और औषधियों के विनिर्माता या उत्पादक हैं और पैरा 24 द्वारा शासित हैं। पैरा 24 के अधीन, कोई भी विनिर्माता या उत्पादक कोई विनिर्मित किसी थोक विक्रेता को उस कीमत से उच्चतर कीमत पर बेचने का हकदार नहीं है जो नैतिक औषधियों की दशा में फुटकर कीमत में से उसका 14 प्रतिशत घटाकर और नैतिकेतर औषधियों की दशा में उसमें से 12 प्रतिशत घटाकर आती है। पैरा 24 के पदों से यह बिलकुल स्पष्ट है कि अपीलार्थीयों द्वारा विनिर्माता या उत्पादक के रूप में प्रभार्य कीमत वह कीमत है जिसमें विक्रय कर सम्मिलित है। नियंत्रण आदेश के पैरा 3 के उप-पैरा (3) और पैरा 21 पर आधारित यह दर्शित करने वाले संपूर्ण तर्क, कि नियंत्रित कीमत में विक्रय कर सम्मिलित नहीं है और अतः यह उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) के विरुद्ध है, पूर्णतः भ्रम में डालने वाला है। इस बात पर जोर दिया दिया गया कि अपीलार्थियों ने अपनी मूल्य-सूचियों में यह शर्त सन्निविष्ट की है कि विक्रय कर थोक विक्रेता या वितरक से प्रभार्य होगा और अतः उनका यह तर्क, कि वे अपनी औषधियों और औषधियों के विक्रय पर विक्रय कर वसूल करने के हकदार हैं, कायम नहीं रह सकता। ऐसी शर्त से नियंत्रण आदेश के पैरा 24 का स्पष्ट रूप से अतिलंघन होगा जोकि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन दण्डनीय है।

28. इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिभार विक्रय कर की प्रकृति का ही गया है और अतः, राज्य विधानमण्डल व्यवहारियों के कतिपय वर्ग पर, उनके द्वारा संदेय कर के अतिरिक्त, अधिभार उद्गृहीत करने के प्रयोजन के लिए उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) को अधिनियमित करने के लिए सक्षम था। जब राज्य विधानमण्डल प्रविष्टि 54 के अधीन माल के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विक्रय या क्रय पर कर उद्गृहीत करने के लिए सक्षम था तो यह व्यवहारियों के उस वर्ग को चुनने में भी समान रूप से सक्षम था जिन पर प्रभार पड़ना था। यदि ऐसा है तो राज्य विधानमण्डल निस्संदेह उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) अधिनियमित कर सकती थी जिससे उन व्यवहारियों को, जो उसकी उपधारा (1) के अधीन अधिभार का संदाय करने के दायित्वाधीन हैं, उसे क्रेता से वसूल करने से प्रतिषिद्ध किया जा सके। यह बात स्पष्ट रूप से मान ली गई है कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) प्रविष्टि 54 से भी संबद्ध है। तथापि दलील यह दी गई है कि नियंत्रण आदेश के पैरा 21 के जोकि औषधियों के किसी विनिर्माता या उत्पादक को विक्रय-कर के संदाय के दायित्व को संक्रांत करने की मंजूरी देता है, और उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) के, जो ऐसे विनिर्माताओं और उत्पादकों को अधिभार वसूल करने से प्रतिषिद्ध करती है, बीच विरोध है और अतः, यह संवैधानिक रूप से शून्य है। ऐसा कहा गया है कि न्यायालयों को सुसंगत अर्थान्वयन के नियम को अपनाने का प्रयत्न करना चाहिए और नियंत्रण आदेश के पैरा 21 को प्रभावी बनाना चाहिए क्योंकि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) का प्रभाव औषधि (कीमत नियंत्रण) आदेश के अधीन औषधियों की कीमत नियत करने से है और अतः, आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 के कारण नियंत्रण आदेश का पैरा 21, जिसमें कर दायित्व को संक्रांत करने का उपबन्ध है, बना रहना चाहिए। यह दलील संविधान के अनुच्छेद 246 (3) के अर्थान्वयन पर आधारित है और यह कहा गया है कि सूची 2 में किसी विषय की बाबत किसी विधि को अधिनियमित करने की राज्य विधानमण्डल की शक्ति सूची 1 और सूची 3 में प्रगणित मामलों की बाबत विधि बनाने की संसद् की शक्ति के अधीन रहते हुए हैं।

29. इस अवस्था पर अपीलार्थियों की इस दलील से निपटना सुविधाजनक है कि यदि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) के अंतर्गत सभी विक्रय, जिनमें आवश्यक वस्तुओं के, जिनकी कीमतें आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए विभिन्न आदेशों के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित है, विक्रय भी सम्मिलित हैं, आने थे तो राज्य विधि और ऐसे नियंत्रण आदेशों में, जोकि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 के अनुसार कायम रहने चाहिए, विरोध हो जाएगा। ऐसी दशा में राज्य विधि, जिस सीमा तक वह उनके विरुद्ध है, समर्पित हो जानी चाहिए। हरि शंकर बागला और एक अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य[1] वाले मामले में

[1] (1955) 1 एस० सी० आर० 380.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय को आवश्यक प्रदाय (स्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1946 के खंड 6 में, जोकि आवश्यक वस्तु अधिनियम के खण्ड 6 का समविषयक है, अध्यारोही खण्ड से निपटने का अवसर मिला और उसमें निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया:—

> "निश्चित रूप से धारा 6 का प्रभाव उन विधियों में से किसी का निरसन करने या निराकृत करने का नहीं है। इसका उद्देश्य केवल उस जगह उन से कतराना है जहां वे आवश्यक प्रदाय (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1946 या उसके अधीन बनाए गए आदेशों में असंगत है। दूसरे शब्दों में, धारा 3 के अधीन किए गए आदेश वस्त्र नियंत्रण आदेश के अन्तर्गत आने वाले आवश्यक पदार्थ के बारे में, जहां भी यह आदेश विद्यमान विषयों के विरुद्ध है, प्रवृत्त हो गई और उस सीमा तक उन पदार्थों के सम्बन्ध में विद्यमान विधियां प्रवृत्त नहीं होंगी। कतिपय विधि से कतराने का अर्थ आवश्यक रूप से उस विधि का निरसन करना या निराकृत करना नहीं माना जा सकता। वह विधि निरसित नहीं होती किन्तु धारा 3 के अधीन उस आदेश के जारी रहने के दौरान यह तत्समय उस क्षेत्र में प्रवृत्त नहीं रहती।"

न्यायालय ने यह भी कहा कि उस अधिनियम की धारा 3 के अधीन आदेश कर दिए जाने के पश्चात् धारा 6 का पदार्पण होता है जिसमें संसद् ने यह घोषित किया है कि जैसे ही ऐसा आदेश प्रवर्तन में आएगा, उसका प्रभाव, उस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति में अंतर्विष्ट उससे किसी असंगतता के होते हुए भी, होगा।

30. हरि शंकर बागला[1] वाले मामले के संप्रेक्षणों का अवलम्ब लेते हुए, इस बात पर जोर दिया गया है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 में अध्यारोही खण्ड के प्रभाव से पैरा 21 के उपबंधों को अध्यारोही प्रभाव देना है। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी जोर दिया गया कि नियंत्रण आदेश जिसे केन्द्रीय सरकार ने आवश्यक वस्तु अधिनियम की संक्रांत जोकि किसी विनिर्माता या उत्पादक को विक्रय कर का दायित्व संक्रांत करने की अनुज्ञा देता है, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन जारी किया है, का पैरा 21 अवश्य बना रहना चाहिए और उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) जोकि उससे असंगत है, को निकाल देना चाहिए। यह दलील भ्रामक प्रतीत होती है।

---
[1] (1955) 1 एस० सी० आर० 380.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपीलार्थी, विनिर्मितियों के विनिर्माता या उत्पादक होने के नाते, नियंत्रण आदेश के पैरा 21 द्वारा शासित न होकर उसके पैरा 24 द्वारा शासित हैं और अतः, उनके द्वारा थोक विक्रेता या वितरक से प्रभार्य कीमत में विक्रय कर सम्मिलित है। उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) और नियंत्रण आदेश के पैरा 24 के बीच कोई विरोध न होने के कारण, आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 6 के अध्यारोही खण्ड के क्षेत्र में आने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

31. इससे अन्यथा भी, अर्थात्, यदि कुछ अपीलार्थी नियंत्रण आदेश के पैरा 21 द्वारा शासित थे तो इससे भी मुश्किल से कोई अन्तर पड़ेगा। उक्त अधिनियम की स्कीम के अधीन, कोई भी व्यवहारी धारा 3 के अधीन संदेय विक्रय कर का संदाय करने के और धारा 6 के अधीन क्रेता को संदेय अतिरिक्त विक्रय कर के दायित्व को संक्रांत करने के लिए स्वतंत्र होगा। तथापि, उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) उसकी उपधारा (1) के अधीन अधिभार का संदाय करने के दायित्वाधीन व्यवहारियों पर, क्रेताओं से उनके द्वारा संदेय अधिभार की रकम संग्रह करने से, एक प्रतिबन्ध अधिरोपित करती है जिसका केवल यह अभिप्राय है कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन ऐसे व्यवहारियों द्वारा संदेय अधिभार ऐसे व्यवहारियों द्वारा अर्जित फायदों में बंट जाएगा। पैरा 21 के अधीन औषधियों और औषधियों की नियंत्रित कीमत और फुटकर कीमत वही बनी रहेगी और चूंकि उपभोक्ता के हित का ध्यान रखा गया है, अतः धारा 5 की उपधारा (3) के अधीन अधिभार के संदाय करने का दायित्व सक्रांत नहीं हो सकता। ऐसा होने पर, उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) और नियंत्रक आदेश के पैरा 21 के बीच कोई विरोध नहीं है। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान काउन्सेल द्वारा कही गई सभी बातें इस कल्पना पर आधारित है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए विभिन्न नियंत्रण आदेश विनिर्माता या उत्पादक के संरक्षण के लिए हैं। यह तर्क स्पष्ट तौर पर भ्रामक है जिसमें विधान के प्रयोजन को नजरंदाज किया गया है।

32. जहां किसी आवश्यक वस्तु की कीमत नियत करना प्रदाय की कमी को ध्यान में रखते हुए उपभोक्ताओं के हितों को संरक्षित करने के लिए आवश्यक है वहां ऐसे निर्बन्धन इस आधार पर युक्तियुक्त कह कर आक्षेप नहीं किया जा सकता कि इसके परिणाम स्वरूप ऐसे बिचौलिए हटाए जाएंगे जिनके लिए नियत दर पर कारबार को चलाना लाभहीन हो जाएगा अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह कि इसके द्वारा विनिर्माता या उत्पादक प्रतिफल सुनिश्चित निर्माण के कारबार में लगाई गई पूंजी पर अथवा ऐसी आवश्यक वस्तु का उत्पादन करने पर सुनिश्चित न किया गया हो।

33. यह दलील सर्वथा भ्रामक है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए नियंत्रण आदेश द्वारा कीमत के नियत किए जाने के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह विनिर्माण के कारबार में लगाई गई पूंजी पर युक्तियुक्त प्रतिफल अभिप्राप्त करे अथवा आवश्यक वस्तु को उत्पन्न करे। अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन नियंत्रण आदेश जारी करने का प्रधान उद्देश्य उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुओं को साम्यागत रूप से वितरित करना तथा उपलभ्य करना है और यह प्रस्ताव मात्र कि उद्योग व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में लगे हुए व्यक्तियों में से कुछ व्यक्तियों को हानि पहुंचेगी ऐसी विनियमनकारी विधि के अयुक्तियुक्त करा देने के लिए कोई आधार नहीं है जब तक कि कीमत नियत किए जाने हेतु बनाया गया आधार इतना युक्तियुक्त है कि वह उस शक्ति से अधिक जिससे कि कीमत नियत की जाती है अथवा उद्योग के प्रति उचित लाभ सुनिश्चित करने की कानूनी बाध्यता है। श्री मीनाक्षी मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ[1] वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए इस दलील को नामंजूर कर दिया था कि वह नियंत्रित कीमत निश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि वह आवश्यक वस्तुओं को विनिर्मित करने या उत्पन्न करने सम्बन्धी कारबार में लगाई गई पूंजी का युक्तियुक्त प्रतिफल सुनिश्चित करे। यह मत निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया था :—

(रिपोर्ट का पैरा 76)

> "कीमतों का नियत करते समय कीमत सम्बन्धी सीमा रेखा निर्धारित करनी होगी जिससे कि उपभोक्ताओं अथवा सामान्य जनता के हितों के सम्बन्ध में प्रमुखतया विचार किया जा सके ताकि आवश्यक वस्तुओं की बाबत उत्पादकों में अधिमान दिया जा सके। सम्यागत रूप से उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुओं की उपलभ्यता सुनिश्चित करने सम्बन्धी पहलू तथा उचित कीमतों पर इसे क्रियान्वित किया जाना सब से महत्वपूर्ण विचार्य विषय है।"

34. प्राग आईस एण्ड आयल मिल्स और एक अन्य ब० भारत संघ[2] वाले मामले में न्या० चन्द्रचूड़ (जैसे कि वे तब थे) ने एक समरूप दलील को

[1] (1974) 2 एस० सी० आर० 398.

[2] [1979] 1 उम० नि० प० 1326=[1978] 3 एस० सी० आर० 293.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नामंजूर कर दिया था कि उत्पादकों अथवा व्यवहारियों को युक्तियुक्त प्रतिफल सुनिश्चित न करना असांवधानिक है। इस दलील को रद्द करते हुए न्या० चन्द्रचूड़ ने न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए दो पूर्ववर्ती विनिश्चयों अर्थात् पानीपत कोआपरेटिव शुगर मिल्स बनाम भारत संघ तथा अनेक पल्ले कोआपरेटिव ऐग्रीकल्चर एण्ड इण्डस्ट्रीयल सोसाइटी लि० बनाम भारत संघ[1] के प्रति निर्देश किया था और (रिपोर्ट के पृष्ठ 1316 पर) निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :—

"जैसे कि मीनाक्षी वाले मामले में (1974)2 एस० सी० आर० 398) उल्लेख किया गया था उस दलील की त्रुटि यह है कि ये दोनों विनिश्चय आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(3-ग) की भाषा पर निर्भर करते हैं जिसके अधीन यह कानूनी रूप से आवश्यक है कि चीनी का विनिर्माण करने वाले कारबार में लगाई गई पूंजी पर उद्योग के लिए युक्तियुक्त प्रतिफल सुनिश्चित किया जाए। इसलिए यह विनिश्चय अधिनियम की धारा 3(2) (ग) के पठित धारा 3(1) के अधीन कीमत के नियत किए जाने के विषय को लागू नहीं होते। अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3-क), (3-ख) तथा (3-ग) में आने वाले मामले सर्वथा एक भिन्न कोटि से सम्बन्धित हैं।"

विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने (पृ० 1314 पर) निम्नलिखित मत व्यक्त किया :—

"इन उपबंधों का प्रमुख प्रयोजन उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर आवश्यक वस्तुओं की उपलभ्यता सुनिश्चित कराना है और यद्यपि उत्पादक को स्पष्ट अन्याय हो प्रोत्साहन नहीं दिया जाना है तो आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(1) तथा धारा 3(2) (ग) द्वारा प्रदत्त शक्तियों को अग्रसर करते हुए की गई कार्यवाही की विधिमान्यता अनिवार्य नहीं है। उपभोक्ता के हित को समुख रखना होगा और प्रधान विचार्य विषय यह होगा कि किसी आवश्यक वस्तु को उचित दर पर, प्रत्येक अन्य विचार्य विषय पर अधिमान देते हुए सामान्य जन को उपलभ्य करना जाना चाहिए।"

35. जो दलील प्रस्तुत की गई है उसमें अधिनियम की धारा (1) के साथ पठित धारा 3 की उपधारा (2) के खण्ड (क) के अधीन नियंत्रित कीमत के बीच किसी प्रभेद का उल्लेख नहीं किया गया है। उपधारा (3-क) (3-ख)

---

[1] [1973] 2 एस० सी० आर० 560.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा (3-ग) के अधीन कीमत नियंत्रित करते समय प्रमुख तत्व वह आधार है जिसके द्वारा साम्यागत वितरण अभिप्राप्त किया जाना होगा और उपभोक्ताओं को उचित दर पर आवश्यक वस्तुओं को अभिप्राप्त करना होगा तथा विनिर्माता अथवा उत्पादक को विनिधान में युक्तियुक्त प्रतिफल या लाभ की युक्तियुक्त सुसंगत कसौटी नहीं है। हालांकि सामान्य रूप से विनिर्माता अथवा उत्पादक के प्रति खुला अन्याय नहीं होना चाहिए तो भी ऐसे विनिर्माता या उत्पादक के विनिधान पर उचित लाभ या उचित फायदे की दर अनिवार्य नहीं है। कतस प्रकार उद्योग में खुले बाजार में आर्थिक तत्वों के कारण कीमतों में उतार-चढ़ाव शिकायत नहीं हो सकती, इसी प्रकार इसमें भी आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन जारी किसी आदेश के परिणामस्वरूप कीमतों के कुछ बढ़ने या घटने की या उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) जैसे किसी उपबन्ध द्वारा, जिसमें यह उपबन्ध है कोई विनिर्माता या उत्पादक उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन उस पर उद्गृहीत अधिभार को इस कारण वसूल करने का हकदार नहीं होगा क्योंकि ऐसी बढ़ोतरी या कमी आर्थिक तत्वों के आधार पर होती है, लाए गए फायदों की मात्रा में कटौती की शिकायत नहीं की जा सकती।

36. विवादग्रस्त मुख्य बात यह है कि क्या उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) और नियंत्रण आदेश के पैरा 21 के बीच विरोध है और अतः धारा 5 की उपधारा (1) को उस सीमा तक छोड़ दिया जाना चाहिए। दलील यह दी गई कि यदि संसद् अपनी बात मनवाना चाहती है और सातवीं अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 33 के अधीन संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा उपभोक्ता पर कर के भार के संक्रमण के दायित्व सहित किसी आवश्यक सामग्री की कीमत नियत की जाती है तो राज्य विधानमण्डल इस बात के लिए सक्षम नहीं कि वह सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन किसी विधि का अधिनियमन करते हुए, क्रेता पर के दायित्व के संक्रमण को प्रतिषिद्ध करने के लिए उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) जैसे उपबंध को अधिनियमित करे।

37. उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) की सांविधानिक विधिमान्यता का निर्णय करने में लागू होने वाले सही सिद्धान्त से यह अवधारण किया जाना है कि क्या उसके तत्व और सार में यह सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 से सम्बन्धित विधि है और यह बात नहीं कि क्या उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) तथा आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन औषधि (कीमत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियंत्रण) आदेश के पैरा 21 में विरोध है और अतः यह शून्य है। इस प्रश्न से निबटने के लिए हमें संविधान के अनुच्छेद 246 को निर्दिष्ट करना होगा जो कि गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 100 के आधार पर है और जो निम्नलिखित रूप में है :—

"246 (1) खण्ड (2) और खण्ड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद् को सातवीं अनुसूची की सूची 1 में (जिसे इस संविधान में "संघ सूची" कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के सम्बन्ध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति है।

(2) खण्ड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद् को, और खण्ड (1) के अधीन रहते हुए, किसी राज्य के विधान-मण्डल को भी, सातवीं अनुसूची की सूची 3 में (जिसे इस संविधान में "समवर्ती सूची" कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति है।

(3) खण्ड (1) और खण्ड (2) के अधीन रहते हुए, किसी राज्य के विधान-मण्डल को सातवीं अनुसूची की सूची 2 में (जिसे इस संविधान में "राज्य सूची" कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के सम्बन्ध में उस राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की अनन्य शक्ति है।

(4) संसद् को भारत के राज्य क्षेत्र के ऐसे भाग के लिए जो किसी राज्य के अन्तर्गत नहीं है, किसी भी विषय के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति है, चाहे वह विषय राज्य सूची में प्रगणित विषय ही क्यों न हो।"

38. यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 246 संघ की और राज्य विधान-मण्डलों की विधायी शक्तियों पर प्रतिबन्ध अधिरोपित करता है और उसके अन्तिम विश्लेषण से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातें स्पष्ट होंगी—

1. संसद् को खण्ड (2) और (3) में किसी बात के होते हुए भी सूची 1 में प्रगणित विषयों में से किसी की बाबत विधि बनाने की अनन्य रूप से शक्ति है। अनुच्छेद 246 (1) के अध्यारोही खंड में संघ विधान-मण्डल के आधिपत्य या सर्वोच्चता के बारे में उपबन्ध है। इस शक्ति पर खण्ड (2) और (3) में अन्तर्विष्ट किसी भी बात द्वारा कोई रुकावट नहीं है क्योंकि ये खण्ड स्वयं ही अभिव्यक्त रूप से सीमित हैं और यह अनुच्छेद 246 (1) के अध्यारोही खंड के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधीन रहते हुए है। अनुच्छेद 246 में दिए गए भिन्न-भिन्न खण्डों का मिला-जुला प्रभाव न इस बात से अधिक से और न कम कि सूची (1) के अन्तर्गत आने वाले किसी विषय की बाबत संसद को विधि बनाने की अनन्य रूप से शक्ति है।

2. राज्य विधानमण्डल को सातवीं अनुसूची की सूची 2 में प्रगणित विषयों में से किसी की बाबत और ऐसे राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की अनन्य रूप से शक्ति है और इसे सूची 3 में प्रगणित किसी विषय की बाबत भी विधि बनाने की शक्ति है। सूची 2 में प्रगणित विषयों में से किसी की बाबत राज्य विधानमण्डल की विधि बनाने की अनन्य रूप से शक्ति का खण्ड (1) के अर्थात् सूची 1 में प्रगणित विषयों की बाबत संसद् विधि बनाने की अनन्य रूप से शक्ति है, अधीन रहते हुए प्रयोग किया जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप यदि सूची 1 में किसी प्रविष्टि और सूची 2 में किसी प्रविष्टि के बीच कोई विरोध हो जाता है जो कि सुलह के योग्य नहीं है तो सूची 2 में प्रगणित विषय की बाबत संदत की विधि बनाने की शक्ति राज्य विधानमण्डल की उस सीमा तक विधि बनाने की शक्ति को अतिष्ठित करेगी।

3. संसद और राज्य विधानमण्डल दोनों को सूची 3 में प्रगणित विषयों में से किसी की बाबत विधि बनाने की समवर्ती शक्तियां हैं।

39. अनुच्छेद 254 में समवर्ती सूची के अन्तर्गत आने वाले किसी विषय की बाबत संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि और राज्य विधान-मण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि के बीच विवादों का समाधान करने की रीति का उपबन्ध किया गया है जो कि निम्नलिखित रूप में है :—

"254 (1) यदि किसी राज्य के विधान-मण्डल द्वारा बनाई गई विधि का कोई उपबन्ध संसद् द्वारा बनाई गई विधि के, जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद् सक्षम है, किसी उपबन्ध के या समवर्ती सूची में प्रगणित किसी विषय के सम्बन्ध में विद्यमान विधि के किसी उपबन्ध के विरुद्ध है तो खण्ड (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, यथास्थिति, संसद् द्वारा बनाई गई विधि, चाहे वह ऐसे राज्य के विधान-मण्डल द्वारा बनाई गई विधि के पहले या बाद में पारित की गई हो, या विद्यमान विधि अभिभावी होगी और उस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राज्य के विधान-मण्डल द्वारा बनाई गई विधि उस विरोध की मात्रा तक शून्य होगी ।

(2) जहां राज्य के विधान-मण्डल द्वारा समवर्ती सूची में प्रगणित किसी विषय के सम्बन्ध में बनाई गई विधि में कोई ऐसा उपबन्ध अन्तर्विष्ट है जो संसद् द्वारा पहले बनाई गई विधि के या उस विषय के सम्बन्ध में किसी विद्यमान विधि के उपबन्धों के विरुद्ध है तो ऐसे राज्य के विधान-मण्डल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि, यदि उसको राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया है और उस पर उसकी अनुमति मिल गई है तो उस राज्य में अभिभावी होगी :—

परन्तु इस खण्ड की कोई बात संसद् को उसी विषय के संबंध में कोई विधि, जिसके अन्तर्गत ऐसी विधि है जो राज्य के विधान-मण्डल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि का परिवर्धन, संशोधन, परिवर्तन या निरसन करती है, किसी भी समय अधिनियमित करने से निवारित नहीं करेगी ।"

40. हमारे लिए अपीलार्थियों की ओर से प्रस्तुत की गई इस प्रतिपादन का समर्थन करना कठीन है कि मात्र संविधान के अनुच्छेद 246(3) के "खण्ड (1) और (2) के अधीन रहते हुए" तथा अनुच्छेद 246 (1) के अध्यारोही खण्ड में "खण्ड (2) और (3) में किसी बात के होते हुए भी" आरम्भिक शब्दों के कारण उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) को, जिसमें यह उपबन्ध है कि किसी भी व्यवहारी को अधिभार की रकम वसूल करने का हक नहीं होगा, राज्य विधान-मण्डल के अधिकारातीत होने के कारण अभिखंडित किया जाना चाहिए क्योंकि यह केन्द्रीय सरकार द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम की, जोकि औषधियों के विनिर्माता या उत्पादक को विक्रय-कर के संदाय के दायित्व को उपभोक्ता पर डालने के लिए समर्थ बनाता है, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए औषधि (कीमत नियंत्रण) आदेश के पैरा 21 के असंगत है । दलील यह है कि सातवीं अनुसूची की सूची 2 के प्रविष्टि 54 के अधीन विधि बनाते समय राज्य विधानमण्डल द्वारा अधिनियमित उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) द्वारा यह निषेध करना कि उक्त अधिनियम की धारा 5 कि उपधारा (1) के अधीन अधिभार संदाय करने के दायित्वाधीन कोई व्यवहारि क्रेता से उसे वसूल करने का हकदार नहीं होगा, सूची 3 कि प्रविष्टि 33 के अधीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आवश्यक वस्तुओं की कीमत नियत करने की बाबत विधि बनाने की संघ की शक्ति का प्रत्यक्षतः उल्लंघन करता है। यह कहा गया है कि यदि दोनों विधिमान्य हैं तो पूर्व-परिकल्पित संसद द्वारा बनाई गई विधि बनी रहेगी और उस सीमा तक राज्य की विधि को निकाल दिया जाएगा। हमें खेद है कि यह दलील मान्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए टिक नहीं सकती।

41. अनुच्छेद 246 (1) में "खण्ड (2) और (3) में किसी बात के होते हुए भी" शब्द और अनुच्छेद 246 (3) में "खण्ड (1) और (2) के अधीन रहते हुए" शब्द संघीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त को अधिकथित करते हैं, अर्थात् संघ और राज्य की शक्ति के बीच अपरिहार्य विरोध की दशा में, सूची 1 में यथाप्रगणित संघ की शक्ति सूची 2 और 3 में यथाप्रगणित राज्य की शक्ति के ऊपर बनी रहेगी और सूची 2 और सूची 3 के बीच अतिव्याप्ति की दशा में, पहले वाली बनी रहेगी। किन्तु संविधान के अनुच्छेद 246 में अधिकथित संघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का सहारा तब तक नहीं लिया जाएगा जब तक संघ और राज्य सूचियों में प्रविष्टियों के बीच "सुलह न हो सकने वाला" विरोध हो। दो सूचियों में प्रविष्टियों के बीच प्रतीयमान विरोध की दशा में, प्रविष्टियों में से किसी के संकीर्ण और निर्बन्धित अर्थ निकाले बिना उन्हें एक साथ पढ़ा जाना चाहिए। दूसरे, यह देखने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए कि क्या दोनों प्रविष्टियों में अधिकारिता के विरोध से बचने के उद्देश्य से कोई सुलह नहीं हो सकती। इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या संघ विधायी सूची की भाषा को यह अर्थ देकर युक्तियुक्त सामंजस्य प्राप्त किया जा सकता है जो अन्य संदर्भ में अधिक व्यापक होने की तुलना में यहां कम व्यापक हो, ऐसा अर्थ है जो उसे समुचित रूप से दिया जा सकता है और क्या उसी प्रकार राज्य विधायी सूची भाषा को वह अर्थ देकर, जो उसे समुचित रूप से दिया जा सकता है, युक्तियुक्त सामंजस्य प्राप्त किया जा सकता है। अनुच्छेद 246 (1) में अध्यारोही खण्ड तभी प्रवर्तित रहने चाहिएं जब ऐसा सामंजस्य असंभव सिद्ध हो। तीसरे, दोनों सूचियों में किसी विरोध का प्रश्न उत्पन्न नहीं होगा यदि "तत्व और सार" वाले सिद्धांत को लागू करने में आक्षेपकृत विधान अनन्य रूप से एक सूची में आता दिखाई पड़े और दूसरी सूची पर उसका पड़ाव केवल आनुषंगिक हो।

42. संघ और राज्य विधानमण्डलों को, सूची 3 में प्रगणित विषयों की बाबत, अनुच्छेद 254 के खण्ड (2) में अंतर्विष्ट उपबन्धों के अधीन रहते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुए ही, अर्थात् इस शर्त के अधीन कि राज्य द्वारा बनाया गया अधिनियम उसी विषय पर केन्द्र के किसी अधिनियम के विरुद्ध न हो, समवर्ती शक्ति प्राप्त है। तथापि, सूची 3 में प्रगणित किसी विषय पर राज्य के अधिनियम और संघ विधि के बीच विरोध हो जाने की दशा में, राज्य द्वारा बनाई गई विधि को केन्द्र द्वारा बनाई गई विधि के सामने से हट जाना होगा जब तक राज्य द्वारा बनाई गई विधि को अनुच्छेद 254 (2) के अधीन राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए आरक्षित न रखा गया हो और उस पर उनकी सहमति न मिल गई हो। विरोध का प्रश्न तभी उठता है जब दोनों विधानमण्डल एक ही क्षेत्र में विधि बनाने के लिए सक्षम हैं, अर्थात् जब दोनों संघ और राज्य विधियां सूची 3 में विनिर्दिष्ट किसी विषय से सम्बन्धित हैं और उनका एक जैसा स्थान हो।

43. जहां तक संघ और राज्य के बीच विधायी शक्तियों के बंटवारे का प्रश्न है, अनुच्छेद 246 में कुछ नगण्य परिवर्तनों सहित गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 100 में अन्तर्विष्ट विधायी शक्तियों के बंटवारे के लिए स्कीम को अपनाया गया है। हमारा संविधान कोरे कागज पर नहीं लिखा गया था क्योंकि गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 बनाया जा चुका था और अभी भी उसका वह ढांचा कायम है, जिस पर वर्तमान संविधान बनाया गया है। संविधान के उपबंधों का तदनुसार गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 के उपबन्धों की रोशनी में परिशीलन किया जाना चाहिए और गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 में अन्तर्विष्ट विधायी शक्ति की प्रकृति और निर्वचन से सम्बन्धित अधिकथित सिद्धांत संविधान के निर्वचन में लागू हैं और वास्तव से उन्हें लागू किया भी गया है।

44. सेन्ट्रल प्रॉविन्सेज एण्ड बरार सेल्स ऑफ मोटर स्पिरिट एण्ड लुब्रीकेन्ट्स टेक्सेशन ऐक्ट, 1938[1] वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर ने जेम्स बनाम कामनवैल्थ आफ आस्ट्रेलिया[2] वाले मामले में लार्ड राइट क संप्रेक्षणों का कथन करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि संविधान का संकीर्ण या पंडिताऊ रीति से अर्थ नहीं लगाना चाहिए और इसकी शक्तियों का "जितना अधिक से अधिक संभव हो सके, व्यापक रूप में अत्यन्त हितकर अर्थान्वयन किया जाना चाहिए", तथा इसके साथ यह भी कहा कि "जिन लोगों पर संविधान के निर्वचन का भार है, उनमें विशाल और उदार

[1] एफ० सी० आर० 1 (1939)

[2] एल० आर० (1936) ए० सी० 578.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भावना होनी चाहिए ।" मुख्य न्यायाधिपति ने गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की सुभिन्न विशेषताओं को निर्दिष्ट किया, जिसमें संघीय और प्रान्तीय विधानमण्डलों के बीच विधायी शक्तियों के बंटवारे का उपबन्ध था और सिटीज़न इंश्योरेंस कम्पनी बनाम विलियम पार्सन्स[1] और अटर्नी जनरल फार दी प्रोविन्स आफ ओन्टेरियो बनाम अटर्नी-जनरल फार दी डोमिनियन ऑफ कनाडा[2] वाले मामलों में प्रिवी कौंसिल के दो विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया जिनमें उसकी राय में "बहुत ही स्पष्ट रूप से ऐसे सिद्धांत अधिकथित किए गए थे जिनको दो विरोधी विधान-मण्डलों को, जिन्हें भारतीय संघीय प्रणाली के अधीन गठित किया गया हो, सक्षमता के प्रश्न पर विनिश्चय करने के लिए न्यायालयों द्वारा लागू किया जाना चाहिए।" विद्वान मुख्य न्यायाधिपति ने इसके अतिरिक्त यह कहा कि विस्तारपूर्वक किए गए इस प्रतिपादन से कि कनाडा से, जहां पर भी गणना द्वारा शक्तियों का बंटवारा है, मुकदमेबाजी अधिक होगी या कम होगी, इसका फैसला तो समय ही करेगा; कम से कम इस न्यायालय को ब्रिटिश नॉर्थ अमेरिका ऐक्ट, 1867 की धारा 91 और 92 के अन्तर्ग्रथित उपबन्धों द्वारा, और न केवल विनिर्दिष्ट विषयों की गणना द्वारा किन्तु मुकदमेंबाजी की विषयवस्तु के साधारण या स्थानीय प्रकृति के निर्देश द्वारा भी, पैदा होने वाली अतिरिक्त समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ेगा।

45. गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 100(1) में अध्यारोही खण्ड के निर्वचन की बाबत मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

> "यह एक मूल उपधारणा है कि केन्द्र और प्रान्तों की विधायी शक्तियों के बीच कोई विरोध आशयित नहीं हो सकता था, अत: हमें उस भाषा का, जिसमें एक की अभिव्यक्ति दूसरे की भाषा से की जाती है, एक साथ परिशीलन, निर्वचन या उपांतरण करना चाहिए।"

"इस प्रकार के सभी मामलों में" विद्वान मुख्य न्यायाधिपति के अनुसार "न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह नहीं है कि दो विधायी शक्तियों का सैद्धांतिक रूप में कैसे अर्थ लगाया जाए, किन्तु यह देखना होता है कि उनका उस समय कैसे अर्थ लगाया जाना है।"

---

[1] एल० आर० (1882) 7 ए० सी० 96.

[2] एल० आर० (1912) ए० सी० 571.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

46. विधायी शक्तियों के बंटवारे की बाबत ब्रिटिश नॉर्थ अमेरिका ऐक्ट, 1867 की साधारण स्कीम और धारा 91 और 92 की साधारण परिधि और प्रभाव तथा उनके आपस में संबंध पर सिटीजन इंश्योरेंस कम्पनी[1] वाले मामले में पूरी तरह से विचार किया गया था और उस पर टिप्पणी की गई थी। बोर्ड की ओर से निर्णय देते हुए सर मोन्टेग स्मिथ ने सामंजस्य का नियम विरचित करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

> "इन मामलों में न्यायालयों का यह कर्त्तव्य है कि वे, चाहे कितना भी कठिन हो, प्रत्येक विधान मण्डल में विद्यमान विषयों के इन वर्गों के अंतर्गत आने वाले मामलों से निपटने के प्राधिकार को सुनिश्चित करें और अपने सम्मुख विशिष्ट मामलों में उनकी अपनी-अपनी शक्ति की परिसीमाएं परिभाषित करें। ऐसा आशयित हो ही नहीं सकता था कि कोई टकराव हो, और ऐसे परिणाम को रोकने के उद्देश्य से दोनों धाराओं का एक साथ परिशीलन किया जाना चाहिए और एक की भाषा को, जहां आवश्यक हो, दूसरे की भाषा द्वारा उपांतरित करके निर्वचन किया जाना चाहिए। इस प्रकार बहुत से मामलों में किसी धारा की भाषा के युक्तियुक्त और व्यावहारिक अर्थान्वयन पर पहुंचने से यह संभव हो सकता है जिससे कि क्रमशः शक्तियों का, जो उनकी हैं, सामजस्य स्थापित हो जाए और उन सब को प्रभावी बनाया जा सके।

47. लार्ड चान्सलर अर्ल लोबॅर्न ने अटर्नी जनरल फार दी प्रोविंस ऑफ ओनटेरियो[2] वाले मामले में न्यायिक समिति का निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया कि ब्रिटिश नॉर्थ अमेरिका ऐक्ट की धारा 91 और 92 के निर्वचन में—

> "यदि पाठ सुस्पष्ट है तो वह पाठ जो कोई निदेश करता है या प्रतिषेध करता है, समान रूप से निश्चायक है।"

जब पाठ संदिग्धार्थ हो, उदाहरण के लिए जबकि दो परस्पर अनन्य अधिकारिताएं स्थापित करने वाले शब्द इतने व्यापक हों कि उनसे कोई विशिष्ट शक्ति दोनों में आ जाए तो उस समय अधिनियम के संदर्भ और स्कीम का अवलम्ब लिया जाना चाहिए।

---

[1] एल० आर० (1882) 7 ए० सी० 96.

[2] एल० आर० (1912) ए० सी० 571.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

48. ए० एल० एस० पी० पी० सुब्रमणियम चेट्टियार बनाम मुथुस्वामी गोन्डन[1] वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर ने इस बात को दोहराया कि ब्रिटिश नॉर्थ अमेरिका ऐक्ट, 1867 की धारा 91 और 92 के निर्वचन में दिए गए विनिश्चयों की लम्बी पंक्ति में प्रिवी कौंसिल द्वारा अधिकथित सिद्धांतों को गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 100 के निर्वचन के लिए मार्गदर्शन के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए—

> "संघीय विधानमण्डल को सूची 1 के विषयों की बाबत विधि बनाने की पूर्ण और अनन्य शक्ति है, और इसे सूची 3 के मामलों की बाबत भी विधि बनाने की शक्ति है। किसी प्रांतीय विधानमण्डल (अर्थात् संविधान के अधीन राज्य विधानमण्डल) को सूची 1 और सूची 3 के अंतर्गत आने वाले विषयों को छोड़कर सूची 2 की बाबत विधि बनाने की अनन्य शक्ति है। इसे सूची 3 के विषयों की बाबत, सूची 1 के अंतर्गत आने वाले विषयों को छोड़कर, विधि बनाने की समवर्ती शक्ति है।.......सूची 1 और सूची 3 के विषयों की बाबत केन्द्रीय विधानमण्डल की प्रमुख स्थिति को इस प्रकार से स्थापित किया गया है। किन्तु इस अक्षरशः निर्वचन की कठोरता को 'की बाबत' शब्दों का प्रयोग करके शिथिल किया गया है जिससे "तत्व और सार" का अर्थ निकलता है और जो मात्र आनुषंगिक अधिक्रमण का निषेध नहीं करता।"

विद्वान मुख्य न्यायाधिपति ने यह भी कहा कि—

> "समय-समय पर अनिवार्य रूप से यह प्रश्न उठेगा कि विधान, जो किसी एक सूची के विषयक सम्बन्ध में तात्पर्यित है, दूसरी सूची के विषय को भी स्पर्श कर सकता है, तथा अधिनियमिति के विभिन्न उपबन्ध आपस में इस प्रकार जुड़े हुए हो सकते हैं कि नियमतः मौखिक निर्वचन का आंख मीचकर अनुपालन करने का परिणाम बहुत से कानूनों को अविधिमान्य घोषित करना होगा, क्योंकि उन्हें अधिनियमित करने वाले विधानमण्डल द्वारा प्रतिषिद्ध क्षेत्र में अधिनियमित किया हुआ प्रतीत हो सकता है। इसलिए नियम, जो न्यायिक समिति द्वारा बनाया गया है, जिसके द्वारा आक्षेपित कानून की उसके सार और तत्व या उसकी वास्तविक प्रकृति और स्वरूप को अभिनिश्चित करने के लिए या यह अवधारित करने के प्रयोजन के

---
[1] (1940) एफ० सी० आर० 188.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए परीक्षा की गई है कि क्या वह इस सूची या उस सूची की बातों के सम्बन्ध में विधान है ।"

49. यह पहले से ही बता दिया गया है कि जहां-जहां सूचियों का आपस में विरोध प्रकट हो वहां उनका एक साथ परिशीलन करके और तत्व और सार के सिद्धांत को लागू करके उनमें सामंजस्य लाने का प्रयास किया जाना चाहिए। जब सामंजस्य साबित करने का प्रयास असफल हो जाए केवल तभी अनुच्छेद 246(1) में अध्यारोही खण्ड को अंतिम अवलम्ब के रूप में लागू किया जाना चाहिए। **सी० पी० एण्ड बरार टैक्सेशन ऐक्ट**[1] वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर के शब्दों में—

> "इस (अध्यारोही) खण्ड को अंतिम अवलम्ब के रूप में माना जाना चाहिए, जोकि मानव अभिव्यक्ति की त्रुटियों और विधिक प्रारूपण की भ्रमशीलता का साक्ष्य है।"

50. **सिटीजन इंश्योरेन्स कंपनी**[2] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा किए गए सम्प्रेक्षणों का सी० पी० एण्ड बरार टैक्सेशन ऐक्ट वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर द्वारा अनुमोदन के साथ कथन किया गया और यह मत व्यक्त किया गया कि स्पष्ट रूप से विरोधी उपबन्धों का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए और साधारण शक्ति का इस तरह से अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि इससे उसी क्षेत्र में प्रवृत्त कोई विशिष्ट शक्ति शून्य हो जाए। सुस्पष्टतः विरोधी उपबन्धों में सामंजस्य स्थापित करने वाले इसी कर्त्तव्य को लार्ड साइमंड्स ने **गवर्नर जनरल-इन-काउंसिल बनाम मद्रास प्रान्त**[3] वाले मामले में प्रिवी काउंसिल का निर्णय सुनाते हुए निम्नलिखित रूप में दोहराया—

> "क्योंकि किसी संघीय संविधान में, जिसमें केन्द्रीय और प्रान्तीय विधानमण्डलों के बीच विधायी शक्तियों का बंटवारा होता है, इस संविवाद का उठना अनिवार्य प्रतीत होता है कि एक या अन्य विधानमण्डल अपनी सांविधानिक शक्ति का अधिक प्रयोग कर रहा है और दूसरे की ऐसी शक्ति का अधिक्रमण कर रहा है या नहीं और ऐसे संविवाद में वह नियम, जिसे विद्वान न्यायाधिपतियों ने वर्तमान मामले में लागू करने से संकोच नहीं किया है, यह है कि यह

---

[1] एफ० सी० आर० 1 (1939).

[2] एल० आर० (1882) 7 ए० सी० 96.

[3] (1945) एफ० सी० आर० 179.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर के नाम की बात नहीं किन्तु उसके वास्तविक स्वरूप की, उसके 'तत्व और सार' की है जिससे यह अवधारण किया जाना चाहिए कि यह किस प्रवर्ग में आती है।"

विद्वान न्यायाधिपतियों ने दि प्रॉविंस ऑफ मद्रास बनाम मैसर्स बोद्दू पैदन्ना एण्ड संस[1] वाले मामले में परिसंघीय (फेडरल) न्यायालय के विनिश्चय का अनुमोदन किया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जब सुस्पष्टतः विरोधी प्रविष्टियां हों, वहां उस मुद्दे पर सही दृष्टिकोण यह देखना है कि दो प्रविष्टियों के बीच, उनमें विरोध और अतिव्याप्ति से बचने के लिए कोई सामंजस्य स्थापित करना संभव है या नहीं।

51. प्रफुल कुमार मुखर्जी और अन्य बनाम बैंक ऑफ कॉमर्स लिमिटेड, खुलना[2] वाले मामले में, बोर्ड की ओर से निर्णय देते हुए, लार्ड पोर्टर ने अभिकथित किया कि गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की सातवीं अनुसूची की सूची 1, 2 और 3 के अधीन बांटी गई अधिकारिताओं की शक्तियों के बीच सुभिन्नता बतलाते हुए, विभिन्न विधानमण्डलों के बीच साफ कटौती करना संभव नहीं है। उनमें समय-समय पर अतिव्याप्ति होकर रहेगी और वह नियम जिसे न्यायिक समिति ने बनाया है जिसके द्वारा किसी आक्षेपकृत कानून को, उसके तत्व और सार का या अवधारण करने के प्रयोजन के लिए उसके वास्तविक स्वरूप को सुनिश्चित करने के लिए परीक्षा की गई है, जिस विशिष्ट सूची में वह विधान आता है, भारतीय तथा डोमिनियन विधानमण्डल को लागू होता है या नहीं। उस सिद्धांत को अधिकथित करते हुए, प्रिवी काउंसिल ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

> "इसके अतिरिक्त ब्रिटिश संसद को; भारतीय संविधान का अधिनियमन करते समय ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट और आस्ट्रेलियन कामनवैल्थ ऐक्ट की कार्य-पद्धति का लम्बा अनुभव था और उसे इस बात का अवश्य पता होगा कि इस बात को सुनिश्चित कर व्यवहार में संभव नहीं है कि कई विधानमण्डलों को न्यस्त की गई शक्तियों की कभी भी आपस में अतिव्याप्ति नहीं होगी।"

प्रिवी काउन्सिल ने उपर कथित सुब्रमणियम चेट्टियार वाले मामले में[3] मु०

---

[1] (1942) एफ० सी० आर० 90.

[2] ए० आई० आर० (1947) पी० सी० 60.

[3] (1940) एफ० सी० आर० 188.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्या० ग्वायर के संप्रेक्षणों का अनुमोदन सहित कथन किया और निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"निस्संदेह, पिछली कठिनाइयों से भारतीय अधिनियम कुछ विशेष बातों में अधिक सुनिश्चित हो गया है और समवर्ती सूची के हो जाने से ऐसे मामलों के बीच सुभिन्नता के लिए अधिक सुगमता हो गई है। जिनमें यह अवधारण करना आवश्यक है कि कोई विशेष उपबन्ध और वे जो मात्र आनुषंगिक हैं, किस सूची में होना चाहिए। किन्तु विषयवस्तु की अतिव्याप्ति को, दो के स्थान पर तीन सूचियां रखकर या अधिकारिताओं की उत्तराधिकारिता के प्रबन्ध से भी, रोका नहीं जा सका है। विषयवस्तुओं में फिर भी अतिव्याप्ति होनी चाहिए और जहां ऐसा होता है वहां, यह प्रश्न किया जाना चाहिए कि उस अधिनियमिति का, जिसका परिवाद किया गया है, तत्व और सार में क्या प्रभाव हो सकता है और किस सूची में उसकी सही प्रकृति और स्वरूप को देखा जा सकता है। यदि यह प्रश्न नहीं पूछे जाते हैं तो आरम्भ में ही अधिक परोपकारी विधान कुचला जाएगा, और प्रान्तीय विधानों को न्यस्त बहुत सी विषयवस्तुओं से कभी भी प्रभावी रूप से नहीं निपटा जा सकेगा।"

लार्ड पोर्टर के शब्दों में "प्रान्तों का परिसंघीय सूची की विषयवस्तुओं पर हस्तक्षेप महत्वपूर्ण था" :—

"..........इसलिए नहीं कि किसी विधि की विधिमान्यता के हस्तक्षेप की मात्रा के बीच विभेद करके अवधारित की जा सकती है किन्तु यह अवधारण करने के प्रयोजन के लिए कि आक्षेपकृत अधिनियम का तत्व और सार क्या है। उसके उपबन्ध, यह दर्शित करने के लिए कि इसकी सही प्रकृति प्रान्तीय विषयों के अन्तर्गत नहीं है, परिसंघीय क्षेत्र में आगे बढ़ जाते हैं, किन्तु प्रश्न यह नहीं कि इससे अधिक अतिचार हुआ है या कम, किन्तु यह है कि क्या अतिचार, चाहे जैसा भी हो, ऐसा है जिससे यह दर्शित हो कि आक्षेपकृत अधिनियम का तत्व और सार धन उधार देने से नहीं किन्तु वचन-पत्रों या बैंकिंग से है? एक बार इस प्रश्न का अवधारण हो जाने पर अधिनियम लाइन के इस ओर या उस ओर चला जाएगा और उसकी सही अंतर्वस्तु के अनुसार विधिमान्य या अविधिमान्य रूप में देखा जा सकता है।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

52. अतः इससे यह प्रकट होगा कि विधि की सांविधानिकता का निर्णय उसकी वास्तविक विषयवस्तु द्वारा न कि किसी अन्य क्षेत्र में विधान के किसी विषय पर उसके आनुषंगिक प्रभाव द्वारा किया जाना होता है। प्रिवी काउन्सिल ने प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी वाले मामले[1] में इस प्रकार अधिकथित किया है, कि गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की सातवीं अनुसूची की सूची 1, 2 और 3 के अधीन बांटी गई अधिकारिताओं की शक्तियों के बीच सुभिन्नता बतलाते हुए विभिन्न विधानमण्डलों के बीच साफ कटौती करना संभव नहीं है। उनमें समय-समय पर अतिव्याप्ति हो कर रहेगी और वह नियम जिसे न्यायिक समिति ने बनाया है जिसके द्वारा किसी आक्षेपकृत कानून को, उसके तत्व और सार का या यह अवधारण करने के प्रयोजन के लिए उसके वास्तविक स्वरूप को सुनिश्चित करने के लिए परीक्षा की गई है जिस विशिष्ट सूची में वह विधान आता है, भारतीय तथा डोमिनियन विधान मण्डल को लागू होता है या नहीं। इसने यह भी कहा है कि :

> "जब उनमें विरोध हो तो सूची 1 को सूची 3 और 2 पर वरीयता प्राप्त होती है और सूची 3 को सूची 2 पर वरीयता प्राप्त होती है।"

किन्तु प्रिवी कौंसिल ने इस बात को स्पष्ट किया कि—

> "परिसंघीय विधानमण्डल की वरीयता प्रान्तीय विधानमण्डल को सूची 2 में आने वाले किसी मामलों से निपटने से नहीं रोकेगी यद्यपि इससे सूची 1 में किसी मद पर आनुषंगिक रूप से प्रभाव पड़ सकता है।"

प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी[1] वाले मामले में प्रिवी काउन्सिल के विनिश्चय को परिसंघीय न्यायालय और इस न्यायालय ने परस्पर अनन्य सूचियों में शक्तियों की अतिव्याप्ति से उद्भूत विरोधों का समाधान करने में लागू किए जाने के लिए सही नियम अधिकथित करते हुए बार-बार अनुमोदन किया है। तत्व और सार नियम के परिणाम के रूप में यह भी कहा जा सकता है कि जब एक बार यह पता चल जाए कि तत्व का सार में कोई आक्षेपकृत अधिनियम किसी अनुज्ञात क्षेत्र में एक विधि है तो किसी निषिद्ध क्षेत्र पर किसी आनुषंगिक अतिक्रमण का उस अधिनियम को अधिनियमित करने के लिए विधानमण्डल की सक्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा : रल्ला राम बनाम प्रोविन्स ऑफ

---

[1] ए० आई० आर० 1947 पी० सी० 60

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस्ट पंजाब[1], बम्बई राज्य बनाम नरोत्तमदास जेठाभाई और एक अन्य[2]; बम्बई राज्य बनाम एफ० एन० बलसारा[3], ए० एस० कृष्णा बनाम मद्रास राज्य[4], एम० करुणानिधि बनाम भारत संघ[5], भारत संघ बनाम एच० एस० ढिल्लों[6] और सदर्न फार्मास्युटिकल्स एण्ड कैमिकल्स त्रिचूर और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य[7]।

53. लस्किन के केनेडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ के चौथे संस्करण में पृष्ठ 24 पर यह सम्प्रेक्षित किया गया है कि अटर्नी जनरल फार केनेडा बनाम अटर्नी जनरल फार ब्रिटेन कोलम्बिया और अन्य[8] वाले मामले में लार्ड टामलिन द्वारा प्रतिपादित चार प्रतिपादनाओं में से पहले में सर्वोच्चता का सिद्धांत अधिक्रमण के सिद्धांत के साथ बंधा है और विद्वान लेखक ने तब यह प्रश्न किया, : "सर्वोच्चता के सिद्धांत का आधार क्या है ?" विद्वान लेखक ने लेफ्रोय के केनेडाज् फैड्रल सिस्टम से पृष्ठ 126 पर निम्नलिखित कथन किया है :

> "किन्तु डोमिनियन विधि की श्रेष्ठता के प्रश्न पर, यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि इस नियम का अवलम्ब केवल उन्हीं मामलों में लिया जा सकता है जहां समविषयक विधानों में पूर्णतः विरोध हो; जब डोमिनियन और प्रान्तीय अधिनियमितियों, दोनों को प्रभावी बनाना असंभव हो जाए।"

विद्वान लेखक ने अटर्नी जनरल ऑफ ओनटेरियो बनाम अटर्नी जनरल ऑफ कनाडा[9] और सिटी ऑफ मान्ट्रियल बनाम मान्ट्रियल स्ट्रीट रेलवे[10] वाले मामलों में प्रिवी काउन्सिल के दो विनिश्चयों को निर्दिष्ट करके निम्नलिखित

---

1 (1948) एफ० सी० आर० 207.
2 (1951) एस० सी० आर० 51.
3 (1951) एस० सी० आर० 682.
4 (1957) एस० सी० आर० 399.
5 (1979) 3 एस० सी० आर० 254.
6 (1972) 1 उम० नि० प० 565=(1972) 2 एस० सी० आर० 33.
7 (1982) 2 उम० नि० प० 1249=(1982) 1 एस० सी० आर० 519.
8 एल० आर० (1930) ए० सी० 111.
9 एल० आर० (1896) ए० सी० 348.
10 एल० आर० (1912) ए० सी० 333.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिकथित किया है—

> "दो अधिनियमों के बीच वास्तविक विरोध होना चाहिए, अर्थात् दो अधिनियमितियों का आपस में टकराव हो···या दोनों की समान अधिकारिता के एक क्षेत्र में विरोध हो जाए ।"

लस्किन का यह मत है कि वे प्रामाणिकताओं द्वारा समर्थित "विरोध के परीक्षण सिद्धांत में पर्याप्त रूप से स्पष्ट दिखाई देता है चाहें इससे लागू होने में समस्याएं उत्पन्न हों । उसने तब पृष्ठ 26 की इस बात पर ध्यान दिया है कि केनेडा के उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों में विरोध या टकराव की परीक्षा में दिखाई देने वाले सर्वोच्चों के कठोर दृष्टिकोण की नई प्रवृत्ति आई है जिसे उसने प्रचलित असंगति की परीक्षा के रूप में वर्णित किया है और पृष्ठ 27 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

> "यह सदा याद दिलाना आवश्यक है कि सर्वोच्चता का कोई विवाद तब तक उद्‌भूत नहीं हो सकता जब तक कि परिसंघीय और प्रान्तीय विधान विद्यमान न हों जोकि यदि खुले तौर पर विचार किया जाए, तो प्रत्येक की दशा में विधिमान्य है । यदि उनमें से कोई एक विधान अविधिमान्य है तो यह विचार करने की आवश्यकता ही नहीं कि उस क्षेत्र में कोई हस्तक्षेप हुआ है । ऐसे मामले में जिस विवाद को दूर किया जाएगा वह विधान से जुड़े 'मामले' का पूर्ववर्ती होगा, यथास्थिति, चाहे संसद का हो या प्रान्तीय विधान-मण्डल का हो ।"

पृष्ठ 28 पर उसने यह कथन किया है कि—

> "किसी क्षेत्र में हस्तक्षेप का सिद्धांत केवल वहीं लागू होता है जहां डोमिनियन विधान और प्रान्तीय विधान के बीच ऐसे क्षेत्र में जो दोनों के लिए समान हो, कोई झगड़ा उठ खड़ा होता है ।"

यहां ऐसा कोई विरोध नहीं है । संघ और राज्य विधियां दो भिन्न-भिन्न और सुभिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त है और दोनों विधियों का पालन किया जा सकता है ।

54. डोमिनियन संसद और प्रान्तीय विधानमण्डल की अधिकारिता के बीच विरोध के प्रश्न प्रिवी काउन्सिल के सम्मुख बार-बार आ चुके हैं और हम संक्षेप में उन विनिश्चियों को निर्दिष्ट कर सकते हैं, जिनका अवलम्ब लिया गया हैं, यद्यपि उनसे अपीलार्थियों को बहुत कम सहायता मिलती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्रान्ड ट्रंक रेलवे कम्पनी ऑफ कनाडा बनाम अटर्नी जनरल ऑफ कनाडा[1] वाले मामले में लार्ड डुनेडिन ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट के उपबन्धों का अर्थान्वयन विद्वान न्यायाधिपतियों के सम्मुख बार-बार आया है। उन विनिश्चयों को संक्षेप में दोहराने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु वर्ष 1894 में विनिश्चित दो मामलों की, अर्थात् अटर्नी जनरल ऑफ ओनटेरियो बनाम अटर्नी जनरल ऑफ कनाडा (1) और टेनेन्ट बनाम यूनियन बैंक ऑफ कनाडा (2), तुलना से ये दो प्रतिपादाएं सिद्ध होती दिखाई देती हैं, पहली यह है कि ऐसा अधिकार क्षेत्र हो सकता है जिसमें प्रान्तीय और डोमिनियन विधानों की अतिव्याप्ति को, ऐसी दशा में यदि क्षेत्र स्पष्ट है तो कोई भी विधान अधिकारातीत नहीं हो, और दूसरे यदि क्षेत्र स्पष्ट नहीं है और ऐसे अधिकार क्षेत्र में दो विधान आ मिलते हैं तो डोमिनियन विधान ही विद्यमान रहेगा।"

55. अटर्नी जनरल फार कनाडा बनाम अटर्नी जनरल फार ब्रिटिश कोलम्बिया और अन्य[2] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल के एक पश्चात्वर्ती विनिश्चय में लार्ड टामलिन ने डोमिनियन और प्रान्तीय विधानमण्डलों के बीच विरोध के प्रश्न पर बोर्ड के पूर्वत्तर विनिश्चयों के परिणामस्वरूप चार प्रतिपादनाएं संक्षेप में बताई हैं। तीसरी प्रतिपादना इस आशय की है कि उन विषयों के लिए उपबन्ध करना डोमिनियन संसद् की सक्षमता के भीतर है जो यद्यपि अन्यथा प्रान्तीय विधानमन्डल की विधायी सक्षमता के भीतर है, धारा 91 में अभिव्यक्त रूप से प्रगणित विधान के विषय पर डोमिनियन संसद द्वारा प्रभावी विधान के आवश्यक रूप से आनुषंगिक हैं। चौथी प्रतिपादना जिस पर अपीलार्थियों की ओर से विद्वान काउंसेल ने सम्पूर्ण दलील दी है, ऊपर-निर्दिष्ट ग्रान्ड ट्रंक रेलवे कम्पनी[1] वाले मामले में लार्ड डुनेडिन की उक्ति पर आधारित है।

56. यह बात पूरी तरह तय हो चुकी है कि किसी अधिनियम की विधिमान्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता यदि यह प्राधिकृत क्षेत्र के बाहर के मामलों का आनुषंगिक रूप से अतिक्रमण करती हैं और इसलिए प्रत्येक मामले में यह पता लगाना आवश्यक है कि आक्षेपकृत अधिनियम का तत्त्व

---

[1] एल० आर० (1907) ए० सी० 65.

[2] एल० आर० 1930 ए० सी० 111.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और सार क्या है ? यदि उक्त अधिनियम, जब उस पर विचार किया जाए, एक विधान मण्डल को जिसने उसे अधिनियमित किया, स्पष्ट रूप से प्रदत्त शक्तियों के भीतर सारवान् रूप से आता है तो उसे मात्र इस कारण अविधिमान्य नहीं माना जा सकता कि इससे उन मामलों का जोकि अन्य विधानमण्डलों को समनुदिष्ट किए गए हैं, आनुषंगिक रूप से अतिक्रमण होता है ।

57. बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज ऑफ दि लैथब्रिज नर्दर्न इरीगेशन डिस्ट्रिक्ट और एक अन्य बनाम इन्डीपेन्डेन्ट आर्डर ऑफ फोरेस्टर्स[1] वाले मामले में लार्ड चान्सलर वाइकाउट काल्डेकोट ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"ये धाराएं न्यायिक स्थिति में बार-बार परीक्षा का विषय रही हैं और उनके निर्वचन में, सिद्धांतों के बारे में, कोई संदेह नहीं रह गया है, यद्यपि उनके लागू होने में कठिनाई हो सकती है । ग्रेट वेस्ट सैडलरि कंपनी बनाम दि किंग [एल० आर० (1940) ए० सी० 513] वाले मामले में न्यायिक समिति ने निर्णय देते हुए यह कहा 'अर्थान्वयन का नियम यह है कि धारा 92 के प्रथम भाग की साधारण भाषा धारा 91 में विशिष्ट अभिव्यक्तियों के अन्तर्गत आएगी जहां पश्चात्कथित सुस्पष्ट हो ।' अटर्नी जनरल फार कनाडा बनाम अटर्नी जनरल फार ब्रिटिश कोलम्बिया[2] वाले मामले में न्यायिक समिति के एक पश्चात्वर्ती विनिश्चय में लार्ड टामलिन ने डोमिनियन और प्रान्तीय विधानमण्डलों के बीच विरोध के प्रश्नों पर बोर्ड के पूर्वत्तर विनिश्चयों के परिणाम से चार प्रतिपादनाएं संक्षेप में बताई हैं । पहली प्रतिपादना इस आशय की है कि डोमिनियन की प्रान्तीय संसद का विधान, जहां तक वह धारा 91 में अभिव्यक्त रूप से प्रगणित विषयों से निश्चित रूप से सम्बन्धित है, सर्वोपरि प्राधिकार है, चाहे वह धारा 92 द्वारा प्रान्तीय विधानमण्डलों को समनुदिष्ट विषय का अतिक्रमण करता है । लार्ड टामलिन ने इस कथन की नजीर के रूप में टैनेन्ट बनाम यूनियन बैंक ऑफ कनाडा [एल० आर० (1921) 2 ए० सी 91] का निर्देश किया ।"

वाइकाउन्ट काल्डेकोट ने तब निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"इन सिद्धांतों को लागू करने में, जैसा कि विद्वान न्यायाधिपतियों का प्रस्ताव भी है, प्रश्नगत अधिनियमिति की सही प्रकृति

[1] एल० आर० (1940) ए० सी० 513.

[2] एल० आर० (1921) 2 ए० सी० 91, 116.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वरूप की सिटीजन इंश्योरेन्स कंपनी ऑफ कनाडा बनाम विलियम पार्सन्स[1] या यूनियन कोलिअरि कंपनी ऑफ ब्रिटिस कोलम्बिया बनाम ब्राइडन[2] वाले मामले में न्यायिक समिति का निर्णय देते हुए लार्ड वाटसन के शब्दों में, उनके 'तत्व और सार' की पहले जांच अवश्य की जानी चाहिए। विद्वान् न्यायाधिपति अब उस जांच पर विचार करेंगे।"

58. अटर्नी जनरल फार अल्बर्टा बनाम अटर्नी जनरल फार कनाडा[3] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल का निर्णय देते हुए लार्ड मोघम ने कहा : धारा 91 में विशेष रूप से प्रगणित वर्गों में किसी एक के भीतर तत्व और सार में बनाया गया विधान धारा 91 के अधीन प्रान्तीय विधानमण्डल की विधायी क्षमता से बाहर है। रिपोर्ट के पृष्ठ 370 पर लार्ड मोघम ने प्रिवी कौंसिल की ओर निम्नलिखित अधिकथित किया—

"1894 से ही यह सिदांत तय है कि यदि प्रान्त द्वारा बनाए गए विधान का कोई विषय धारा 91 में प्रगणित विषयों के वर्गों में से किसी एक के केवल आनुषंगिक या अनुषंगी है और यह धारा 92 में प्रगणित विषयों में से एक के भीतर ठीक प्रकार से आता है तो प्रान्त द्वारा बनाया गया विधान तब तक सक्षम है जब तक कि डोमिनियन संसद् विधान द्वारा उक्त क्षेत्र में हस्तक्षेप करना पसन्द न करे।" (अधोरेखांकन हमने किया है)

लार्ड मोघम का वर्ष 1894 का निर्देश अटर्नी जनरल फार ओनटेरियों बनाम अटर्नी जनरल फार कनाडा[4] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल के विनिश्चय को बताता है।

59. अटर्नी जनरल फार कनाडा बनाम अटर्नी जनरल फार दि प्रोविन्स ऑफ क्वेबिया[5] वाले मामले में लार्ड पोर्टर ने बोर्ड का निर्णय देते हुए इन सिद्धांतों की ओर ध्यान खींचा और तब यह मत व्यक्त किया—

"इन सिद्धांतों की ओर ध्यान दिलाकर विद्वान न्यायाधिपतियों ने उस बात को केवल दोहराया ही है जो बोर्ड के निर्णयों में कई बार निर्दिष्ट किया जा चुका है और अब उनको केवल विचाराधीन वैयक्तिक मामलों में लागू करना शेष है।"

---

[1] एल० आर० (1882) 7 एस० सी० 96.

[2]

[3]

[4]

[5] [1946] ए० सी 35.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रिवी कौंसिल द्वारा अधिकथित तत्व और सार के नियम की **अटर्नी जनरल ऑफ सस्केतचेवन बनाम अटर्नी जनरल ऑफ कनाडा और अन्य**[1] वाले मामले में विस्काउन्ट साइमन ने पुनः पुष्टि की।

60. लार्ड एटकिन ने मिल्क और मिल्क प्रोडक्ट्स ऐक्ट (नर्दर्न आयरलैंड) जिसे उसकी अपनी सारगर्भित भाषा में गलाघर बनाम **लिन्न**[2] वाले मामले में गवर्नमैंट ऑफ आयरलैंड ऐक्ट, 1920 की धारा 4 का अतिलंघन करते हुए आक्षेपकृत किया था, विधिमान्यता से निपटते हुए बहुत स्पष्ट रूप में जोर दिया—

> "यह सिद्ध हो चुका है कि आपको विधान की "सही प्रकृति और स्वरूप"; **रसैल बनाम दि क्वीन**[3] "विधान के तत्व और सार की ओर ध्यान देना होता है। यदि कानून को पूर्णरूप से देखने पर आपको यह पता चले कि विधान का सार अभिव्यक्त शक्तियों के भीतर है तो यदि इससे उन मामलों पर जोकि प्राधिकृत क्षेत्र से बाहर हैं, आनुषंगिक रूप से प्रभाव पड़ता है तो अविधिमान्य नहीं होगा।"

ग्रान्ड ट्रन्क रेलवे कंपनी ऑफ कनाडा[4] वाले मामले में लार्ड डुनेडिन की उक्ति पर आधारित **अटर्नी जनरल फार कनाडा बनाम अटर्नी जनरल फार ब्रिटिश कोलम्बिया और अन्य**[5] वाले मामले में लार्ड टामलिन द्वारा बनाई गई चौथी प्रतिपादना पर बहुत बल दिया गया है, जिसे दोहराते हुए भी हम निम्नलिखित रूप में निर्दिष्ट करते हैं—

> "4. कोई ऐसा कार्यक्षेत्र हो सकता है जिसमें प्रान्तीय और डोमिनियन विधान अतिव्याप्त हो, उस दशा में विधान अधिकारातीत नहीं होगा जिसमें कि क्षेत्र स्पष्ट है, किन्तु यदि क्षेत्र स्पष्ट नहीं है और दोनों विधान परस्पर मिलते हों तो डोमिनियन विधान अभिभावी होना चाहिए; देखिए : **ग्रान्ड ट्रन्क रेलवे ऑफ कनाडा बनाम अटर्नी जनरल ऑफ कनाडा**।"

प्रश्न यह है कि क्या क्षेत्र स्पष्ट नहीं है और दोनों विधान परस्पर मिलते हैं और इसलिए परिसंघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत पर उक्त अधिनियम की धारा 5

---

[1] एल० आर० (1949) ए० सी० 110.

[2] एल० आर० (1937) ए० सी० 863.

[3] एल० आर० (1882) 7 ए० सी० 829.

[4] एल० आर० (1907) ए० सी० 65.

[5] एल० आर० (1930) ए० सी० 111.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की उपधारा को अधिकारातीत रूप में अभिखण्डित किया जाना चाहिए। लार्ड डुनेडिन की उक्ति से व्युत्पन्न सिद्धांत यह है कि जब किसी अधिनियम की विधिमान्यता को अधिकारातीत रूप में चुनौती दी जाती है तो उसका उत्तर इस प्रश्न में है कि आक्षेपकृत अधिनियम का तत्व और सार क्या है ? इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत सारे मामलों में यह कहा जा सकता है कि उस अधिनियम को जो विचाराधीन है, एक दृष्टिकोण से अधिक और एक क्षेत्र से अधिक में प्रवृत्त रूप में माना जा सकता है। तथापि यदि वह मामला जिसका निपटान किया जाना है, सूचि 2 में प्रगणित विषयों के वर्गों में से किसी के भीतर आता है तो वह अनुच्छेद 246 (2) के निबन्धनों के अधीन है; अनुच्छेद 246 (1) के अधीन संसद को अनन्य रूप से समनुदिष्ट विषय के वर्गों के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता यद्यपि विषयों के वर्गों को एकसाथ देखने में उसमें कई बातों में अति व्याप्ति हो। प्रश्नगत अधिनियम की विधिमान्यता के प्रश्न का अवधारण करने में, जैसा कि सी० पी० एण्ड बरार टेक्सेशन ऐक्ट[1] वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर, ने मत व्यक्त किया है, शक्तियों के सम्पूर्ण विभाजन को ध्यान में रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त जैसा कि मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर ने सुब्रह्मण्यम चेट्टियार[2] वाले मामले में अधिकथित किया है और जिसकी प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी[3] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल के विद्वान न्यायाधिपतियों ने अभिपुष्टि की है, ऐसे मामलों के लिए, जो कि यद्यपि संसद की क्षमता के भीतर आते हैं, उपबन्ध करने के लिए अनुच्छेद 246 (3) के अधीन राज्य विधानमण्डल की क्षमता के भीतर हैं। सूची 2 में स्पष्ट रूप से प्रगणित विषय पर राज्य विधानमण्डल द्वारा प्रभावी विधानमण्डल के आवश्यक रूप से आनुषंगिक हैं।

62. अब हमें अपीलार्थियों की ओर से विद्वान काउन्सेल द्वारा दी गई इस दलील पर विचार करना है कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) और ओषधि (कीमत नियंत्रण) आदेश के पैरा 21 के बीच विरोध है और अतः उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) उस सीमा तक शून्य है। सामान्यतः विधियों को विरोधी कहा जा सकता है जब उनका एक ही समय पालन असंभव हो किन्तु ऐसे मामले हो सकते हैं, जिसमें अधिनियमितियां असंगत हों यद्यपि दूसरे की अवज्ञा के बिना उनमें से प्रत्येक का पालन

---

[1] एफ० सी० आर० 1 (1939)

[2] [1940] एफ० सी० आर० 188.

[3] ए० आई० आर० (1947) पी० सी० 60.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संभव हो सके। "विरोध" का प्रश्न समवर्ती सूची के अन्तर्गत विधान के संदर्भ में उद्भूत होता है किन्तु उसका समाधान अनुच्छेद 254 (2) का अवलम्ब लेकर किया जा सकता है।

63. जैसा कि हमने अब तक प्रयास किया है, उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न को तत्व और सार के नियम को लागू करके यह अवधारित किया जाना है कि क्या आक्षेपकृत विधान की विषयवस्तु को अनुच्छेद 246 के अधीन सक्षमतापूर्वक अधिनियमित किया गया था या नहीं अतः अनुच्छेद 254 के अधीन विरोध का प्रश्न विवादास्पद मामला नहीं था। तथापि, अपीलार्थियों की ओर से प्रस्तुत की गई दलील यह है कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) जोकि सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 से संबन्धित है और सूची 3 की प्रविष्टि 33 से सम्बन्धित आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए अन्तरण आदेश के पैरा 21 के बीच सीधा टकराव और/या ऐसा विरोध है, जिसमें सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता। यह दलील देने की मांग की गई कि "संसद द्वारा बनाई गई कोई विधि, जिसे संसद अधिनियमित करने के लिए सक्षम है" शब्दों का इस प्रकार से अर्थ लगाया जाना चाहिए कि जिससे न केवल समवर्ती सूची में प्रगणित मामलों में से किसी एक की बाबत संसद् द्वारा बनाई गई विधि आ जाए किन्तु ये इतनी व्यापक होनी चाहिए कि इसके अन्तर्गत संघ सूची में प्रगणित मामलों में से किसी की बाबत संसद् द्वारा बनाई गई कोई विधि भी आ जाए। तर्क को इस रूप में प्रस्तुत किया गया। यह विचार करने में कि कोई राज्य विधि संसद द्वारा बनाई गई विधि के विरुद्ध है, दो प्रश्न उद्भूत होते हैं, पहला यह है कि क्या संसद द्वारा बनाई गई विधि, अर्थात् आवश्यक वस्तु अधिषियम एक विधिमान्य विधि है? क्योंकि यदि यह नहीं है तो इसका राज्य विधि से विरोध का प्रश्न ही पदा नहीं हो सकता। फिर भी, यदि यह विधिमान्य विधि है तो उसके प्रत्यक्ष रूप से विरोध गठित करने का प्रश्न उद्भूत होगा। दूसरा प्रश्न अनुच्छेद 254 (1) में "संसद द्वारा बनाई गई विधि, जिसे संसद अधिनियमित करने के लिए समक्ष है।" शब्दों के अर्थान्वयन का है।

64. क्लाइड इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम काऊबर्न[1] वाले मामले में आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय के निर्णय पर और कोलिन हावर्ड

---

[1] (1926) 37 कमर्शियल एल० आर० 466.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वारा लिखित आस्ट्रेलियन फैड्रल कांस्टीट्यूशनल लॉ, दूसरा संस्करण, पृष्ठ 34-35 की स्वीकृति का बहुत अधिक अवलम्ब लिया गया। हमारा ध्यान आस्ट्रेलिया उच्च न्यायालय के दो अन्य विनिश्चयों : एक्स पार्टे मैकलियन[1] और स्टाक मोटर प्लोज लिमिटेड बनाम फोरसाइथ[2] की ओर भी आकर्षित किया गया। क्लाइड इंजीनियरिंग कम्पनी[3] का विनिश्चय इस प्रतिपादना के अनुसार है कि दोनों अधिनियमितियां असंगत हो सकती हैं, जहां एक कानून दूसरे के द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीन लेता है यद्यपि उनमें से प्रत्येक का पालन दूसरे की अवज्ञा के बिना संभव हो सकता। दलील यह दी गई कि नियंत्रण आदेश के पैरा 21 द्वारा औषधियों और औषधियों की विनिर्मितियों और उत्पादकों को विक्रय कर के दायित्व को संक्रान्त करने का अधिकार प्रदत्त किया गया है जबकि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) द्वारा ऐसे विनिर्माताओं को और उत्पादकों को ऐसे दायित्व के संक्रामण से प्रतिषिद्ध किया गया है। यह तर्क स्पष्टतः दो कारणों से कायम नहीं रह सकता, अर्थात् (1) सूची 2 की प्रविष्टि 54 एक कर प्रविष्टि है और अतः उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) जोकि प्रविष्टि 54 से संबन्धित माल के विक्रय या क्रय पर कर अधिरोपित करने के लिए राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधि है और आवश्यक वस्तु अधिनियम की, जोकि सूची 3 की प्रविष्टि 33 से संबन्धित संसद द्वारा बनाई गई विधि है, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी नियंत्रण आदेश के पैरा 21 के बीच विरोध का प्रश्न नहीं है और (2) "विरोध" का प्रश्न केवल समवर्ती सूची में प्रगणित उन विषयों के सम्बन्ध में ही उद्भूत हो सकता है जहाँ तक कि संघ और राज्य विधानमण्डलों दोनों को समवर्ती शक्तियां प्राप्त हैं जिससे कि दोनों विधानमण्डलों द्वारा एक ही विषय पर बनाई गई विधियों के बीच विरोध का प्रश्न उद्भूत हो सकता है।

65. इस न्यायालय ने अनेक मामलों में विरोध के प्रश्न पर विचार किया है और दीप चन्द बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य[4] वाले मामले में नजीरों के परिणाम को न्यायाधिपति सुब्बाराव ने इस प्रकार से कथित किया है।

---

[1] (1930) 43 कमर्शियल एल० आर० 472.
[2] (1932) 48 कमर्शियल एल० आर० 128.
[3] (1926) 37 कमर्शियल एल० आर० 466.
[4] (1959) सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 8.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

66. संविधान का अनुच्छेद 254 प्रथमतः इस बारे में उपबन्ध करता है कि ऐसी दशा में क्या होगा जिसमें कि समवर्ती सूची के अन्तर्गत प्रगणित विषयों के बारे में किसी केन्द्रीय तथा राज्य विधि के बीच मतभेद है और दूसरे, उसके अन्तर्गत ऐसे मतभेद का समाधान करने के लिए उपबन्ध किया गया है। अनुच्छेद 254 (1) इस प्रसामान्य नियम को प्रतिपादित करता है कि संघ तथा राज्य विधि के बीच समवर्ती क्षेत्र में मतभेद होने की दशा में भी पूर्वतर पश्चात्वर्ती पर अभिभावी होगा। खंड (1) में यह अधिकथित किया गया है कि यदि कोई राज्य विधि जिसका सम्बन्ध किसी समवर्ती विषय से है, तत्विषय के सम्बन्ध में संघ की विधि के प्रतिकूल है तो क्या संघ विधि समय की दृष्टि से पश्चात्वर्ती अथवा पूर्ववर्ती मानी जाएगी, संघ विधि अभिभावी होगी और जहां तक प्रतिकूलता हो वहां तक राज्य विधि शून्य हो जाएगी। खंड (1) खंड (2) में अधिकथित सामान्य नियम एक अपवाद को अन्तः स्थापित करता है अर्थात् यह कि यदि राष्ट्रपति किसी राज्य विधि को अनुमति प्रदान करता है जो कि उसके विचारार्थ आरक्षित रखी गई है तो इस बात के बावजूद कि वह संघ की किसी पूर्ववर्ती विधि के प्रतिकूल है अभिभावी होगी और दोनों की विधियां समवर्ती विषय की बाबत लागू होंगी। ऐसी दशा में केन्द्रीय अधिनियम केवल उस हद तक जहां तक कि राज्य अधिनियम में दोनों के अन्तर्गत विसंगति हो, लागू नहीं होगा, न कि इससे अधिक विस्तार-पर्यन्त। संक्षेप में किसी ऐसे राज्य अधिनियम हेतु राष्ट्रपति की अनुमति अभिप्राप्त करने का परिणाम जो किसी ऐसी पश्चात्वर्ती संघ विधि से विसंगत हो जो कि समवर्ती विषय के सम्बन्ध में है, राज्य अधिनियम उस राज्य में अभिभावी होगा और केवल उसी राज्य को उनके लागू किए जाने की बाबत केन्द्रीय अधिनियम के उपबन्ध अध्यारोही होंगे। किन्तु हो सकता है कि राज्य विधि का आधिपत्य ऐसी दशा में छीन लिया जाए जिसमें कि संसद् खंड (2) के परन्तुक के अधीन विधान बनाती है। अनुच्छेद 254 (2) का उपबन्ध संघ की संसद् को इस बात के लिए सशक्त बनाता है कि वह किसी प्रतिकूल राज्य सम्बन्धी विधि को प्रत्यक्षतः अथवा स्वतः उसी विषय की बाबत राज्य विधि के प्रतिकूल किसी विधि को अधिनियमित करते हुए उसे निरसित अथवा संशोधित कर सकेगी। यद्यपि ऐसी पश्चात्वर्ती विधि जो संदद् द्वारा बनाई गई हो अभिव्यक्त रूप से राज्य की विधि को निरसित नहीं करती है तो भी राज्य विधि वैसे ही शून्य हो जाएगी जैसे कि संसद् की वह पश्चात्वर्ती विधि शून्य हो जाती है जिसके द्वारा प्रतिकूलता उत्पन्न की गई है। कोई राज्य सम्बन्धी विधि वहां संघ की विधि के प्रतिकूल होगी जहां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि इन दोनों विधियों के बीच परस्पर मतभेद है। हो सकता है कि ऐसी प्रतिकूलता उस दशा में भी उद्भूत हो जिसमें कि दोनों विधियां एक ही क्षेत्र में प्रवर्तित होती हैं और इन दोनों प्रकार की विधियों का एक साथ रहना संभव नहीं हैं। देखिए न्यायाधिपति सुब्बाराव—जेवरभाई अमैदास बनाम मुम्बई राज्य[1], एम० करुणानिधि बनाम भारत संघ[2], टी० बरई बनाम हेनरी आह हो[3]—

> "निकोलस के आस्ट्रेलियन कांस्टिट्यूशन, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 303 पर असंगति या विरोध के लिए तीन कसौटियां निर्दिष्ट की गई हैं, जो इस प्रकार हैं—
>
> 1. प्रतिस्पर्धी कानूनों में वास्तविक असंगति हो सकती है,
>
> 2. हो सकता है कि कोई प्रत्यक्ष विरोध न हो, तथापि राज्य विधि इसलिए अप्रवर्तनीय हो सकती है कि कामनवेल्थ ला या कामनवेल्थ कोर्ट के किसी अधिनिर्णय का सर्वांगीण संहिता होना आशयित है, और
>
> 3. आशय के अभाव में भी उस दशा में विरोध उत्पन्न हो सकता है जब कि स्टेट तथा कामनवेल्थ दोनों एक ही विषयवस्तु की बाबत अपनी अपनी शक्तियों का प्रयोग करना चाहें।"

चौधरी टीका रामजी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य[4] वाले मामले में न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ निकोलस द्वारा बनाए गए उपरोक्त तीनों नियमों को विरोध के प्रश्न को परखने के लिए उपयोगी मार्गदर्शनों के रूप में स्वीकार किया है।

67. हम उन तीन आस्ट्रेलियन विनिश्चयों को निर्दिष्ट करेंगे जिनका अवलंब लिया गया है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, क्लाइड इंजीनियरिंग कम्पनी[5] वाले मामले के विनिश्चय में यह अधिकथित है कि असंगति तब भी पैदा होती है जब एक कानून दूसरे द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीन लेता है। एक्स पार्ट मेक्लीन वाले मामले[6] में न्यायाधिपति इसाक्स

---

1 (1955) 2 एस० सी० आर० 799.
2 (1980) 1 उम० नि० प० 1121=(1979) 3 एस० सी० आर० 284.
3 (1983) 1 एस० सी० सी० 177.
4 (1956) एस० सी० आर० 393.
5 (1926) 37 कमर्शियल एल० आर० 466.
6 (1930 43 कमर्शियल एल० आर० 472.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जे० डिक्सन के प्रकाश डालने वाले निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि दो कानूनों में असंगति कही जा सकती है यदि वे एक जैसी विषयवस्तु की बाबत उस विषय पर एक जैसा कर्तव्य अधिरोपित करते हैं किन्तु जिनमें उन कर्तव्यों को प्रवृत्त करने के लिए भिन्न मंजूरियों का उपबंध है। स्टाक मोटर प्लोज लिमिटेड[1] वाले मामले में न्यायाधिपति इवाट ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामलों की बाबत भी जहाँ दो विधियां पालन किए जाने के लिए एक ही कर्तव्य अधिरोपित करती हैं वहां भी असंगति हो सकती है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इन अपीलों में संविवाद का, आक्षेपकृत अधिनियमिति की सही प्रकृति और स्वरूप, उसके तत्व और सार, द्वारा इस प्रकार अवधारण करने के अंतर्गत आता है कि क्या यह अनुच्छेद 246 (3) के अधीन राज्य विधानमण्डल की विधायी क्षमता के अंतर्गत है और इसमें अनुच्छेद 254 (1) के अधीन विरोध का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं है।

68. हम अपीलार्थियों की ओर से प्रस्तुत की गई इस दलील के लिए आधार को समझ पाने में असमर्थ हैं कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) जो कि सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 से सम्बन्धित है और सूची 3 की प्रविष्टि 33 से सम्बन्धित आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए नियंत्र आदेश के पैरा 21 के बीच कोई विरोध है और इसलिए उक्त अधिनियम की, जोकि राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधि है, धारा 5 की उपधारा (3) अनुच्छेद 254 (1) के अधीन शून्य है। अनुच्छेद 254 (1) के अधीन संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि और राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि के बीच विरोध का प्रश्न केवल उस दशा में उठता है जब दोनों विधान समवर्ती सूची में प्रगणित मामलों में से किसी एक की बाबत एक ही विषय पर हों और दोनों विधियों में सीधा विरोध हो। जब इन दोनों अपेक्षाओं के पूरा हो जाने पर ही राज्य विधि विरोध की सीमा तक शून्य होगी। एक ओर सूची 2 और दूसरी ओर सूची 1 और सूची 3 के बीच पाई गई अतिव्याप्ति के कारण अनुच्छेद 254 (1) विरोध के मामलों में लागू नहीं हो सकता। यदि ऐसी अतिव्याप्ति किसी विशिष्ट मामले में विद्यमान है, तो राज्य विधि अनुच्छेद 246 (3) में "खंड 1 और खंड 2 के अधीन रहते हुए" में प्रारम्भिक शब्दों के साथ पठित अनुच्छेद 246 (1) में अध्यारोही खण्ड के कारण अधिकारातीत हो जाएगी।

---

[1] (1932) 48 कमर्शियल एल० आर० 128.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऐसी दशा में, राज्य विधि संघ विधि के विरोध के कारण असफल नहीं होगी किन्तु वह विधायी क्षमता की कमी के कारण होगी। निस्संदेह, यह सत्य है कि अनुच्छेद 254 (1) में "संसद् द्वारा बनाई गई कोई विधि जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद् सक्षम है" अभिव्यक्ति से यह अर्थान्वयन हो सकता है कि राज्य विधि और संसद द्वारा बनाई गई विधि के बीच विरोध समवर्ती क्षेत्र के बाहर भी हो सकता है क्योंकि संसद को सूची 3 और "सूची-1" में सम्मिलित विषयों की बाबत विधि अधिनियमित करने की क्षमता है किन्तु यदि अनुच्छेद 254 (1) को एक साथ पढ़ा जाए तो यह दिखाई देगा कि यह अभिव्यक्त रूप से खण्ड (2) के अधीन रहते हुए बनाई गई है जो कि समवर्ती सूची के क्षेत्र में विरोध को निर्दिष्ट करता है—दूसरे शब्दों में यदि खण्ड (2) को खण्ड (1) की परिधि का अवधारण करने में मार्गदर्शन के रूप में लिया जाए तो संघ और राज्य विधि के बीच विरोध को केवल समवर्ती क्षेत्र में निर्दिष्ट किया गया समझा जाना चाहिए। अनुच्छेद 254 (1) में राज्य विधि को (क) संसद द्वारा बनाई गई विधि; या (ख) कोई विद्यमान विधि के विरोध में बताया गया है।

69. एक समय ऐसा संविवाद था कि क्या "जहां राज्य के विधान-मण्डल द्वारा समवर्ती सूची में प्रगणित किसी विषय के सम्बन्ध में" प्रारम्भिक शब्द (क) या (ख) दोनों को या अकेले (ख) को शासित करते हैं। यह अब बहुत से विनिश्चयों द्वारा तय हो चुका है कि विरोध का प्रश्न केवल तभी उठता है जब दोनों विधानमण्डल एक ही क्षेत्र में विधि बनाने के लिए सक्षम हैं। अतः अनुच्छेद 254 (1) तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि संघ और राज्य विधियां दोनों का समवर्ती सूची में विनिर्दिष्ट विषय से सम्बन्ध न हो और उनका क्षेत्र एक ही हो।

70. हमारे इस अर्थान्वयन की निम्नलिखित प्रभाव के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 107 (1) पर चर्चा करते समय **ए० एस० कृष्ण**[1] वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ की ओर से बोलते हुए न्यायाधिपति वेंकटरामा अय्यर के संप्रेक्षणों द्वारा पुष्टि हुई है—

> "इस धारा को लागू करने के लिए दो शर्तें पूरी की जानी चाहिएं; (1) प्रान्तीय विधि के उपबन्ध और केन्द्रीय विधान, दोनों ऐसे मामले की बाबत होने चाहिएं जोकि समवर्ती सूची में प्रगणित

---

[1] (1957) एस० सी० आर० 399.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है; (2) उन दोनों में विरोध हो। जब इन दोनों अपेक्षाओं का समाधान हो जाए, तभी प्रान्तीय विधि, विरोध की सीमा तक, शून्य होगी।''

71. चौधरी टीका रामजी[1] वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि संविधान के अनुच्छेद 254 के अधीन उस दशा में विरोध का कोई प्रश्न पैदा नहीं हो सकता, जहां संसदीय विधान और राज्य विधान के भिन्न-भिन्न क्षेत्र हैं और उनका अलग-अलग और सुभिन्न मामलों से वास्ता है। यद्यपि वे एक जैसे और समवर्ती स्वरूप के हैं और यह कि उस मामले में जहां संसद द्वारा अधिनियमित और सूची 3 की प्रविष्टि 33 से सम्बन्धित राज्य विधानमण्डल के अधिनियमों के वास्तविक निबन्धनों में कोई असंगति न हो वहां विरोध की कसौटी यह होगी कि क्या संसद् और राज्य विधानमण्डल ने समवर्ती सूची में किसी प्रविष्टि का विधान बनाने में एक ही विषयवस्तु पर अपने शक्तियों का प्रयोग किया या कि क्या संसद् द्वारा अधिनियमित विधियों से सम्पूर्ण क्षेत्र पर कब्जा करने का आशय था तथा निम्नलिखित यह भी कहा—

"तत्व और सार तर्क का यहां इस साधारण कारण से अर्थ नहीं लिया जा सकता कि जब केन्द्र और राज्य विधानमंडल दोनों का परिचालन समवर्ती क्षेत्र में हो तो सूची 1 की प्रविष्टि 52 के अधीन केन्द्र की अनन्य अधिकारिता पर किसी अधिक्रमण का कोई प्रश्न ही नहीं है, एकमात्र प्रश्न जो बचा रहता है वह यह है कि जब केन्द्र और राज्य विधानमण्डल द्वारा अधिनियमित दोनों विधानों को रखा जाए तो क्या उनमें कोई विरोध दिखाई देता है।"

इस मत से यह विचार पक्का होता है कि एक ओर सूची 2 और दूसरी ओर सूची 1 और सूची 3 के बीच अतिव्याप्ति के मामलों में अनुच्छेद 254 (1) के अधीन विरोध का कोई प्रश्न नहीं है। दीप चन्द वाले मामले में[2] न्यायाधिपति सुब्बाराव ने सांविधानिक न्यायपीठ की ओर से बोलते हुए अनुच्छेद 254 (1) का निर्वचन निम्नलिखित शब्दों में किया—

"अनुच्छेद 254 (1) साधारण नियम अधिकथित करता है। खण्ड (2) उस अनुच्छेद में एक अपवाद है और परन्तुक उक्त

[1] (1956) एस० सी० आर० 393.

[2] (1959) सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 8.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपवाद की विशेषता बतलाता है। यदि राज्य द्वारा बनाई गई विधि और संसद द्वारा बनाई गई विधि के बीच समवर्ती सूची में प्रगणित मामलों में से किसी एक की बाबत कोई विरोध हो तो संसद द्वारा बनाई गई विधि उस विरोध की सीमा तक अभिभावी होगी और राज्य द्वारा बनाई गई विधि ऐसे विरोध की सीमा तक शून्य होगी।"

अपीलार्थियों के विद्वान काउन्सेल का सम्मान करते हुए यह कहा जाएगा कि उन्होंने इन निर्णयों को ध्यान में रखते हुए इस मुद्दे को और आगे नहीं बढ़ाया।

72. हमारा यह विचार है कि यह दलील पूर्णतया भ्रामक है कि राज्य विधि के रूप में उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) को अधिकारातीत रूप में अभिखंडित किया जाना चाहिए क्योंकि आवश्यक वस्तुओं की कीमत नियत करने का क्षेत्र केन्द्रीय विधान के अन्तर्गत आता है। यह सूत्रबद्ध है कि राज्य विधानमण्डल की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि से सम्बन्धित माल के विक्रय अथवा क्रय पर कर के उद्‌ग्रहण और अधिरोपण की बाबत विधि बना सकता है। और वह तन्निमित आनुषंगिक उपबन्ध विरचित कर सकता है और वह शक्ति पूर्ण शक्ति है तथा सूची 3 की प्रविष्टि 33 के अधीन किसी विधि को निर्मित करने हेतु संसद की शक्ति के अध्यधीन नहीं हैं। इस बात की कोई अपेक्षा नहीं है कि संसद की शक्ति में विस्तार करके सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन कराधान की राज्य की शक्ति के अन्तर्गत सूची 3 की प्रविष्टि 33 के अधीन विधि विरचित की जा सके। अन्यथा प्रविष्टि 54 का निम्नलिखित रूप में परिशीलन करना होगा "अत्यावश्यक वस्तुओं से भिन्न माल के विक्रय अथवा क्रय पर कर।" जब एक बार कोई प्रविष्टि किसी अन्य प्रविष्टि के अध्यधीन विरचित कर दी जाती है तो उससे मात्र यह अभिप्रेत होता है कि पूर्ववर्ती प्रविष्टि की परिधि में से पश्चात्‌वर्ती प्रविष्टि द्वारा अन्तर्विष्ट विधान के क्षेत्र को इस रूप में आरक्षित रखा गया है कि उसकी बाबत समुचित विधानमण्डल द्वारा विशेष रूप से चर्चा की जाए। सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 केवल सूची 1 की प्रविष्टि 92क के अध्यधीन है और कराधान सम्बन्धी राज्य की शक्ति में इससे अतिरिक्त कटौती नहीं की जा सकती। यह अर्थान्वयन का एक सुस्थिर नियम है कि निश्चित रूप से इन तीनों सूचियों में आने वाली प्रविष्टियों का परिशीलन व्यापक तथा उदारपूर्वक अर्थों में किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाना चाहिए और उन्हें व्यापकतम विस्तार प्रदान किया जाना चाहिए जितना कि उनका अर्थ उचित रूप से किए जाने के समर्थ हो क्योंकि उनके द्वारा सरकारी-तन्त्र स्थापित किया जाता है।

73. जो संविवाद अब उठाया गया है वह राज्यों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है और प्रत्यक्ष रूप से एक ऐसा विषय है जिसमें संघ की गम्भीर दिलचस्पी है। किन्तु इसके विधिक पहलू के अन्तर्गत, प्रश्न अत्यन्त संकुचित परिधि के अन्तर्गत आता है। न्यायालय का कर्तव्य मात्र यह है कि वह विधि की दृष्टि से, संविधान के अनुच्छेद 246(3) के सही अर्थान्वयन के अनुसार अवधारण करे कि क्या सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन माल के विक्रय के कराधान की राज्य की शक्ति जो सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन उसे प्राप्य हैं, तथा उससे सम्बद्ध आनुषंगिक उपबन्धों की विरचना ऐसी है कि उसमें समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से किसी एक विषय की बाबत संसद् द्वारा निर्मित विधि द्वारा अतिक्रमण किया जाना समर्थ है। यह दलील इस बात को अन्तर्विष्ट नहीं कर सकती कि संविधान अनुच्छेद 246 के अधीन संघ तथा राज्यों की कराधान शक्ति का पूर्णतया पृथक्करण प्रभावशील बना सके।

74. यह बात पूरी तरह से तय हो चुकी है कि तीनों सूचियों में विभिन्न प्रविष्टियां "विधान की शक्तियां" न हो कर विधान के "क्षेत्र" हैं। विधान बनाने की शक्ति संविधान के अनुच्छेद 246 और अन्य अनुच्छेदों द्वारा दी गई है। कराधान को विधायी क्षमता के प्रयोजनों के लिए सुभिन्न मामलों के रूप में माना गया है। अतः कर लगाने की शक्ति को साधारण विधायी प्रविष्टि से आनुषंगिक शक्ति के रूप में नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त कर का तत्व प्रत्यक्ष रूप से सूची 3 की प्रविष्टि 33 के अधीन अत्यावश्यक वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय तथा वितरण में और व्यापार तथा वाणिज्य को विनियमित करने की शक्ति से प्रत्यक्ष रूप से उद्भूत नहीं होता है हालांकि हो सकता है कि कर का संदाय करने सम्बन्धी दायित्व एक ऐसा विषय हो जो कीमत निर्धारण सम्बन्धी केन्द्र की शक्ति का आनुषंगिक विषय है।

75. "संघ तथा राज्यों के बीच पारस्परिक विधायी सम्बन्ध जो अनुसूची 7 की तीन सूचियों में के प्रति निर्दिष्ट हैं उन्हें तब तक पूर्णतया नहीं समझा जा सकता जब तक कि उन सूचियों में अन्तर्विष्ट प्रविष्टियों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वारा प्रकट किए गए सामान्य लक्षणों की परीक्षा न कर ली जाए।" [सीरवई कांस्टिट्यूशनल लॉ ऑफ इंडिया, तृतीय संस्करण, खंड (1), पृष्ठ 81-82]। सप्तम अनुसूची की सूची 1 और 2 की संवीक्षा से यह दर्शित होगा कि कराधान सम्बन्ध शक्ति में कहीं भी कोई अतिव्याप्ति नहीं है और संविधान संघ तथा राज्यों को स्वतन्त्र रूप से कराधान के स्रोत प्रदान करता है। गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की स्कीम का अनुसरण करते हुए संविधान ने संघ तथा राज्यों की कराधान शक्ति को परस्पर रूप से अनन्य बनाया है और इस प्रकार उन कठिनाइयों से बचाया है जो कि कुछ अन्य परिसंघीय संविधानों में विद्यमान हैं और जिनसे कराधान की शक्तियां अतिव्याप्त हो जाती हैं।

76. इसलिए यह प्रतीत होता है कि विधानमण्डल तथा कराधान के सामान्य विषयों के बीच प्रभेद है। विधान के सामान्य विषयों की चर्चा प्रविष्टियों के एक समूह में की गई है और कराधान की शक्ति की चर्चा एक पृथक् समूह में की गई है। एम० पी० सुन्दररामैयर एण्ड कंपनी बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पारस्परिक रूप से अनन्य सूचियों द्वारा संघ और राज्यों के बीच कराधान शक्तियों के प्रथक्करण की स्कीम की चर्चा की थी। सूची I में प्रविष्टि सं० 1 से 81 विधान के सामान्य विषयों की बाबत हैं। प्रविष्टि सं० 82 से 92-क करों की बाबत हैं। सूची सं० 2 प्रविष्टि सं० 1 से 44 विधान के सामान्य विषयों की बाबत हैं; प्रविष्टि सं० 45 से 63 में करों की चर्चा की गई है। यह पारस्परिक अनन्यता तथ्य से उद्भूत होती है। सूची III अर्थात् समवर्ती विधायी सूची में ऐसी कोई प्रविष्टि नहीं है जिसका कर से सम्बन्ध हो, किन्तु उसमें केवल ऐसी प्रविष्टि अन्तर्विष्ट है जिसका सम्बन्ध न्यायालय फीस से भिन्न उक्त सूची में अन्य विषयों की बाबत फीस के उद्ग्रहण से है। इस प्रकार हमारे संविधान में संघ तथा राज्यों की कराधान शक्तियों के बीच मतभेद उत्पन्न नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में यह दलील समझ में नहीं आती कि किस प्रतिषिद्ध क्षेत्र के अन्तर्गत सूची 3 की प्रविष्टि 33 के अधीन संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है अर्थात् वह सप्तम अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 54 के प्रति निर्देश से माल के विक्रय अथवा क्रय पर कर के उद्ग्रहण तथा अधिरोपण की बाबत विधि बनाने की राज्य की अनन्य शक्ति है। इसका उपपरिणाम यह होगा कि दोनों विधियां अर्थात् अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) तथा आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय

---

[1] [1958] एस० सी० आर० 1422.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
सरकार द्वारा जारी किए गए नियंत्रण आदेश का पैरा 21 का दो अलग-अलग और सुभिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त होती है और दोनों का अनुपालन किया जा सकता है। इन दोनों विधियों के बीच किसी संघर्ष का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता और प्रतिकूलता के प्रश्न की तो बात ही क्या।

77. मामले के शेष भाग में कोई विशेष कठिनाई नहीं है, इसके साथ संविधान के अनुच्छेद 14 और 19(1)(छ) पर आधारित दलील से निपटना भी आसान है क्योंकि वे थोड़ा बहुत एक ही आधार पर की गई हैं। इस बात पर जोर दिया गया है कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) में अंतर्विष्ट उपबन्ध स्पष्टतः और प्रत्यक्षतः भेदभावपूर्ण हैं क्योंकि यह "असमान लोगों को समान लोगों के रूप में" मानता है। यह बात बताई गई है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम में कतिपय नियन्त्रित वस्तुओं को और उनके विक्रेताओं के साथ नियन्त्रित कीमत नियत करके एक विशेष रीति में व्यवहार किया गया है। इस केन्द्रीय विधि द्वारा इस प्रकार से माने गए व्यवहारी इस परिस्थिति में आ गए हैं कि उनकी बराबरी ऐसे व्यवहारियों से नहीं की जा सकती जो किसी नियंत्रण आदेश द्वारा प्रभावित नहीं है। व्यापारियों के ऐसे वर्ग को जो अपनी विक्रय कीमत बढ़ा सकता है और उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन उद्गृहीत अधिभार आमेलित कर सकता है तथा औषधियों और औषधियों के विनिर्माता और उत्पादकों जैसे व्यवहारियों के वर्ग को जो अपनी विक्रय कीमतें नियंत्रित कीमत से अधिक नहीं बढ़ा सकते, एक समान माना गया है। यह दलील दी गई है कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन जो कि औषधियों तथा भेषजों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के विनिर्माताओं तथा उत्पादकों को अधिभार का संदाय करने के उत्तरदायित्व को अन्तरित करता है अधिहारी है और वह ऐसे विनिर्माताओं तथा उत्पादकों या अन्य व्यवहारियों पर अननुपातक भार अधिरोपित करता है।

78. इन दोनों निरपेक्ष प्रश्नों का इस आधार पर समर्थन किया गया है कि प्रत्येक अपीलार्थी एक ऐसा व्यवहारी था जिसका कि एक वर्ष के दौरान पांच लाख या उससे अधिक सकल आवर्त था और इसलिए वह अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन उनके द्वारा संदेय कर के अलावा अधिभार का संदाय करने के दायित्वाधीन था। यह शोचनीय बात है कि इस दलील का समर्थन करने के लिए कोई ताथ्यिक आधार अधिकथित नहीं किया गया है। अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन अधिभार का उद्ग्रहण कतिपय प्रकार के व्यवहारियों पर अननुपातिक भार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिरोपित करती है जो कि उन पर ऐसे विनिर्मितियों या भेषजों और फार्मास्युटिकल्स के उत्पादकों या मोटर यानों इत्यादि का विवरण तथा विक्रय करने के कारबार में संलग्न हैं जिससे कि इस प्रकथन का समर्थन किया जा सके कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) ऐसे व्यक्तियों को इस बात से प्रतिषिद्ध करती हैं कि उनके द्वारा अधिभार का संदाय करने के दायित्व को अन्तरित करना मनमाना और विवेकहीन है या यह कि इसमें असमान व्यक्तियों को समान व्यक्तियों के रूप में व्यवहृत किया गया है और इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण किया गया है अथवा वह अधिहारी प्रकृति का है।

79. यह अभिनिर्धारित करने के लिए कदाचित् कोई आधार नहीं है कि यदि नियम की धारा 5 की उपधारा (3) मनमानी अथवा विवेकहीन है या यह कि इसमें असमान व्यक्तियों को समान व्यक्तियों के रूप में माना गया है अथवा यह कि यह व्यवहारियों के कतिपय वर्ग पर अननुपातिक भार अधिरोपित करती है। यह स्मरणीय है कि अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) में उनके द्वारा संदेय कर के 10 प्रतिशत की समान दर से अधिभार के उद्ग्रहण का उपबन्ध है जहां कि एक वर्ष में पांच लाख या उससे अधिक सकल आवर्त विद्यमान हो ; इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे क्या आवश्यक वस्तुओं के व्यवहारी हैं अथवा नहीं। सही प्रकृति और प्रकार में कोई अधिभार मात्र उचित दर है जिससे कि सामान्य प्रयोजनों के लिए राजस्व जुठाया जा सके। अधिनियम की धारा 5 (1) के अधिन अधिभार का उद्ग्रहण एक रूप से व्यवहारियों के किसी विशिष्ट वर्ग पर पड़ता है जो कि अतिरिक्त भार को वहन करने पर उनकी क्षमता पर निर्भर करता है। धन सम्बन्धी दृष्टिकोण से, किसी विनिर्माता अथवा उत्पादक पर विक्रय कर कीमत-संरचना की जटिलता को अन्तर्वलित करता है। किसी वाणिज्य की कीमत में वृद्धि करना समुचित है और यह उपभोक्ता के प्रति अग्रेषित होने की प्रवृति रखती है। विनिर्माता अथवा उत्पादक प्रायः अपनी कीमतों को कतिपय लाभ सम्बन्धी उद्देश्यों के रूप में विरचित करते हैं। उनकी प्रारंभिक प्रतिक्रिया कर की कुल रकम द्वारा कीमतों में वृद्धि करने पर रहती है। जहां एक पारम्परिक वृद्धि सारवान रूप से वसूल न किए गए लाभों के रूप में रह जाती है वहां सफलतापूर्वक कर परिवर्तन सम्भव है, कर की प्रकृति चाहे जो भी हो। वह दूसरी ओर कर उत्पाद को संक्रांत नहीं किया जा सकता वहां निश्चित रूप से धन के स्वामियों के प्रति उसे पीछे कर दिया जाना चाहिए। अर्थशास्त्रियों के सैद्धांतिक दृष्टिकोण के बावजूद कारबार करने वाले व्यक्ति कर को लागत के रूप में मानते हैं और तदनुसार सामजस्य करते हैं और यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ह्योहन सी० विनप्रेकृत पब्लिक फायनेंस के में निम्नलिखित संदर्भ में स्पष्ट किया गया है :

"बार-बार करने वाला ....सीमांतक लागत कीमत के सम्पूर्ण दृष्टिकोण की बाबत संदिग्ध रहा है । उसकी स्थिति यह है कि कीमतों का अवधारण करते समय करों को लागत माना जाता है, चाहे वह 'पूर्ण लागत कीमत लगाने' सम्बन्धी नियम का भाग हो, जो कि कर की सुनिश्चित दर हो अथवा जो विवरणी के कर सम्बन्धी उद्दिष्ट दर के क्षेत्र को पूरा करने के लिए कीमत लगायी गई हो। इन सूत्रों के कथनानुसार कर की दर में परिवर्तन कीमत में सामजस्य स्थापित करता है, यह तथ्य कि ऐसी कीमत सम्बन्धी नीति लाभों को अधिकाधिक बनाने की प्रायिक अवधारणाओं से मेल नहीं खाती उसकी विद्यमानता को नासाबित नहीं करता ।"

80. यहां तनिक रुक कर हम इस बात का सम्प्रेक्षण कर सकते हैं कि जहां तक औषधियों और औषधियों की बात है, अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) के अधीन विनिर्माताओं या उत्पादकों द्वारा अधिभार वहन किए जाने पर, उपभोक्ताओं के लिए ऐसी औषधियों और भेषजों की नियंत्रित कीमत वही बनी रहेगी । ऊपर निर्दिष्ट आंकड़ों से, यह दिखाई देगा कि अकेले बिहार राज्य में अपीलार्थियों द्वारा चलाया जाने वाला कारबार इतनी ऊंचाई पर है कि वे उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के उद्गृहीत अधिभार के अतिरिक्त भार को वहन करने में समर्थ हैं । यह मोटे तौर पर विनिर्मित वस्तु की विक्रय कीमत के एक रुपए पर लगभग एक पैसे के बराबर बैठता है । अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है जिससे यह पता चले कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन उद्गृहीत अधिभार अपीलार्थियों पर अननुपातिक भार अधिरोपित करता है या यह कि यह अधिहरणीय प्रकृति का है ।

81. मनमानी का तर्क निराशा से दिया गया तर्क है । उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) ऐसे व्यवहारियों पर, जिनका वार्षिक सकल व्यापारावर्त, बिना इस बात को देखे कि ऐसा व्यवहारी आवश्यक वस्तुओं का व्यापार करता है या नहीं, पांच लाख रुपए से अधिक है, अधिभार उद्गृहीत करती है । यह एक साधारण कर है और उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन निर्धारित वर्ग के अन्तर्गत आने वाले सभी व्यवहारियों पर कर के दस प्रतिशत की समान दर से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिभार उद्गृहीत किया गया है। यह बात ध्यान देने की है धारा 5 की उपधारा (1) के प्रथम परन्तुक में यह आदेश है कि उक्त अधिनियम के अधीन संदेय कर और अधिभार का योग, केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 की धारा 14 द्वारा अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य में विशेष महत्व के रूप में घोषित माल की बाबत, उस अधिनियम की धारा 15 द्वारा नियत दर से अधिक नहीं होगा। उस अधिनियम की धारा 14 के अधीन, लगभग सभी ऐसी वस्तुओं को, जो समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक हैं, अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य में विशेष महत्व के माल के रूप में घोषित किया गया है और अत: ऐसे माल के विक्रय या क्रय पर उद्गृहीत अधिकतम विक्रय कर चार प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। अतः यह स्पष्ट है कि साधारणतया ऐसे व्यवहारियों को, जिनका धारा 14 के अन्तर्गत आने वाली वस्तुओं के व्यापार में वार्षिक सकल व्यापारावर्त पांच लाख रुपए है, उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन अधिभार के भार का वहन नहीं करना पड़ेगा। यह इन अपीलार्थियों के लिए दुर्भाग्य की बात है कि औषधियों और ओषधियों को केन्द्रीय विक्रय-कर अधिनियम की धारा 14 द्वारा अन्तराज्यिक व्यापार या वाणिज्य की बाबत विशेष महत्व का घोषित नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, पैरा 24 (1) के अधीन औषधियों के विनिर्माता या उत्पादकों के रूप में अपीलार्थियों को नियंत्रित कीमत पर ऐसे विक्रय कर का भार वहन करना पड़ा है जिसे वे थोक विक्रेता से ऐसी कीमत से, जो (क) नैतिक औषधियों (ऐथिकल ड्रग्स) की दशा में, फुटकर कीमत में से उसके 14 प्रतिशत को घटाकर; और (ख) नैतिकेतर औषधियों (नॉन-ऐथिकल ड्रग्स) की दशा में, फुटकर कीमत में से उसके 12 प्रतिशत घटाकर, आती है, उच्चतर कीमत प्रभारित नहीं कर सकते। पैरा 24 (2) के अधीन वे किसी परचूनिए को ऐसी कीमत से, जो (क) नैतिक औषधियों की दशा में, फुटकर कीमत में से उसके 12 प्रतिशत को घटाकर; और (ख) नैतिक औषधियों की दशा में, फुटकर कीमत में से उसके 10 प्रतिशत को घटाकर, आती है, उच्चतर कीमत पर नहीं बेच सकते। इन उपबन्धों से मात्र यह दर्शित होता है कि नैतिक औषधियों के मामले में थोक विक्रेता को 14 प्रतिशत तक का और नैतिकेतर औषधियों की दशा में 12 प्रतिशत तक का मार्जिन है, और थोक विक्रेता की, जब वह परचूनिए को बेचता है तो 2 प्रतिशत का मार्जिन है। इसके मुकाबले, औषधियों और ओषधियों के विनिर्माताओं और उत्पादकों के लाभ का मार्जिन पर्याप्त रूप से अधिक है। औषधि (कीमत नियंत्रण) आदेश की स्कीम के अधीन, पैरा 10 के अधीन विनिर्मितियों की फुटकर कीमत की संगणना उसमें निर्दिष्ट सूत्र के अनुसार की जानी होती है। एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्व जो कीमत संरचना में आता है, "वर्धित कीमत" है जिसे पैरा 11 में वितरण लागत, जावक भाड़ा, उन्नयन व्यय, विनिर्माता का मार्जिन और व्यवसाय कमीशन को सम्मिलित करके परिभाषित किया गया है। तृतीय अनुसूची के खण्ड (1) से (3) तक से दर्शित होता है कि वर्धित कीमत को प्रवर्ग (i) में विनिर्दिष्ट विनिर्मितियों, की दशा में 40 प्रतिशत तक, प्रवर्ग (ii) में विनिर्दिष्ट विनिर्मितियों की दशा में 55 प्रतिशत तक, और प्रवर्ग (iii) में विनिर्दिष्ट विनिर्मितियों की दशा में 100 प्रतिशत तक वर्गीकृत किया गया है। इसमें विनिर्मितियों के विनिर्माताओं और उत्पादकों द्वारा अर्जित लाभों की सीमा बताई गई है।

82. मन्दी की ऐसी परिस्थितियों में जहां कि मांग सम्बन्धी अनिश्चितता प्रचलित है और कीमतों को बढ़ाने की पद्धति विद्यमान है वहां प्रायिक प्रत्युत्तर यह है कि उपभोक्ताओं पर करों को अधिरोपित करने का प्रयत्न किया जाए। मसग्रेन ने अपनी पुस्तक पब्लिक फायनेंस इन थियोरी के प्रकाश में यह मत व्यक्त किया है कि अर्थशास्त्री कारबार सम्बन्धी व्यवहारी की बाबत वैवेकिक रूप से विचार करना चाहते हैं जिससे कि अधिकतम बनाने के नियम का अनुसरन किया जा सके किन्तु हो सकता है कि कारबार करने वाले व्यक्ति विवेकशील रूप से कार्य न करे। वे कर को लागत समझते हैं और तदनुसार सामजस्य स्थापित करते हैं : "इसमें एक पद्धति कीमत को बढ़ावा देना सीमांतक रूप से कीमत नियत करने पर हैं। इस नियम के अधीन लागतों को इसलिए वर्धित किया जाता है कि लागतों के प्रति लाभों का रुढ़िगत विनिश्चयाधार अनुज्ञात किया जा सके अथवा कीमत को इस प्रकार नियत किया जाता है जिससे कि लाभों का परित्याग कर दिया जाए (अर्थात् विक्रयों में से लागत घटा कर) जिससे कि रूढ़िगत रूप से विक्रय उद्भूत हों। क्या इससे अन्तरण उत्पन्न हो जाता है यह बात इस पर निर्भर है कि लागत तथा सीमांतकों को किस प्रकार परिभाषित किया जाता है। अन्तरण ऐसी दशा में उद्भूत होता है जिसमें कि कर को लागत के रूप में अन्तर्विष्ट किया जाता है अथवा यदि सीमांतक की परिभाषा स्वतन्त्र रूप में कर के तौर पर की जाती है। इसलिए यह प्रतीत होता है कि कारबार करने वाले व्यक्ति सीमांतक लागत कीमत के नियत किए जाने की बाबत सम्पूर्ण दृष्टिकोण के बारे में संदिग्ध हैं। उनकी स्थिति यह है कि करों को लागत के रूप में माना जाता है जब कि कीमतों का निर्धारण किया जाता है चाहे यह "पूर्ण लागत-कीमत के नियतन" सम्बन्धी नियम का भाग हो जहां शुद्ध रूप में कर के आधार पर प्रभेद

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पारम्परिक रूप से वर्धित दर लागू की गई हो, अथवा जहां प्रतिफल के दर के सम्बन्ध में शुद्ध कर के उद्देश्य को पूरा करने हेतु कीमत का नियतन किया गया हो । इन सूत्रों के अनुसार कर की दर में परिवर्तन के परिणामस्वरूप कीमत में सामजस्य स्थापित करता है । यदि अपीलार्थी यह देखें कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन अधिभार का उद्ग्रहण औषधियों और भेषजों की वर्तमान कीमत संरचना के भीतर वहन नहीं किया जा सकता तो उनको नियन्त्रण आदेश के पैरा 15 के अधीन विनिर्मितियों की फुटकर कीमत के पुनरीक्षण के लिए केन्द्रीय सरकार को आवेदन करने का अधिकार है ।

83. अपीलार्थियों के विद्वान् काउन्सेल द्वारा पेश की गई यह एक अचम्भे से युक्त प्रस्थापना थी कि न्यायालय ने कोदार वाले मामले[1] में गलत निर्णय दिया था जहां कि उसने आर्थिक वरिष्ठता के आधार पर व्यवहारियों के कतिपय वर्ग पर अतिरिक्त विक्रय कर के भार को न्यायोचित ठहराया था । न्यायालय ने स्टूवर्ट ड्राई गुड्स कम्पनी बनाम लूइस[2] वाले मामले में न्या० कारडाजो की विसम्मत राय का अवलम्ब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि व्यवहारियों के कतिपय वर्ग पर विक्रयों की मात्रा के साथ वर्धनशील दरों पर सकल विक्रय कर संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लघंन नहीं करता है । यह दलील कि संदाय करने की सामर्थ्य अधिनियम की धारा की उपधारा (3) की विधिमान्यता को कायम रखने के लिए सुसंगत कसौटी नहीं है स्वीकार नहीं की जा सकती । कम से कम यह कहा जा सकता है कि इस दलील का कोई आधार नहीं है यह बात इस निर्णय की परिधि से बाहर है कि सार्वजनिक विधि की जटिलता पर विचार किया जाए अर्थात् उसके उद्देश्यों तथा कार्यों की कसौटियां, अन्तरण की समस्याएं आदि पर विचार किया जाए । हमारे लिए यह भी आवश्यक नहीं है कि हम तथाकथित लाभ सम्बन्धी सिद्धांत पर विचार-विमर्श करें अथवा संदाय करने हेतु आनुकल्पिक योग्यता के दृष्टिकोण पर चर्चा करें । सम्भाव्य रूप से अब इस विषय में व्यापक करार विद्यमान है कि ऐसी कर जो "बदत्तर की अपेक्षा बेहत्तर है" पर निर्भर करते हैं और आनुपातिक न हो कर क्रमिक हैं उन्हें अधिमान दिया जाना चाहिए । "संदाय करने सम्बन्धी योग्यता" के सिद्धांत से यह विवक्षित है कि जनता के साथ समतापूर्वक योग्यता सहित समान रूप से व्यवहार किया जाए, चाहे यह कितना ही संकुचित क्यों न हो तथा साथ

[1] [1974] 2 उम० नि० प० 1157=[1975] 1 एस० सी० आर० 121.

[2] (1935) 294 यू० एस० 550.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो क्रमिक दर संरचना को विचारगत किया जाए। "संदाय करने सम्बन्धी योग्यता" का सिद्धांत समतावर्ती सामाजिक प्रणाली से प्रबल रूप से मेरल खाता है; ये दोनों अध्युपाय धन और आय की समानता में कम करने के खाता कल्पित हैं।

84. आर्थिक विनियमों तथा सम्बन्धित विषयों के प्रश्नों पर न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह विधायी निर्णय न दे। जब कर सम्बन्धी शक्ति विद्यमान हो तो भार का विस्तार एक ऐसा विषय है जिस पर विधि निर्माताओं द्वारा विवेकपूर्ण रूप से विचार किया जाना होगा। न्यायालय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह कर के औचित्य अथवा उसके न्यायोचित होने पर विचार करे या विधायी नीति के क्षेत्र में प्रवेश करे। यदि कर सम्बन्धी विधान का सुव्यक्त आशय तथा सामान्य प्रवर्तन भार को उचित तथा सुनिश्चित गणना का कोटि-पर्यन्त समायोजित करना है, तो सांविधानिक अध्यपेक्षा पूरी हो जाएगी। अनुच्छेद 14 का समता खण्ड राज्य से उस शक्ति को ग्रहण नहीं कर लेता है जिसके आधार पर कि वह व्यक्तियों के किसी ऐसे वर्ग का वर्गीकरण करता है जिसे अधिक कर सम्बन्धी भार का वहन करना हो। किंचित युक्तियुक्त साधार धारण करने वाला वर्गीकरण मात्र इस कारण उस खण्ड का विरोध नहीं करता कि वह गणितीय शुद्धता से निर्मित किया गया है अथवा इस कारण कि व्यवहारिक रूप से उसके परिणामस्वरूप कतिपय असमानताएं उत्पन्न होती हैं।

85. कोदार वाले मामले में, संदाय करने के सामर्थ्य पर इसी प्रकार के उद्ग्रहण की संवैधानिक विधिमान्यता को कायम रखा गया था। उसमें निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया :—

> "कोई बड़ा व्यापारी अपने कारबार की अधिक मात्रा के कारण आर्थिक वरिष्ठता की स्थिति धारण किए होता है और उसके कर को आत्यंतिक तथा सापेक्षिक रूप से अधिक बनाना मनमाना विभेद नहीं है, अपितु संदत्त करने की क्षमता को अनुपातयुक्त बनाने का और इस प्रकार अन्त में अधिक यथार्थपूर्ण समानता पर पहुंचने का एक प्रयास है।"

किसी कर के आर्थिक पहलू का विनिश्चय अनन्य रूप से विधानमण्डल के क्षेत्र के अंतर्गत आता है। न्यायालय के विचार करने के लिए केवल प्रश्न यह है कि क्या विधानमण्डल का यह विश्वास युक्तिसंगत है कि यदि कुल मिलाकर विचार किया जाए तो प्राप्तियों की वृद्धि के साथ-साथ कर संदत्त करने की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्षमता भी बढ़ती है। कोदार[1] वाले मामले में न्यायालय द्वारा अपनाया गया विचार समानतावादी राज्य में सामाजिक न्याय के अनुकूल है और अतः संविधान के अनुच्छेद 14 पर आधारित दलील असफल होनी चाहिए।

86. यह दलील विद्यमान नहीं रह सकती कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन गारंटीकृत व्यापार की स्वतंत्रता पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन लगाती है, इस आधार पर है कि विक्रय कर के अनिवार्यतः अप्रत्यक्ष कर होने के कारण, विधानमण्डल इस बात के लिए सक्षम नहीं कि वह व्यवहारी को अधिभार की रकम संग्रह करने से प्रतिषिद्ध करने वाला उपबन्ध करे और अतः वस्तुतः इसका विक्रय—कर के रूप में प्रकट स्वरूप विद्यमान नहीं रहता अपितु अपनी सही प्रकृति और स्वरूप में यह आय पर कर है मात्र इस कारण से कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन निर्धारित वर्ग के अन्तर्गत किसी व्यवहारी को उसके वसूल किए गए अधिभार को संग्रहण से रोका गया है, राज्य विधानमण्डल के उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) जैसे उपबन्ध बनाने की सक्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, न ही यह उसकी आय पर कर बन जाता है। निस्संदेह यह सत्य है कि विक्रय कर स्वीकृत धारणा के अनुसार, क्रेता को संक्रान्त किए जाने के लिए आशयित है, और विक्रेता द्वारा क्रेता से विक्रय कर संग्रहण को प्राधिकृत और विनियमित करने वाले उपबन्ध विक्रय विधान की सामान्य विशेषता हैं। किन्तु विक्रय कर का यह अनिवार्य लक्षण नहीं है कि विक्रेता को इसे संक्रान्त करने का अधिकार अवश्य मिलना चाहिए; न ही विधानमण्डल को यह शक्ति प्राप्त है कि वह क्रेताओं से कर संग्रह करने हेतु विक्रेताओं के लिए उपबन्ध करके विक्रयों पर सशर्त कर अधिरोपित करे। विक्रय-कर अधिरोपित करने वाली कोई विधि अधिनियमित की जानी चाहिए या नहीं, या विक्रय-कर का अधिरोपित किया जाना विधिमान्य है या नहीं, जबकि विक्रेता इस स्थिति में नहीं है कि वह इसका उपभोक्ता को संक्रमण करे, यह एक नीति का मामला है और विधानमण्डल की समक्षता पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता : देखिए : **दि टाटा-आयरण एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य**[2], **मैसर्स जे० के० जूट मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और**

---

[1] (1974) 2 उम० नि० प० 1157=[1975] 1 एस० सी० आर० 121.

[2] (1958) एस० सी० आर० 1355

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक अन्य[1]; एस० कोदार बनाम केरल राज्य[2] । अतः अनुच्छेद 19 (1) (छ) पर आधारित दलील को कायम नहीं रखा जा सकता ।

87. बॉर ने इस प्रश्न पर काफी विचार किया है कि क्या राष्ट्रपति की अनुमति न्यायोचित है । यह दलील दी गई कि चूंकि न केवल उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) जिसमें ऐसे व्यवहारियों पर जिनका एक वर्ष में सकल व्यापारावर्त पांच लाख रुपए है, अधिभार के उद्ग्रहण का उपबन्ध है, बल्कि, उसकी उपधारा (3) भी, जिसमें इस बात का निषेध है कि कोई ऐसा व्यवहारी उससे ली गई अधिभार की रकम को वसूल करने का हकदार नहीं होगा, दोनों (उपधाराओं) सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 से सम्बन्धित हैं, अतः राज्यपाल के लिए विधेयक को अनुच्छेद 200 के अधीन राष्ट्रपति के पास उनकी अनुमति के लिए निर्दिष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं थी । यह कुछ अजीब सा लगता है कि संविधान के लागू होने के 30 वर्ष बीत जाने के बाद यह तर्क पहली बार पेश किया गया है । इस तर्क के लिए तात्कालिक प्रकोपन **टेह चेंग पो उर्फ चार मेह** बनाम **पब्लिक प्रासिक्यूटर, मलेशिया**[3] वाले मामले में न्यायिक समिति का निर्णय देते हुए लार्ड डिप्लॉक की इस इतरोक्ति पर आधारित है कि "न्यायालय उस दशा में अशक्त नहीं है जब इंटर्नल सिक्योरिटी ऐक्ट की धारा 47 (2) के अधीन मलेशिया के शासक द्वारा जानकारी की गई आपात की उद्घोषणा के प्रतिसंहरण की शक्ति का प्रयोग न हो ।" प्रिवी काउन्सिल का अंतिम विनिश्चय यह था कि चूंकि उक्त अधिनियम की धारा 47 (2) के फलस्वरूप सुरक्षा क्षेत्र उद्घोषणा तब तक विधिपूर्ण बनी रही जब तक इसका संसद् के दोनों सदनों और शासक द्वारा प्रतिसंहरण नहीं कर दिया गया, इसे व्यपगत नहीं माना जा सकता क्योंकि वे शर्तें, जिस पर शासक ने उद्घोषणा करने के लिए अपने स्वविवेक का प्रयोग किया था, अब विद्यमान नहीं थी । ऐसा होने पर **टेह चेंग पो**[3] वाले मामले का विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए नजीर नहीं कि राष्ट्रपति की अनुमति न्यायोचित है, न ही इसका यह अर्थ हो सकता है कि न्यायालय ऐसे कारणों की जांच कर सकता है कि राज्यपाल ने विधेयक को अनुच्छेद 200 के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति के लिए क्यों आरक्षित रखा था, न ही यह बात कि क्या राष्ट्रपति ने इस प्रश्न पर विचार किया

[1] (1962) 2 एस० सी० आर० 1.
[2] (1974) 2 उम० नि० प० 1157=[1975] 1 एस० सी० आर० 121.
[3] एल० आर० (1980) ए०सी० 458.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि क्या उसके विचार के लिए आरक्षित विधेयक और अनुच्छेद 254 (2) के अधीन उल्लिखित उसकी अनुमति के बीच कोई विरोध था।

88. राज्यपाल की सांविधानिक स्थिति को स्पष्ट रूप में परिभाषित किया गया है। अनुच्छेद 168 के अधीन राज्यपाल को राज्य विधानमण्डल का संघटक भाग बनाया गया है क्योंकि राज्य विधानमण्ल द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाता है। उस अनुच्छेद के अधीन राज्यपाल तीन प्रक्रियाओं में से एक प्रक्रिया अपना सकता है, अर्थात् (1) वह उस पर अपनी अनुमति दे सकता है। ऐसी दशा में विधेयक विधि बन जाता है, या (2) वह, "धन सम्बन्धी विधेयक" को छोड़कर उस पर अपनी अनुमति रोक सकता है। ऐसी दशा में विधेयक तब असफल हो जाएगा जब प्रथम परन्तुक में दी गई प्रक्रिया का अनुसरण न किया जाए, अर्थात् जब उस विधेयक का संदेश सहित विचार करने के लिए विधानमण्डल को लौटा न दिया जाए, या (3) वह "मंत्रिपरिषद की सलाह पर" विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रख सकता है। ऐसी दशा में राष्ट्रपति अनुच्छेद 201 में अधिकथित प्रक्रिया अपनाएगा। अनुच्छेद 200 का प्रथम परन्तुक ऐसी स्थिति से निपटने के लिए है जहां राज्यपाल अपनी अनुमति देने के लिए बाध्य है और विधेयक पर पुन: विचार किया जाता है और उसे विधानमण्डल द्वारा पारित किया जाता है। उस अनुच्छेद के द्वितीय परन्तुक में राष्ट्रपति को विचार करने के लिए आरक्षण को आबद्धकर बनाया गया है जहां विधेयक, यदि वह विधि बन जाए तो उच्च न्यायालय की शक्तियों का अल्पीकरण करता है। अनुच्छेद 201 के अधीन जब राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करता है तो राष्ट्रपति दो प्रक्रियाएं अपना सकता है अर्थात् (1) वह उस पर अपनी अनुमति दे सकता है। ऐसी दशा में विधेयक विधि बन जाता है; या (2) वह, "धन सम्बन्धी विधेयक" से अन्यथा राज्यपाल को विधेयक के यथास्थिति राज्य विधानमण्डल के सदन या सदनों को ऐसे संदेश सहित, जैसा कि अनुच्छेद 200 के प्रथम परन्तुक में उल्लिखित है, लौटाने के लिए निदेश दे सकता है। जब किसी विधेयक को राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार आरक्षित रखा जाता है तो सदन या सदनों में तदनुसार उस पर ऐसे संदेश की प्राप्ति की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर पुन: विचार किया जाएगा। और यदि उसे किसी संशोधन सहित या उसके बिना सदन या सदनों द्वारा फिर से पारित कर दिया जाता है तो उसे राष्ट्रपति के पास विचार करने के लिए फिर से प्रस्तुत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया जाएगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित कोई विधेयक विधि बन सकता है यदि राज्यपाल उसे अपनी अनुमति दे दे या यदि राज्यपाल द्वारा उसके राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किए जाने पर, इस प्रकार राष्ट्रपति अनुमति दे दें।

89. संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि कोई विधेयक जिस पर राष्ट्रपति ने अपनी अनुमति दे दी है, अधिनियम के रूप में यदि संविधान के अधीन उसके राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखे जाने सहित कोई आबद्धकर आवश्यकता न होने पर अप्रभावी होगा। संविधान के अनुच्छेद 254(2) या अनुच्छेद 304(ख) को आकृष्ट करने वाला कोई विधेयक जब उसे राष्ट्रपति की पूर्व मजूरी के बिना उसी राज्य के विधानमण्डल में पुरःस्थापित या प्रस्तावित किया जाता है या जो संविधान के अनुच्छेद 31 के खण्ड(3) की ओर प्रवर्तन में रहते हुए आकृष्ट है या किसी ऐसे विधेयक के लिए, जो अनुच्छेद 200 के द्वितीय परन्तुक के अन्तर्गत आता है, आवश्यक रूप से राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा जाना चाहिए। राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित कोई ऐसा विधेयक हो सकता है, जिसमें संविधान के किन्हीं उपबन्धों के लागू होने के बारे में असली संदेह हो सकते हैं, जिनके लिए उसे अधिनियम के रूप में प्रभावी बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता हो। ऐसी दशा में यह बात राज्यपाल के देखने की है कि वह अपने स्वविवेक का प्रयोग करे और यह विनिश्चय करे कि क्या उसे विधेयक पर अपनी अनुमति देनी है या इसे भविष्य में होने वाली किसी उलझन से बचने के लिए राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा जाना है। यदि अंत में यह पता भी चल जाए कि राज्यपाल के लिए विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखने की आवश्यकता नहीं थी तो भी उसके द्वारा ऐसा किए जाने पर और राष्ट्रपति की अनुमति अभिप्राप्त कर लेने पर इस प्रकार से पारित अधिनियम उचित अनुमति के अभाव के आधार पर असांविधानिक नहीं होगा। विद्यमान विधि के अनुसार मामले के इस पहलू पर न्यायालय संवीक्षा नहीं कर सकते चाहे राष्ट्रपति की अनुमति के अभाव में अधिनियम संविधान के कतिपय अन्य उपबन्धों के कारण, जिनमें कतिपय क्षेत्रों में अधिनियम को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रपति की अनुमति पर बल दिया गया है, अप्रभावी हो सकता है। वर्तमान मामले में वह वित्त विधेयक जो अन्ततः प्रश्नगत अधिनियम बना, वह भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित एक समेकन अधिनियम था और राज्यपाल ने यह महसूस किया कि इसे राष्ट्रपति की अनुमति के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए आरक्षित रखना आवश्यक था। हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं कि राष्ट्रपति की अनुमति न्याय नहीं है और हम उसकी ऐसी अनुमति देने के विनिश्चय से उत्पन्न किसी अवगुण सम्बन्धी अर्थ नहीं निकाल सकते।

90. यह दलील, कि अधिभार उद्गृहीत करने के प्रयोजन के लिए सकल आवर्त की संगणना करने की रीति; अन्तरराज्यिक और राज्य से बाहर व्यापार तथा भारत से बाहर निर्यात के अनुक्रम में विक्रयों को हिसाब में लेना अननुज्ञात है, फिर भी बनी रहती है। इस बात पर जोर दिया गया है कि अधिनियम की धारा 7 में अध्यारोही खण्ड इन संव्यवहारों को अधिनियम के क्षेत्र से बाहर ले जाता है जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यवहारी से न तो इसके अधीन करके दायित्वाधीन उसके आवर्त की गणनाओं में उनको सम्मिलित करने की अपेक्षा है और न ही वह इसका हकदार है। यह कहा गया है कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) राज्य विधानमण्डल की अधिकारातीत है क्योंकि भार उद्गृहीत करने के प्रयोजन के लिए ऐसे अधिभार का संदाय करने का किसी व्यवहारी का दायित्व उक्त अधिनियम की धारा 2(ञ) में यथापरिभाषित उसके सकल आवर्त पर निर्भर करता है। इस दलील के समर्थन में ए० वी० फर्नाडीज बनाम केरल राज्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के निम्नलिखित उद्धरण का अवलम्ब लिया गया :—

> "एक ओर कर की छूटों या कर के प्रतिदाय अथवा रिबेट के विषय में कानून में और दूसरी ओर कर की अदेयता अथवा कर अधिरोपित न किए जाने के विषय में अंतर्विष्ट उपबन्धों के बीच व्यापक रूप से भेद है। पूर्ववर्ती मामले में, कर की छूटों या प्रतिदाय या रिबेट जैसे उपबन्धों के न होने से विक्रयों और क्रयों को व्यवहारी के सकल आवर्त में सम्मिलित कर लिया गया होता क्योंकि वे प्रथमदृष्टया करके दायित्वाधीन हैं और केवल एक बात जिसकी बाबत व्यवहारी हकदार हैं वह है शुद्ध आवर्त पर पहुंचने के उद्देश्य से सरल आवर्त से कटौती जिस पर कर अधिरोपित किया जा सकता है। पश्चात्वर्ती मामले में, विक्रय और क्रय कराधान से पूर्णतः छूट प्राप्त है। विधानमण्डल उस पर कोई कर अधिरोपित करने वाली या कर अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत करने वाली कोई विधि

[1] (1957) एस० सी० आर० 837.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिनियमित नहीं कर सकता और वे कर के ऐसे अधिरोपित किए जाने के दायित्वाधीन नहीं हैं। इस प्रकार यदि वे कर के दायित्वाधीन नहीं हैं तो उन पर कोई कर उद्गृहीत या अधिरोपित नहीं किया जा सकता और वे उक्त अधिनियम के क्षेत्र के भीतर बिल्कुल नहीं आते। उनके कर की अदेयता वाला तथ्य ही उन्हें सकल आवर्त और शुद्ध आवर्त की संगणना करने से निकालने के लिए पर्याप्त है जिस पर कर उद्गृहीत या अधिरोपित किया जा सकता है। यदि इस सुभेद को ध्यान में रखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि उक्त अधिनियम की धारा 26 कर के इन संव्यवहारों की अदेयता के विषय में उपबन्ध अधिनियमित करती है और अतः इन संव्यवहारों को उक्त अधिनियम के क्षेत्र से बाहर निकाला गया था। अतः हमारी राय में उक्त अधिनियम की धारा 26 में अंतर्विष्ट अध्यारोही उपबन्ध का प्रभाव इस संव्यवहारों को उक्त अधिनियम के क्षेत्र से बाहर निकालने का है जिसके परिणामस्वरूप न तो व्यवहारी से उसके अधीन कर के दायित्वाधीन उसके आवत की गणना में उनको सम्मिलित करने की अपेक्षा है, न ही वह हकदार है।"

यह दलील फर्नांडीज वाले मामले[1] में अधिकथित सिद्धांतों की गलतफहमी पर आधारित प्रतीत होती है।

91. फर्नांडीज वाले मामले[1] से निकलने वाले अनुपात को समझने के लिए, कुछ तथ्यों का कथन करना आवश्यक है। निर्धारिती का कारबार गरी खरीदना और उससे गरी का तेल और टिकिया बनाने का तथा तेल और टिकिया का राज्य के भीतर की पार्टियों को विक्रय करने और तेल को राज्य के बाहर की पार्टियों को विक्रय करने का था। 1951 में, ट्रावनकोर-कोचीन जनरल सेल्स-टैक्स, 1125 का, उसमें धारा 26 को जोड़कर, संशोधन किया गया। जिसमें संविधान के अनुच्छेद 286 का वर्जन अन्तर्विष्ट किया गया और जो अधिनियम की धारा 7 के तात्त्विक रूप से अनुकूल था। 1951-52 वर्ष के लिए, विक्रय कर अधिकारी ने निर्धारिती का, उसके द्वारा क्रय की गई संपूर्ण गरी के मूल्य को लेकर, उसमें राज्य के अन्दर बेचे गए तेल और टिकिया का अपना-अपना मूल्य जोड़कर और उसमें से केवल राज्य के अन्दर बेचे गए तेल से संबन्धित गरी के मूल्य को घटाकर शुद्ध निर्धारणीय आवर्त पर विक्रय-कर का निर्धारण किया। निर्धारिती ने यह दलील दी कि शुद्ध आवर्त की गणना करने में वह राज्य के अन्दर और बाहर, उसके द्वारा

---

[1] (1957) एस० सी० आर० 837.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बेचे गए तेल का कुल मूल्य सम्मिलित करने और उसमें से उसके द्वारा क्रय किए गए गरी के कुल मूल्य को घटाने का, हकदार था और इसके अतिरिक्त उक्त अधिनियम की धारा 26 के अध्यारोही उपबन्ध के अधीन वह राज्य से बाहर बेचे गए तेल के मूल्य को घटाने का हकदार था। पक्षकारों के बीच मुख्य संविवाद सही आवर्त की प्रतियोगिता के प्रति केन्द्रित था। निर्धारिती द्वारा जो दलील पेश की गई थी उसे उच्च न्यायालय ने नामंजूर कर दिया था और कटौती को गरी के क्रय पर्यन्त सीमित रखा था जो कि राज्य के अन्तर्गत विक्रयों से सम्बन्धित हों। इस विनिश्चय की पुष्टि करते समय इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जहां तक राज्य के बाहर गरी कि विक्रयों का सम्बन्ध है वे मानो कि अधिनियम की धारा 25 द्वारा अनुच्छेद 286 के साथ परिशीलन करते हुए अधिनियम की परिधि से बाहर रख दिया गया था और यह कि उनका प्रवर्तन अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के सम्बन्ध में उन्हें निराकृत करने तथा विनष्ट कर देना था जहां तक उनका सम्बन्ध ऐसे माल के विक्रय अथवा क्रय पर कर के अधिरोपण से सम्बन्धित था और विशेष रूप से भारण धारा 3 में अन्तर्विष्ट उपबन्ध को निरस्त कर दिया गया था और नियम 20 (2) में अन्तर्विष्ट उपबन्धों को तथा ऐसे अन्य उपबन्धों को जो कि ऐसे कर को उद्गृहीत करने की प्रक्रिया के आनुषंगिक थे उन्हें समाप्त कर दिया गया था। पूर्व वर्णित संदर्भ, जिसका अवलम्ब लिया गया है उसका पठन संदर्भ में विहीन रहते हुए नहीं किया जाना चाहिए जिसमें कि वह विद्यमान है और यदि ऐसा परिशीलन किया जाता है तो इससे अपीलार्थियों को तनिक भी सहायता नहीं मिलती।

92. **फर्नांडीज**[1] वाले मामले के उपान्तिम पैरा में, न्यायालय ने यह अधिकथित करने के पश्चात् कि उक्त अधिनियम की धारा 26 में अध्यारोही खण्ड का प्रभाव अन्तरराज्यिक विक्रयों और बाह्यय विक्रयों को उक्त अधिनियम के क्षेत्र के बाहर ले जाना था जिसके परिणामस्वरूप व्यवहारी से न तो उसके अधीन कर के दायित्वाधीन उसके आवंत की गणना करने में उन्हें सम्मिलित करने की अपेक्षा थी, न ही वह इसका हकदार था, निम्नलिखित मत व्यक्त किया :—

> "इस स्थिति पर उक्त अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकरण और व्यवहारियों द्वारा विक्रय-कर की विवरणियों के प्रस्तुत करने के

---

[1] [1957] एस० सी० आर० 837.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषय में उपबन्धों द्वारा कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विधानमण्डल, संविधान के अनुच्छेद 286 के उपबन्धों के आधार पर विक्रय-कर अधिरोपित किए जाने के मामले में अपनी निर्योग्यता के होते हुए भी, किसी व्यवहारी के रजिस्ट्रीकरण और विक्रय-कर की विवरणियों के प्रस्तुत करने के प्रयोजनों के लिए इन संव्यवहारों को व्यवहारी के आवंत में सम्मिलित कर सकता है। तथापि उपर्युक्त प्रयोजनों के लिए ऐसे सम्मिलित किए जाने से संविधान के अनुच्छेद 286 के उपबन्धों और उपरोक्त रूप में उक्त अधिनियम में अधिनियमित तत्स्थानी उपबन्ध के अधार पर विक्रय-कर के उद्ग्रहण या अधिरोपण के इन संव्यवहारों की अदेयता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

93. अतः फर्नाडीज[1] वाले मामले का विनिश्चय स्पष्ट रूप से इस प्रतिपादना के लिए एक नजीर है कि राज्य विधानमण्डल, संविधान के अनुच्छेद 286 में किसी बात के होते हुए, सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन कोई विधि बनाते समय, किसी व्यवहारी के रजिस्ट्रीकरण और विक्रय-कर की विवरणियों को प्रस्तुत करने के प्रयोजनों के लिए संविधान के अनुच्छेद 286 के अन्तर्गत आने वाले संव्यवहारों को सम्मिलित कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1), जिसमें ऐसे व्यवहारियों के वर्गीकरण का उपबन्ध है जिनका सकल आवंत एक वर्ष में उसके द्वारा संदेय कर के अतिरिक्त अधिभार के उद्ग्रहण के प्रयोजन के लिए 5 लाख रुपए से अधिक है, सांविधानिक रूप से अविधिमान्य नहीं है। यह दलील कि 5 लाख रुपए के सकल आवंत की संगणना करने के लिए अन्तरराज्यिक विक्रयों और बाह्यय विक्रयों को लेखे में लेने से उक्त अधिनियम अधिकारातीत हो जाएगा, चलने योग्य नहीं है। जब तक अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य, बाह्यय विक्रयों के अनुक्रम में विक्रयों पर भारत के राज्यक्षेत्र में आयात और उससे निर्यात के अनुक्रम में विक्रयों पर कर नहीं लगता, तब तक राज्य विधानमण्डल को, सातवीं अनुसूची कि सूची 2 प्रविष्टि 54 के अधीन अधिभार का उद्ग्रहण करने के लिए विधि बनाते समय कोई बात राज्य के भीतर किसी व्यवहारी के कुल आवर्त को लेखे में लेने से और यह उपबन्ध करने से, जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) द्वारा किया गया है, रोक नहीं सकती की यदि ऐसे किसी व्यवहारी का सकल आवर्त किसी एक वर्ष में

[1] [1957] एस० सी० आर० 837.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

5 लाख रुपए से अधिक है तो वह कर के अतिरिक्त, अधिभार का भी कर के 10 प्रतिशत से अनधिक ऐसी दर पर संदाय करेगा जैसा उपबन्धित किया जाए। ऐसे व्यक्ति जिनसे प्रभार की मांग की गई है और उनसे कर पाने वाले राज्य के बीच पर्याप्त क्षेत्रीय सम्बन्ध है। क्षेत्रीय संबंध की पर्याप्तता में दो तत्वों पर विचार करना अन्तर्वलित है, अर्थात्:—(क) सम्बन्ध वास्तविक होना चाहिए न कि भ्रामक और (ख) अधिरोपित किया जाने वाला दायित्व उस क्षेत्रीय सम्बन्ध के असंगत हो: मुम्बई राज्य बनाम आर० एम० डी० चमरबागवाला[1], दि टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य[2] और इंटरनेशनल टूरिस्ट कार्पोरेशन और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य[3]। किसी व्यवहारी के सकल आवर्त को अधिभार का संदाय करने के दायित्वाधीन व्यवहारियों के वर्ग को पहचानने के प्रयोजन के लिए उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) में लेखे में सकल आवर्त को न लेकर उनके द्वारा संदेय कर पर लिया जाता है।

94. इन कारणों से, इन अपीलों और इससे संबंद्ध रिट पिटिशनों और विशेष इजाजत लेकर किए गए पिटीशनों को खर्चों का आदेश दिए बिना खारिज किया जाता है।

अपीलें खारिज की गईं।

श्री०/घई/भू०

———

[1] [1957] एस० सी० आर० 874.

[2] [1958] एस० सी० आर० 1355.

[3] [1981] 4 उम० नि० प० 891=[1981] 2 एस० सी० आर० 364.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(श्रीमती) दीपो

बनाम

वास्सन सिंह और अन्य

(Shrimati Dipo

v.

Wassan Singh and Others)

(5 मई, 1983)

(न्यायाधिपति डॉ० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30)—धारा 8—निर्वसीयत उत्तराधिकार का सामान्य नियम—अनुसूची—वर्ग 2—11(4)—यदि किसी अविभक्त कुटुम्ब में ऐसा कोई उत्तरजीवी सदस्य (वंशज या अन्यथा) न हो, जो उत्तरजीविता द्वारा सम्पत्ति प्राप्त कर सकता हो, तो पूर्वजों द्वारा विरासत में प्राप्त की गई सम्पत्ति मृत स्वत्वधारी (प्रापोजिट्स) की पुरुष संतान की दशा में "पैतृक सम्पत्ति" है, किन्तु अन्य नातेदारों के सम्बन्ध में यह उसकी पैतृक सम्पत्ति न होकर, आत्यंतिक सम्पत्ति है।

परिसीमा अधिनियम, 1965(1965 का 36)—द्वितीय अपील के ज्ञापन के साथ विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रति फाइल की जाना—परिसीमा काल की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् डिक्री की प्रति फाइल की जाना—विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रति परिसीमा काल के पर्यवसान के पश्चात् प्रस्तुत की जाना—यह तकनीकी त्रुटि है और इसे फाइल करने में हुए विलम्ब को माफ किया जा सकता है।

वादी इस अपील में अपीलार्थी है। अपीलार्थी ने उन सम्पत्तियों का कब्जा लेने के लिए वाद चलाया है जो उसके भाई बुआ सिंह की थीं, जिसकी मृत्यु 1952 में हो गई थी। अधिकांश वादगत सम्पत्तियां पैतृक सम्पत्तियां थीं जो बुआ सिंह के कब्जे में थीं जबकि उनमें से कुछ सम्पत्तियां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पैतृक नहीं थीं। इस आधार पर कार्यवाही की गई कि रूढ़ि के अनुसार बहन पैतृक सम्पत्ति की दशा में सांपार्श्विकों द्वारा अपवर्जित की गयी थी, जबकि वह गैर पैतृक सम्पत्ति पर उत्तरवर्ती होने की हकदार थी; इसलिए अधीनस्थ न्यायाधीश ने "प्लेंट ऑफ शेड्यूल लैण्ड्स" के 2959/34836 अंशों के लिए तथा "प्लेंट के शेड्यूल" में विहित भूमि का 13/80 अंश के लिए वादी के पक्ष में डिक्री दे दी। वादी ने जिला न्यायाधीश, अमृतसर के समक्ष अपील फाइल की। वह अपील अकिंचन रूप में फाइल की जानी तात्पर्यित थी। वह इस आधार पर खारिज कर दी गई कि वादी ने स्वयं अपील फाइल नहीं की, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 33, नियम 3 में अपेक्षित है। प्रतिवादियों ने भी अपील फाइल की, किन्तु वह भी खारिज कर दी गई। वादी ने पंजाब हरियाणा उच्च न्यायालय में दूसरी अपील फाइल की। द्वितीय अपील काल-वर्जित होने के कारण खारिज कर दी गई। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—उच्च न्यायालय ने परिसीमा के आधार पर द्वितीय अपील खारिज करके न्यायोचित कार्य किया था। वह त्रुटि तकनीकी थी, क्योंकि द्वितीय अपील समय पर प्रस्तुत की गई थी। विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रतिलिपि मात्र ही परिसीमा-काल के अवसान के पश्चात् फाइल की गई थी। विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रतिलिपि को फाइल करने में हुआ विलम्ब माफ किया जाना चाहिए और द्वितीय अपील ग्रहण की जानी चाहिए तथा उसे गुणागुण के आधार पर निपटाया जाना चाहिए। जिला न्यायाधीश ने इस आधार पर अपील खारिज करने में भूल की थी कि अपीलार्थी-वादी ने स्वयं अपील का ज्ञापन पेश नहीं किया था। इससे पूर्व जिला न्यायाधीश द्वारा अपील ग्रहण की गई थी और इस आधार पर उसे इसके पश्चात् खारिज करने का कोई कारण नहीं था कि अपील-ज्ञापन स्वयं पक्षकार ने पेश नहीं किया था। प्रक्रिया संबंधी नियम से न्याय को अग्रसर करना अभिप्रेत है, न कि गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करने में शीघ्रता करना। न्यायालय के पास जिला न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करने के सिवाय कोई और विकल्प नहीं है। गुणागुण के आधार पर, मामले को निपटाने के लिए जिला न्यायाधीश को मामला वापस भेजने की बजाय गुणागुण के आधार पर इस अपील की सुनवाई की गई है। यह निष्कर्ष कि अपीलार्थी बुआ सिंह की बहन है, समरूप निष्कर्ष है और इसे स्वीकार करना होगा। विद्यमान रूढ़ि के अनुसार स्वत्वधारी (प्रोपोजीटस) के कब्जाधीन पैतृक सम्पत्ति के अधिमानी वारिस सांपार्श्विक हैं, न कि बहन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जबकि गैर पैतृक सम्पत्ति के सम्बन्ध में अधिमानी वारिस बहन है, न कि सांपार्श्विक । यह समाधान पूर्णतया नहीं हुआ है कि रूढ़ि समुचित रूप से साबित हो गई है, किन्तु प्रस्तुत मामले के प्रयोजन के लिए न्यायालय इस आधार पर अग्रसर होता है कि रूढ़ि साबित हो गई है । न्यायालय के समक्ष जो समस्या है, उसका प्रयोजन यह नहीं है । निस्संदेह वे सम्पत्तियां जो निचले न्यायालय द्वारा बुआ सिंह के कब्जाधीन पैतृक सम्पत्तियों के रूप में समझी गई हैं, ऐसी सम्पत्तियां हैं जो मूलतः बुआ सिंह के पूर्वजों की थीं । किन्तु बुआ सिंह उस सम्पति का अन्तिम पुरुष धारक था और उसकी कोई पुरुष संतान नहीं थी । अविभक्त कुटुम्ब का ऐसा कोई उत्तरजीवी सदस्य नहीं था, चाहे वंशज हो या अन्यथा, जो उत्तरजीविता द्वारा सम्पत्ति प्राप्त कर सकता । वस्तुतः (पैतृक) पूर्वजों से प्राप्त की गई सम्पत्ति स्वत्वधारी की पुरुष संतान के सम्बन्ध में "पैतृक सम्पत्ति" है, किन्तु अन्य नातेदारों के सम्बन्ध में यह उसकी अत्यंतिक सम्पत्ति होगी न कि पैतृक सम्पत्ति । [पैरा 2]

निचले न्यायालयों द्वारा "पैतृक सम्पत्ति" के रूप में उनके द्वारा विहित सम्पत्ति के विषय में वादी के पक्ष में डिक्री मंजूर करने से इंकार किया जाना गलत था । प्रतिवादी बुआ सिंह के सांपार्श्विक थे और जहां तक उनका संबंध है वह सम्पति "पैतृक सम्पत्ति" नहीं थी और इसलिए वादी अधिमानी वारिस था । वादी सभी वादगत सम्पत्तियों के बारे में डिक्री का हकदार था । अधीनस्थ न्यायाधीश, जिला न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाते हैं और सभी वादगत सम्पत्तियों के लिए वादी के पक्ष में डिक्री प्रदान की जाती है । (पैरा 3)

सिविल अपीली अधिकारिता—1970 की सिविल अपील सं० 1938.

1964 की आर० एस० ए० सं० 1021 में पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 22 सितम्बर, 1969 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री एन० के० अग्रवाल
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री एस० एल० अनेजा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायाधिपति रेड्डी—

अधीनस्थ न्यायाधीश प्रथम वर्ग, अमृतसर, के न्यायालय में 1962 के वाद सं० 8 में श्रीमती दीपो—वादी इस अपील में जो विशेष इजाजत लेकर फाइल की गई है, अपीलार्थी है। उसने उन सम्पत्तियों का कब्जा वापस लेने के लिए वाद चलाया है जो सम्पत्ति उसके भाई बुआ सिंह की थी, जिसकी मृत्यु 1952 में हो गई थी। श्रीमती दीपो बुआ सिंह की निकटतम वारिस है, जैसा कि उसने दावा किया है। यह वाद अकिंचन के रूप में फाइल किया गया था। इस वाद का विरोध उन प्रतिवादियों द्वारा किया गया था जो कि बुआ सिंह के चाचा गंडा सिंह के पुत्र हैं। प्रतिवाद से सम्बन्धित आधार यह था कि श्रीमती दीपो बुआ सिंह की बहन नहीं थी और यह कि भले ही वह उसकी बहन थी फिर भी प्रतिवादी रूढ़ि के अनुसार अधिमानी वारिस थे, क्योंकि सम्पूर्ण भूमि पैतृक-भूमि थी, जो बुआ सिंह के हाथों में थी। विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी श्रीमती दीपो बुआ सिंह की बहन थी। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अधिकांश वादगत सम्पत्तियां पैतृक सम्पत्तियां थी जो बुआ सिंह के कब्जे में थी जब कि उनमें से कुछ (सम्पत्तियां) पैतृक नहीं थीं। इस आधार पर कार्यवाही का किया जाना कि रुढ़ि के अनुसार बहन पैतृक सम्पत्ति की दशा में सांपार्श्विकों द्वारा अपवर्जित की गयी थी, जब कि वह गैर पैतृक सम्पत्ति [नान ऐन्सेस्ट्रल प्रापर्टी] पर उत्तरवर्ती होने के लिए हकदार थी, इसलिए विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने 'प्लेंट आफ शेड्यूल लैण्ड्स' का 2959/34336 अंशों के लिए 'प्लेंट के शेड्यूल' में विहित भूमि का 13/80 अंश के लिए वादी के पक्ष में डिक्री प्रदान की। वादी ने जिला न्यायाधीश, अमृतसर को अपील फाइल की। वह अपील अकिंचन रूप में फाइल की जानी तात्पर्यित थी। वह इस आधार पर खारिज कर दी गई थी कि वादी ने स्वयं अपील फाइल नहीं की, जैसा कि आदेश 33 नियम 3 में अपेक्षित है। प्रतिवादियों ने भी अपील फाइल की किन्तु वह भी खारिज कर दी गई थी। वादी द्वारा पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में दूसरी अपील फाइल की गई थी। द्वितीय अपील काल वर्जित होने के कारण खारिज कर दी गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रति द्वितीय अपील ज्ञापन के साथ नहीं फाइल की गई थी। यद्यपि, द्वितीय अपील का ज्ञापन समय के भीतर फाइल किया गया था तथापि, डिक्री की प्रतिलिपि परिसीमा काल के अवसान के पश्चात् फाइल की गई थी और इसी आधार पर द्वितीय अपील खारिज कर दी गई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

2. हम यह नहीं समझते कि उच्च न्यायालय ने परिसीमा के आधार पर इस द्वितीय अपील को खारिज करके न्यायोचित कार्य किया था। वह त्रुटि तकनीकी थी क्योंकि स्वतः द्वितीय अपील समय पर प्रस्तुत की गई थी। विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रतिलिपि मात्र ही परिसीमा काल के अवसान के पश्चात् फाइल की गई थी। विचारण न्यायालय के निर्णय की प्रतिलिपि के फाइल करने में हुआ विलम्ब माफ किया जाना चाहिए और द्वितीय अपील ग्रहण किया जाना चाहिए तथा गुणवत्ता के आधार पर उसका निपटारा किया जाना चाहिए। हमारा यह समाधान हो गया है कि विद्वान जिला न्यायाधीश ने इस आधार पर अपील खारिज करने में भूल की थी कि अपीलार्थी-वादी ने स्वयं अपील का ज्ञापन पेश नहीं किया था। इसके पूर्व जिला न्यायाधीश द्वारा अपील ग्रहण की गई थी और इस आधार पर उसे इसके पश्चात् खारिज करने का कोई कारण नहीं था कि अपील का ज्ञापन स्वयं पक्षकार द्वारा पेश नहीं किया गया था। प्रक्रिया संबंधी नियम से न्याय अग्रसर करना अभिप्रेत है न कि गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करने में शीघ्रता करना है। हमारे पास जिला न्यायाधीश के तथा उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करने के सिवाय कोई और विकल्प नहीं है। गुणागुण के आधार पर मामला का निपटारा करने के लिए जिला न्यायाधीश को (मामला) वापस भेजने की बजाय स्वयं हमने गुणागुण के आधार पर इस अपील की सुनवाई की है। यह निष्कर्ष कि श्रीमती दीपो बुआ सिंह की बहन है, एक ही समरूप निष्कर्ष है और हम इसे स्वीकार करते हैं। हम इस आधार पर भी अग्रसर होते हैं कि उस क्षेत्र में विद्यमान रुढ़ि के अनुसार स्वत्वधारी (प्रोपोजीटस) के कब्जाधीन पैतृक सम्पत्ति के अधिमानी वारिस सांपार्श्विक हैं बहन नहीं, जब कि गैर पैतृक सम्पत्ति के सम्बन्ध में अधिमानी वारिस बहन है और सांपार्श्विक नहीं हैं। हमें आगे यह कहना है कि हमारा पूर्णतया यह समाधान नहीं हुआ है कि रुढ़ि समुचित रूप से साबित हो गई है किन्तु प्रस्तुत मामले के प्रयोजन के लिए हम इस आधार पर अग्रसर होते हैं कि रुढ़ि साबित हो गई है। किन्तु हमारे समक्ष जो समस्या है उसका प्रयोजन यह नहीं है। निस्संदेह वे सम्पत्तियां जो निचले न्यायालय द्वारा बुआ सिंह के कब्जाधीन पैतृक सम्पत्तियों के रूप में समझी गई हैं, ऐसी सम्पत्तियां हैं जो मूलतः बुआ सिंह के पूर्वजों की थी। किन्तु बुआ सिंह उस सम्पत्ति का अन्तिम पुरुष धारक था और उसकी कोई पुरुष संतान नहीं थी। अविभक्त कुटुम्ब का कोई ऐसा उत्तरजीवी सदस्य नहीं था, चाहे वह वंशज हो या अन्यथा, जो उत्तरजीविता द्वारा सम्पत्ति प्राप्त कर सकता था। वस्तुतः पैतृक पूर्वजों से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राप्त की गई सम्पत्ति स्वत्वधारी के पुरुष संतान के संबंध में "पैतृक सम्पत्ति" है किन्तु अन्य नातेदारों के संबंध में यह उसकी आत्यंतिक सम्पत्ति है, न कि पैतृक सम्पत्ति मुल्लाकृत प्रिन्सीपल्स ऑफ हिन्दू लॉ, के 15वें संस्करण में पृ० 289 में यह उल्लेख किया गया है :—

"………यदि क कोई सम्पत्ति अपने पिता से या पितामह से या पितामह के पिता से विरासत में प्राप्त करता है, भले ही वह सम्पत्ति जंगम हो या स्थावर, तो पुरुष संतान के विषय में यह उसकी (क की) पैतृक सम्पत्ति है। यदि क का उस समय कोई पुत्र या पौत्र या पौत्र का पुत्र नहीं है जिस समत वह सम्पत्ति विरासत से प्राप्त करता है तो वह पूर्ण स्वामी के रूप में वह सम्पत्ति धारण करता है और वह अपनी इच्छा के अनुसार उस सम्पत्ति का उपयोग कर सकता है………अपने तीन निकटवर्ती पैतृक पूर्वजों से सम्पत्ति प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस सम्पत्ति को अपने पुत्रों पौत्रों और प्रपौत्रों सहित सहदायिक रूप में धारण करता है और उसे अवश्य धारण करना चाहिए, किन्तु अन्य नातेदारों के विषय में वह उसे अपनी आत्यंतिक सम्पत्ति के रूप में धारण करता है और धारण करने का हकदार है।"

पुनः, पृष्ठ 291 में यह लिखा गया है :—

"वह अंश जिसे कोई सहदायिक पैतृक सम्पत्ति के विभाजन पर अभिप्राप्त करता है अपने पुरुष संतान के विषय में वह उसकी पैतृक सम्पत्ति है। वे जन्म से उसमें हित प्राप्त करते हैं, चाहे वे विभाजन के समय अस्तित्व में हैं या उसके पश्चात् उनका जन्म होता है। ऐसा अंश केवल उसके पुरुष संतान के विषय में पैतृक सम्पत्ति हैं। जहां तक अन्य नातेदारों का संबंध है, वह पृथक् संपत्ति है और यदि सहदायिक की मृत्यु हो जाती है और उसका कोई पुरुष संतान नहीं होता" तो वह सम्पत्ति उत्तराधिकार द्वारा उसके वारिस को संक्रांत हो जाती है।

3. इसलिए हमारा यह दृष्टिकोण है कि निचले न्यायालयों द्वारा "पैतृक सम्पत्ति" के रूप में उनके द्वारा विहित सम्पत्ति के विषय में वादी के पक्ष में डिक्री मंजूर करने से इंकार किया जाना गलत था। प्रतिवादी बुआ सिंह के सांपार्श्विक थे और जहां तक उनका संबंध है वह सम्पत्ति "पैतृक सम्पत्ति" नहीं थी और इसलिए वादी अधिमानी वारिस था। वादी सभी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वादगत सम्पत्तियों की डिक्री का हकदार था। विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश; जिला न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाते हैं और सभी वादगत सम्पत्तियों के लिए वादी के पक्ष में डिक्री दी जाती है। वादी शुरू से अंत तक प्रतिवादियों से खर्चे प्राप्त करने का भी हकदार है। प्रतिवादी वाद, अपील, द्वितीय अपील और इस न्यायालय में की गई अपील में सरकार को देय न्यायालय फीस का संदाय करेगा।

अपील मंजूर की गई।

अ/भृ०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नेशनल टैक्सटाइल वर्कर्स यूनियन

बनाम

पी० आर० रामकृष्णन और अन्य

(National Textile Workers, Union

v.

P. R. Ramakrishnan and Others)

(तारीख 5 मई, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति
वी० डी० तुलजापुरकर और ए० वरदराजन्)

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971(1971 का 70)—धारा 12—उच्च न्यायालय के चार न्यायमूर्तियों तथा उनके निर्णयों के विरुद्ध अवमानकर्ता द्वारा अपने समाचारपत्रों में अन्धाधुंध, निराधार और विद्वेषपूर्ण कथन किया जाना—इन अभिकथनों का उद्देश्य मात्र यह होना कि न्यायमूर्तियों को उन मामलों में, जिनमें कि प्रत्यर्थी हितबद्ध हैं उनके विरुद्ध प्रतिकूल विनिश्चय देने से प्रवारित किया जाए—उच्चतम न्यायालय के समक्ष लिखित माफीनामा पेश किया जाना, जिसका उद्देश्य संभावित दण्ड से बचना था—तत्पश्चात् दिए गए वचनबंध में उसकी अवहेलना करते हुए अवमानजनक कथनों का किया जाना—तथ्यों के आधार पर अवमानकर्ता का आचरण तथा उसके लेख न्याय-प्रशासन में गम्भीर बाधा डालने वाले हैं—अतः अवमानकर्ता धारा 12 के अधीन अवमान करने का दोषी है।

विशेष इजाजत लेकर किए गए रिट पिटीशन में मद्रास उच्च न्यायालय के कतिपय न्यायमूर्तियों की खण्ड न्यायपीठ के समक्ष बहस चल रही थी। इसी बीच प्रत्यर्थी ने, जोकि दो समाचारपत्रों का संपादन कर रहा था, उनमें न्यायमूर्तियों तथा उनके निर्णयों के विरुद्ध अवमानपूर्वक अभिकथन प्रकाशित किए। तत्पश्चात् जब मामला उच्चतम न्यायालय में आया तो इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर विभिन्न तारीखों को सुनवाई की गई और अन्त में 30 मार्च, 1983 को विस्तारपूर्वक सुनवाई करने के पश्चात् उसे न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 12 का दोषी ठहराया गया और तदनुसार दण्डित किया गया। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधिपतियों ने उसे यह छूट दी कि यदि वह अपने पत्रों में समुचित रूप से क्षमा-याचना कर लेता है और उच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों के विरुद्ध उसने जो लांछन लगाए हैं, उन्हें भली-भांति वापस ले लेता है तो उसकी क्षमा-याचना पर विचार किया जाएगा। इस पर अवमानकर्ता ने यह वचन दिया कि वह क्षमा-याचना शीघ्रातिशीघ्र करेगा और इसलिए उसे दोषमुक्त कर दिया जाए। वस्तुतः अवमानकर्ता ने अपने समाचारपत्रों में क्षमा-याचनाएं प्रकाशित कर दीं। किन्तु ये क्षमा-याचनाएं अत्यन्त खोखली नीकलीं क्योंकि केवल 10 दिन के पश्चात् ही उसने अपने पत्रों में ऐसे विचार व्यक्त किए जो उन क्षमा-याचनाओं को वापस लेने के समतुल्य थे और वस्तुतः उसने अपने अवमान संबंधी अपराध को और भी गम्भीर बना लिया। उसने तो यहां तक कहा कि उसने क्षमा-याचना के प्रश्न पर पुनः विचार किया है और मैं यह उचित समझता हूँ कि मेरा अन्तःकरण इस बात की इजाजत नहीं देता है कि मैं माफीनामा कायम रखूं और मैं यह बेहतर समझूंगा कि चाहे मुझे लेने जाना पड़े, मैं अपने आरोपों को वापस नहीं लूंगा। अवमानकर्ता ने अपनी बहस के दौरान यह भी कहा कि मैं इस मामले में एकाकी नहीं हूं बल्कि मेरे साथ अनेक वकील तथा अन्य मुकदमा लड़ने वाले व्यक्ति भी हैं जोकि भ्रष्टाचार के शिकार हैं और न्यायमूर्तियों को क्षमा प्रस्तुत करना उचित नहीं है। यद्यपि कुछ लोगों का यह विचार था कि अवमानकर्ता किंचित् असामाजिक तत्वों के कहने पर यह सब कुछ कर रहा है, न्यायालय को यह कोई परिशमनकारी परिस्थिति प्रतीत नहीं होती है उसने यह भी कथन किया कि उच्चतम न्यायालय के न्यायधिपति भला अपने ही बन्धुओं को, भले ही वे उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति क्यों न हों, सदोष कदापि नहीं ठहरायेंगे और यदि सी० बी० आई० जांच कराई जाय तो हो सकता है कि मुझे न्याय मिल पाए और मुझे दोषमुक्त कर दिया जाए। उच्चतम न्यायालय द्वारा अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 12 के अधीन सिद्धदोष करते हुए और उसे दण्ड तथा जुर्माना संदत्त करने का आदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित—इस अवमानकर्ता ने 30 मार्च को इस न्यायालय में जो क्षमा-याचना की थी, वह अपने आपराधिक आचरण के लिए दण्ड से बचने की उसकी एकमात्र चाल थी। उसे मद्रास उच्च न्यायालय के चारों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायधीशों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के मनमाने आरोप लगाने का वास्तव में कोई पश्चाताप नहीं है। उसने इस न्यायालय को दिए गए अपने इस प्रभाव के वचनबन्ध को भी भंग किया है कि वह मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायधीशों के विरुद्ध इस प्रकार के आरोप नहीं लगायेगा और अपनी क्षमा-याचना को दोनों पत्रिकाओं में प्रकाशित करेगा। वचनबंध को निभाना तो दूर रहा, वह मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों के विरुद्ध गंदे लेखों से शक्ति का प्रदर्शन करने लगा। वह यह दिखा रहा है कि निर्दोष होते हुए उसे हानि पहुँचाई गई है। और, उसने चेतावनी दी है कि वह उन न्यायाधीशों से क्षमा नहीं मांगेगा और साथ ही मिथ्या अपवाद के अपने अभियान पर डटा रहेगा। संयोग से, उसने पश्चाताप से या उसके बिना न्यायाधिपति वी० रामास्वामी से कभी माफी भी नहीं मांगी। (पैरा 6)

अवमानकर्ता का यह विचार लगता है कि वह न्यायमूर्तियों की, अपने इस अभिकथन से कि उनके निर्णय भ्रष्टाचार से ओतप्रोत हैं, लोगों के सामने निन्दा करके उन्हें अपने कर्तव्य का पालन करने से डरा सकता है। इस तथ्य से अवमानकर्ता ने इन्कार नहीं किया है कि उनसे चारों न्यायमूर्तियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के अभिकथन किए हैं और वास्तव में उसने हमारे समक्ष यह कहा है कि वह उस अवसर की तलाश में है जब वह उन अभिकथनों को सिद्ध कर सके। यदि हम उसे ऐसा अवसर देते हैं तो इससे अवमान बढ़ेगा। अवमानकर्ता जैसा लापरवाह और विद्वेषपूर्ण व्यक्ति ने अपनी सहायता और दुष्प्रेरण के लिए अपने ही जैसे कुछ असंतुष्ट मुकदमेबाजों का समर्थन ले लिया होगा। (पैरा 7)

अवमानकर्ता का आचरण और लेख न्याय के प्रशासन में गम्भीर हस्तक्षेप कारित करते हैं क्योंकि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध मानहानिकारक अभिकथनों का प्रचार करने में उसका एकमात्र उद्देश्य उन्हें उसके या उन व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनमें वह स्पष्ट रूप से हितबद्ध है, मामलों का विनिश्चय करने से डराना है। उसके द्वारा दी गई क्षमा-याचना एक दिखावा है, एक बहकावा है और उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में, स्वीकार करने के लिए कोई क्षमा-याचना है ही नहीं क्योंकि इससे उसमें नई शक्ति आ गई। उसे इस बात का पछतावा है कि उससे उच्च न्यायालय के उन न्यायमूर्तियों से, जिनके चरित्र पर उसने बिना किसी सच्चाई की झलक के या साधनों की शुद्धता से आघात किया है, क्षमा मांगी है। उसे अपने आचरण पर कोई पश्चाताप नहीं है। (पैरा 8)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवमानकर्ता का आचरण न्याय के अनुक्रम में गंभीर हस्तक्षेप है। उसने चाहे कुछ भी हो जाए, उच्च न्यायालय के चारों न्यायाधीशों के पीछे पड़े रहने का दृढ़ निश्चय प्रदर्शित किया है। उसे अपनी बातों के लिए कोई खेद नहीं है। उसे इस बात का खेद है कि उससे स्पष्ट रूप से खेद प्रकट किया। शायद अपनी कीमत वसूल करके उसे अपने स्वामियों के इशारों पर नाचना पड़ रहा है। कई बार, अवमानकर्ता इतने घृणित हो जाते हैं कि उनके आचरण की ओर गंभीरता से ध्यान देना व्यर्थ होता है। इस मामले में यह कार्रवाई इसलिए करनी पड़ रही है क्योंकि इसके सिवाय कोई चारा नहीं, जिससे उच्च न्यायालय के निस्सहाय न्यायमूर्तियों के विरुद्ध मिथ्यापवाद के इस योजनाबद्ध अभियान को रोका जा सके। (पैरा 10)

आरम्भिक अधिकारिता : विशेष इजाजत लेकर फाइल किए गए **1981** के पिटीशन (सी) सं० **9661** में **1982** का सिविल प्रकीर्ण पिटीशन सं० **24899** (न्यायालय के अवमान के लिए)

1981 के कम्पनी पिटीशन सं० 30 में उद्भूत 1981 के ओ० एस० ए० स० 148 में मद्रास उच्च न्यायालय, मद्रास के तारीख 30 सितम्बर, 1981 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील पिटीशन।

पिटीशनर की ओर से — सर्वश्री जी० वसन्त पाई, ओ० सी० माथुर, एस० सुकुमारन और डी० एन० मिश्र

अवमानकर्ता की ओर से — सर्वश्री एस० के० जैन और एस० रामास्वामी

(पी० एम० कुमारस्वामी उर्फ कैलैमान्नन स्वयं उपस्थित हुए)

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ ने दिया।

मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़—

जबकि तारीख 8 सितम्बर, 1982 को 1981 की विशेष इजाजत लेकर किए गए पिटीशन सं० 9661 (नेशनल टैक्सटाइल वर्क्स यूनियन बनाम पी० आर० रामकृष्णन) पर पांच न्यायमूर्तियों की खण्ड न्यायपीठ के समक्ष बहस चल रही थी, श्री जी० वसंत पाई ने, जोकि प्रत्यर्थियों की ओर से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपस्थित हुआ था, न्यायालय का ध्यान पी० एम० कुमारस्वामी उर्फ कैलेमान्नन के नाम से समाचार-पत्र में छपे कतिपय कथनों की ओर दिलाया। आर० बाबा चन्द्रशेखर नाम के एक व्यक्ति की ओर से न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के अधीन श्री पाई द्वारा प्रस्तुत किए गए पिटीशन पर न्यायालय ने पी० एम० कुमारस्वामी को यह बताने के लिए नोटिस जारी किया कि न्यायालय का अवमान करने के लिए उसे न्यायालय के सुपुर्द क्यों न कर दिया जाए।

2. इसके पश्चात् हमारे समक्ष अवमान पिटीशन पर विभिन्न तारीखों को सुनवाई की गई। इन तारीखों में से कुछ तारीखों को अवमान-कर्ता ने अपनी बीमारी के आधार पर स्थगन की मांग की, जबकि कुछ अन्य तारीखों को वह अनुपस्थित रहा। एक अवसर पर वह न्यायालय को अपनी अनुपस्थिति का कारण बताये बिना अनुपस्थित रहा। अन्ततः, अवमान पिटीशन 30 मार्च, 1983 को किञ्चित विस्तारपूर्वक सुना गया। अवमान-कर्ता की ओर से अधिवक्ता, श्री एस० के० जैन द्वारा किए गए समावेदन पर अवमानकर्ता को स्वयं अपने मामले पर तमिल में बहस करने की अनुज्ञा दी गई। दूसरे अधिवक्ता, श्री एस० रामास्वामी ने, जिसे अवमानकर्ता ने नियुक्त किया था, अवमानकर्ता की दलीलों को हमारे फायदे के लिए अंग्रेजी में अनूदित किया। निःसंदेह हममें से एक, अर्थात् न्या० वरदराजन को तमिल का ज्ञान है। हमने उस तारीख को निर्णय बाद में दिए जाने के लिए रख छोड़ा और निदेश दिया कि मामले को तारीख 26 अप्रैल, 1983 को निर्णय के लिए सूचीबद्ध किया जाए। हमने देखा कि यदि अवमानकर्ता को सलाह दी जाए तो वह इस न्यायालय से और मद्रास उच्च न्यायालय के चार विद्वान न्यायमूर्तियों अर्थात् न्या० गोकुलकृष्णन, न्या० रामानुजम, न्या० बी० रामस्वामी और न्या० शनमुघम, जिनके विरुद्ध उसने निराधार अभिकथन किए थे, प्रत्येक से लिखित क्षमायाचना मांग सकता है। हमने यह निदेश दिया कि क्षमा-याचनाएं, यदि दी ही जानी हैं, तो तारीख 7 अप्रैल, 1983 तक लिखित में दे दी जाएं, और "इन्टरनेशनल करोनिकल" और "सिगप्पु नाडा" नामक दोनों समाचार-पत्रों के जिनका संचालन अवमानकर्ता कर रहा है, मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित कर दी जाएं।

3. अवमानकर्ता ने 30 मार्च को ही इस न्यायालय में लिखित क्षमायाचनाएं दे दीं, जो निम्नलिखित रूप में हैं—

"मैं कथन करता हूं कि मैं समझता हूं कि मेरे लेखों से इस माननीय न्यायालय के मन में यह विचार पैदा हुआ है कि मेरे द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिखे गए लेख तिरस्कारपूर्ण प्रकृति के हैं। अतः मैं इस माननीय न्यायालय और मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति गोकुलकृष्णन, न्या० रामनुजम्, न्या० शनमुधम से भी सच्चे मन से और ईमानदारी से क्षमा मांगता हूं और मुझे आक्षेपकृत लेखों के लिखने पर अत्यन्त खेद है।

मैं यह भी वचन देता हूं कि भविष्य में "सिगप्पु नाडा" और "इंटरनेशनल करोनिकल" नामक अपनी पत्रिकाओं में मैं मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों के विरुद्ध कुछ नहीं लिखूंगा। मैं इस शपथ-पत्र के पाठ को उपरोक्त दोनों पत्रिकाओं में प्रकाशित करने का भी वचन देता हूं।"

4. क्षमायाचना कितनी खोखली और निरर्थक थी, यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि इस न्यायालय में क्षमायाचना प्रस्तुत किए जाने के दस दिनों के भीतर ही अवमानकर्ता ने तारीख 8 अप्रैल, 1983 को "सिगप्पु नाडा" में एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें वह वर्णन किया जाना तात्पर्यित था जो तारीख 30 मार्च, 1983 को इस न्यायालय में घटित हुआ। अपनी पत्रिका के उक्त अंक में उसने जो कुछ कहा, वह इस प्रकार है—

"न्यायालय ने मुझसे यह कहा—

हम तुम्हें छह मास के कारावास के अधिकतम दण्ड से दोषसिद्ध करते हैं और तुम पर एक हजार रुपया जुर्माना करते हैं। यदि तुम क्षमा मांग लो तो हम इस पर विचार करेंगे; इन परिस्थितियों में मैं क्या कर सकता था? मैंने माफी मांगना स्वीकार कर लिया।

इसके पश्चात् उन्होंने मुझे यह कहा कि मुझे प्रत्येक न्यायमूर्ति के समक्ष उपस्थित होना होगा, जिनके विरुद्ध मैंने अपने समाचार पत्र में लिखा है और उनसे माफी मांगनी होगी। चूंकि मैंने पहली बात पर माफी मांग ली थी, इस बात के लिए भी सहमत हो गया।"

5. तारीख 14 अप्रैल, 1983 को अवमानकर्ता ने "सिगप्पु नाडा" में मुख पृष्ठ पर एक लेख निकाला जिसमें निम्नलिखित कथन किया गया—

"कैलैमान्नन जेल जाने को तैयार है

मेरे विरुद्ध उच्चतमन न्यायालय में एक मामला फाइल किया गया है, जिसका निर्णय 26 अप्रैल, 1983 को सुनाया जाना था। निर्णय पहले ही सुना दिया गया है और समाचार-पत्र में समाचार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के रूप में प्रकाशित भी हो चुका है। उच्चतम न्यायालय ने यह आदेश दिया कि मैं वैयक्तिक रूप से उच्च न्यायालय के चारों न्यायमूर्तियों के पास जाऊं और माफी मांगू किन्तु मेरा अंतःकरण मुझे इस बात की इजाजत नहीं देता कि मैं उनसे क्षमायाचना करूं। मैंने उनसे क्षमायाचना करने के बजाय जेल जाने का विनिश्चय किया है।

किन्तु मेरे मामले से भारत में एक नया मोड़ आएगा। मैं इस समय उसके बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। मेरे शत्रु इस बात पर खुश हैं कि "कैलाईमन्नन" का इसके साथ ही अन्त हो जाएगा। "सिगप्पु नाडा" इसके पश्चात् प्रकाशित नहीं होगा।

यदि मैं जेल जाता हूं तो भी 'सिगप्पु नाडा' निरन्तर प्रकाशित होता रहेगा।

एक न्यायमूर्ति के भ्रष्टाचार को उच्चतम न्यायालय में कैसे सिद्ध किया जा सकता है। यदि मेरे द्वारा फाइल किए गए प्रत्युत्तर पर सी० बी० आई० जांच का आदेश दिया जाता है, तभी सच्चाई सामने आएगी। इसके लिए उच्चतम न्यायालय ने कुछ भी नहीं किया है और यह सबसे बड़ा न्यायालय कहा जाता है।

मैंने केन्द्रीय सरकार के गृह विभाग के सचिव को भ्रष्टाचार के आरोपों की बाबत दो न्यायमूर्तियों के विरुद्ध परिवाद फाइल करने की अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए पत्र लिखा है, जैसे ही मंजूरी दे दी जाती है, मैं न्यायालय में दोनों न्यायमूर्तियों के विरुद्ध मामला फाइल करूंगा और साबित करूंगा कि भ्रष्टाचार का वह समाचार जो मैंने प्रकाशित किया था, बिल्कुल सच है।

यदि मैं इन आरोपों को साबित नहीं कर पाता तो इससे मेरे आत्म सम्मान को धक्का लगेगा।"

6. इस प्रकार इस अवमानकर्ता ने 30 मार्च, को इस न्यायालय में जो क्षमा याचना की थी, वह अपने आपराधिक आचरण के लिए दण्ड से बचने की उसकी एकमात्र चाल थी। उसे मद्रास उच्च न्यायालय के चारों न्यायाधीशों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के मनमाने आरोप लगाने का वास्तव में कोई पश्चाताप नहीं है। उसने इस न्यायालय को दिए गए अपने इस प्रभाव के वचनबन्ध को भी भंग किया है कि वह मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकार के आरोप नहीं लगायेगा और अपनी क्षमा-याचना को दोनों पत्रिकाओं में प्रकाशित करेगा। वचनबन्ध को निभाना तो दूर रहा, वह मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध गंदे लेखों से शक्ति का प्रदर्शन करने लगा। वह यह दिखा रहा है कि निर्दोष होते हुए उसे हानि पहुंचाई गई है। और, उसने चेतावनी दी है कि वह उन न्यायाधीशों से क्षमा नहीं मांगेगा और साथ ही मिथ्या अपवाद के अपने अभियान पर डटा रहेगा। संयोग से उसने पश्चाताप से या उसके बिना न्यायाधिपति वी० रामास्वामी से कभी माफी मांगी भी नहीं।

7. हम अवमानकर्ता द्वारा किए गए अत्यधिक मानहानिकारक अभिकथनों को अपने निर्णय में उद्धृत करके उनका प्रचार नहीं करना चाहते। उन अभिकथनों का सार यह है कि उच्च न्यायालय के चारों न्यायाधीशों द्वारा दिए गए कतिपय निर्णय भ्रष्टाचार के आधार पर दिए गए थे। अवमानकर्ता का यह विचार लगता है कि वह न्यायाधीशों की, अपने इस अभिकथन से कि उनके निर्णय भ्रष्टाचार से ओतप्रोत हैं, लोगों के सामने निन्दा करके उन्हें अपने कर्तव्य का पालन करने से डरा सकता है। इस तथ्य से अवमानकर्ता ने इन्कार नहीं किया है कि उसने चारों न्यायाधीशों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के अभिकथन किए हैं और वास्तव में उसने हमारे समक्ष यह कहा है कि वह उस अवसर की तलाश में है जब वह उन अभिकथनों को सिद्ध कर सके। यदि हम उसे ऐसा अवसर देते हैं तो इससे अवमान बढ़ेगा। अवमानकर्ता जैसा लापरवाह और विद्वेषपूर्ण व्यक्ति ने अपनी सहायता और दुष्प्रेरण के लिए अपने ही जैसे कुछ असंतुष्ट मुकदमेबाजों का समर्थन ले लिया होगा। फिर भी अवमानकर्ता के सद्भाव का परीक्षण करने के उद्देश्य से हमने उससे उन व्यक्तियों के नामों की, विशिष्टतः उन अधिवक्ताओं की, जिनके शपथपत्र वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समर्थन में फाइल करना चाहता है, सूची मांगी है। उसने हमारी उपस्थिति में कुछेक नाम लिखे भी किन्तु इससे मामले का अन्त हो गया। वह जल्दी ही अपने उन लम्बे-चौड़े दावों को भूल गया कि वह अपने मामले के समर्थन में विधि-व्यवसाय करने वाले वकीलों के भी शपथपत्र प्राप्त कर लेगा। यह स्पष्ट है कि अवमानकर्ता न्यायालय को यह विश्वास दिलाकर केवल चमका देने का प्रयत्न कर रहा था कि वह चारों न्यायाधीशों के विरुद्ध न्याय मांगने वाला अकेला व्यक्ति ही नहीं है। कोई भी उसके समर्थन के लिए आगे नहीं आया। कोई आ भी नहीं सकता था। वह न्याय के लिए नहीं लड़ रहा है। वह न्यायालय का शत्रु बन गया है क्योंकि उन न्यायाधीशों द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिए गए कतिपय विनिश्चय उसे पसन्द नहीं थे। "मैं अकेले आपको छोड़ दूंगा यदि आप मेरे पक्ष में विनिश्चय कर देंगे। यदि आपने मेरे विरुद्ध विनिश्चय करने का साहस किया तो मैं आप पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाऊंगा"— न्यायालयों के प्रति उसके रवैये का यह सार है। न्यायाधीशों को ऐसी धमकियों से डरे बिना ईमानदारी के अपने मार्ग पर चलते रहना चाहिए। दुर्भाव से प्रेरित गन्दे अभियोगों से उनकी रक्षा करना इस न्यायालय का काम है।

8. अवमानकर्ता का आचरण और लेख न्याय के प्रशासन में गम्भीर हस्तक्षेप कारित करते हैं क्योंकि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध मानहानिकारक अभिकथनों का प्रचार करने में उसका एकमात्र उद्देश्य उन्हें उसके या उन व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनमें वह स्पष्ट रूप से हितबद्ध है, मामलों का विनिश्चय करने से डरना है। उसके द्वारा दी गई क्षमा-याचना एक दिखावा है, एक बहकावा है और उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में, स्वीकार करने के लिए कोई क्षमा-याचना है ही नहीं क्योंकि इससे उसमें नई शक्ति आ गई। उसे इस बात का पछतावा है कि उसने उच्च न्यायालय के उन न्यायमूर्तियों से, जिनके चरित्र पर उसने बिना किसी सच्चाई की झलक के या साधनों की शुद्धता के आघात किया है, क्षमा मांगी है। उसे अपने आचरण पर कोई पश्चाताप नहीं है।

9. हमें विश्वास है कि अवमानकर्ता द्वारा संचालित दोनों पत्रिकाओं में लिखे गए लेख कुछ अन्य लोगों की ओर से प्रेरित हैं जोकि परदे के पीछे रहकर अपना कार्य कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि उन्होंने ही अवमानकर्ता को ऐसा जहर उगलने के लिए प्रेरित किया। किन्तु यह तथ्य कि अवमानकर्ता गुप्त स्वामियों के आदेश पर कार्य कर रहा है परिशमनकारी परिस्थिति नहीं है। वास्तव में बहुत से भाड़े के टट्टू समान रूप से नीच होते हैं क्योंकि वे डराने-धमकाने के लिए अपनी कीमत वसूल करते हैं।

10. हम अभिनिर्धारित करते हैं कि अवमानकर्ता का आचरण न्याय के अनुक्रम में गम्भीर हस्तक्षेप है। उसने, चाहे कुछ भी हो जाए, उच्च न्यायालय के चारों न्यायाधीशों के पीछे पड़े रहने का दृढ़ निश्चय प्रदर्शित किया है। उसे अपनी बातों के लिए कोई खेद नहीं है। उसे इस बात का खेद है कि उसने स्पष्ट रूप से खेद प्रकट किया। शायद अपनी कीमत वसूल करके उसे अपने स्वामियों के इशारों पर नाचना पड़ रहा है। कई बार, अवमानकर्ता इतने घृणित हो जाते हैं कि उनके आचरण की ओर गंभीरता से कोई ध्यान देना व्यर्थ होता है। इस मामले में हमें कार्रवाई इसलिए करनी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पड़ रही है क्योंकि इसके सिवाय कोई चारा नहीं जिससे उच्च न्यायालय के निस्सहाय न्यायाधीशों के विरुद्ध मिथ्यापवाद के इस योजनाबद्ध अभियान को रोका जा सके।

11. जैसे ही हम इस निर्णय को समाप्त करने वाले थे, अवमानकर्ता से हमें एक संसूचना प्राप्त हुई जिसे उसके अधिवक्ता, श्री एस० के० जैन ने फाइल किया। उस संसूचना में एक अतिरिक्त शपथपत्र है जिसकी अवमानकर्ता ने मद्रास में तारीख 28 अप्रैल, 1983 को अभिपुष्टि की। उसमें उसने यह कहा है—

> "यदि इस माननीय न्यायालय का विचार है कि मैंने अपने लेखों द्वारा अवमान कारित किया है तो मैं हृदय से और सच्चाई से इस माननीय न्यायालय के समक्ष अपनी क्षमा-याचनाएं देता हूं। मैं यह भी वचनबंध करता हूं कि मैं अपनी पत्रिकाओं 'सिगप्पु नाडा' और 'इण्टरनेशनल क्रोनिकल' में उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों के बारे में कुछ नहीं लिखूंगा। अन्य दो शर्तों के बारे में मैं इस माननीय न्यायालय के हितकारी विचार करने और सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाने के लिए निम्नलिखित कुछ पंक्तियां प्रस्तुत करना चाहूंगा।"

उक्त शपथपत्र के पैरा 5 में उसने यह कहा है कि वह एक स्वतंत्रता सेनानी है और यह कि उसे 18 वर्ष की अल्पायु में ही स्वतंत्रता के आंदोलन के दौरान गिरफ्तार किया गया था और यह कि आपातकाल के दौरान उसे 'मीसा' के अधीन निरुद्ध किया गया था। "इस प्रकार जेल का जीवन मेरे लिए नया नहीं है।" यह सब कुछ कह चुकने के बाद शपथपत्र के पैरा 7 में उसने इस बात को दोहराया है कि यद्यपि "इस समय"-वह अपने लेखों को न्यायोचित नहीं ठहरा पाया है और अपने अभिकथनों को सिद्ध नहीं कर पाया, उसे विश्वास है कि वह ऐसा जरूर कर सकेगा। उसका कहना है कि उसने "दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के उपबन्धों के अधीन दण्डनीय अपराधों के लिए भ्रष्ट न्यायाधीशों" को अभियोजित करने की मंजूरी देने के लिए भारत सरकार और तमिलनाडु सरकार को पहले से ही पत्र लिख दिया है। उसने अपने शपथपत्र को यह कहते हुए समाप्त किया है कि उसका विश्वास है कि वह इस बात को सिद्ध कर सकेगा कि उसके लेखों में सच्चाई है। इस शपथपत्र पर कोई भी टिप्पणी करना फुजूल है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

12. उपरोक्त कारणों से, हम अवमानकर्ता को न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 12 के अधीन दोषसिद्ध करते हैं और उसे तीन मास के साधारण कारावास से और 2,000 रुपए के जुर्माने का संदाय करने के लिए दण्डादिष्ट करते हैं। उसे तुरन्त अभिरक्षा में ले लिया जाए। यदि उसे कोई शारीरिक रोग हो, तो उसके शरीर की हालत का ध्यान रखा जाना चाहिए। जिन लोगों ने उसे इस प्रकार का कार्य करने के लिए उत्प्रेरित किया है वे उसका ध्यान रखेंगे।

पिटीशन मंजूर किया गया।

घ०/भू०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मैसूर राज्य और अन्य

वनाम

एम० एल० नागडे और गडग और अन्य

(State of Mysore and Others

v.

M. L. Nagade and Gadag and Others)

(6 मई, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) लैण्ड रेवेन्यू रूल्स, 1951—नियम 71 (1958 में यथा-अधिनियमित) [सपठित बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू रूल्स, 1951—1958 में यथा-संशोधित नियम 81]—कृष्येतर या विशेष निर्धारण—नियमों के अधीन कृष्येतर निर्धारण का उद्ग्रहण—निर्धारण उद्गृहीत किए जाने के पूर्व सूचना देने के लिए नियमों में किसी उपबंध का न होना—यदि ऐसी स्थिति है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वे नियम अविधिमान्य हैं।

हैदराबाद लैण्ड रेवेन्यू ऐक्ट (सन् 1317 फसली का 8)—धारा 50 और 172 [सपठित आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) लैण्ड रेवेन्यू रूल्स, 1951—नियम 71 (1958 में यथा-संशोधित)]—नियम 71 के अधीन उद्ग्रहणीय कृष्येतर निर्धारण की दर का नियत किया जाना—यह आपत्ति कि इस नियम में मार्गदर्शक सिद्धांतों का अभाव है या यह कि उसमें अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष है, गलत है इसीलिए नियम असांविधानिक नहीं है।

बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू कोड (1879 का 5)—धारा 48 और 214 [सपठित बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू रूल्स, 1951—नियम 81 (1958 में यथा-संशोधित)]—नियम 81 के अधीन उद्ग्रहणीय कृष्येतर निर्धारण की दर का नियत किया जाना—यह आपत्ति कि इस नियम में मार्गदर्शक सिद्धांतों का अभाव है, गलत है—इसलिए नियम असांविधानिक नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्तमान मामले में सिविल अपीलें कृषि भूमि के कृष्येतर प्रयोजनों में परिवर्तित किए जाने पर उनके कृष्येतर निर्धारण के सम्बन्ध में है। इनका सम्बन्ध यथा-संशोधित हैदराबाद लैण्ड रेवेन्यू रूलस के नियम 71 और बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू रूलस के नियम 81 से है। इन नियमों की वैधता को समान आधार पर चुनौती दी गई है। 1956 में राज्यों के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप पुराने मैसूर राज्य की सीमाओं में परिवर्तन किया गया। पूर्ववर्ती मुम्बई राज्य और पुराने हैदराबाद राज्य के कुछ भाग मैसूर राज्य को आबंटित कर दिए गए। इस ऐतिहासिक घटना के परिणामस्वरूप मैसूर राज्य के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न भू-राजस्व संहिताएं प्रवृत्त रह गई। संक्षेप में, इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि मुम्बई राज्य के पूर्ववर्ती क्षेत्र भी जो अब मैसूर राज्य का भाग बन चुका था, भू-राजस्व के मामलों में बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू कोड (मुम्बई भू-राजस्व संहिता) 1879 और तद्धीन बनाए गए नियमों द्वारा ही नियंत्रित होता रहा। इसी प्रकार हैदराबाद राज्य का वह भाग भी जो मैसूर राज्य को आबंटित कर दिया था, हैदराबाद लैण्ड रेवेन्यू ऐक्ट [हैदराबाद भू-राजस्व अधिनियम] (1317 फसली का 8)/द्वारा नियंत्रित होता रहा। उक्त नियमों की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गई कि विभिन्न भू-खण्डों के कृष्येतर निर्धारण के अवधारण के लिए इसमें कोई मार्गदर्शन नहीं दिए गए हैं और वे आवश्यक विधायी कृत्यों के अत्यधिक प्रत्यायोजन के दोष से ग्रस्त हैं और इस प्रकार उनसे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है। इस मामले में उच्च न्यायालय ने इस दलील पर विचार किया कि जिन नियमों को चुनौती दी गई है, क्या वे दिशाहीन और अनियंत्रित शक्तियां प्रदान करते हैं और यह कि विधायी शक्तियों का अत्यधिक प्रत्यायोजन हुआ है ? उच्च न्यायालय ने इन प्रश्नों पर विचार करते हुए पिटिशन खारिज कर दिया जिसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई। अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—इस बात पर जोर दिया गया कि कृष्येतर निर्धारण उद्गृहीत करने से पूर्व नोटिस जारी करने के लिए कोई उपबन्ध नहीं किया गया है। राजस्व प्राधिकारियों से सामान्यतः यह आशा की जाती है कि वे कृष्येत्तर निर्धारण के उदग्रहण के आदेश से प्रभावित व्यक्ति की सुनवाई करें अथवा अपील या पुनरीक्षण के समय उसकी सुनवाई करें। किन्तु इस आधार पर मांग को नामंजूर नहीं किया जा सकता क्योंकि जब कोई मांग की जाती है तो उसका विरोध किया जा सकता है और उसके विनिश्चय के विरुद्ध अपील की जा सकती है। यह नहीं कहा जा सकता कि नियम दूषित है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्योंकि इसके अन्तर्गत नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को समाहित नहीं किया गया है। (पैरा 27)

इस मानदण्ड को लागू करते हुए इस मामले में यह देखना है कि क्या प्रकट होता है। नियम 71 की रचना हैदराबाद भू-राजस्व अधिनियम की धारा 172 द्वारा प्रदत्त नियम बनाने की शक्तियों का प्रयोग करते हुए की गई हैं। नियम बनाने की इस शक्ति का प्रयोग अधिनियम के उपबन्धों को पूरा करने के प्रयोजन से किया जाता है। भू-राजस्व अधिनियम को अधिनियमित करने का मूल प्रयोजन राज्य और उसके अभिकरणों तथा उसके अधिकारियों को भूमि का निर्धारण और भू-राजस्व उद्गृहीत करने के लिए सशक्त करना है। जब कभी भूमि को कृषि से भिन्न अन्य प्रयोजन के लिए परिवर्तित कर दिया जाता है तो कृष्येतर निर्धारण या विशेष निर्धारण करने की शक्ति प्रदान की जाती है किन्तु यह निर्धारण अधिनियम के प्रयोजन अर्थात् राजस्व उद्गृहीत और संगृहीत करने के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए संशोधित नियम 71 के अधीन अवधारित किया जाता है अर्थात् भूमि जिस प्रयोजन में लाई जा रही है और उसके ऐसे उपयोग सम्बन्धी परिवर्तन से उद्भूत भू लाभ तथा जनसंख्या से उसका सम्बन्ध, जैसा कि संशोधित नियम 71 के विभिन्न उपबन्धों में तथा आक्षेपित नियम के न्यूनतम और अधिकतम के अधीन अधिकथित किया गया है। इसके अतिरिक्त निर्धारण प्राधिकारी द्वारा किए गए आदेण के विरुद्ध अपील की जा सकती है और उसका पुनर्विलोकन किया जा सकता है। अधिनियम और नियमों के अधीन पर्याप्त मार्गदर्शन दिए गए हैं जिनका अनुसरण करते हुए निर्धारण प्राधिकारी को कृष्येत्तर निर्धारण करना है। (पैरा 22)

दुर्भाग्यवश उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए गलती की है कि नियम 71 कृष्येत्तर प्रयोजन के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि पर उद्ग्रहणीय विशेष निर्धारण को अवधारित करने के विषय में राजस्व अधिकारियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान करता है। उच्च न्यायालय इस बात पर ध्यान देने में असफल रहा कि जिस क्षेत्राधिकार के भीतर राजस्व अधिकारी को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना है वह न्यूनतम और अधिकतम की सीमा द्वारा नियंत्रित कर दिया गया है और निर्धारण की मात्रा अवधारित करते समय राजस्व अधिकारी को इस बात को ध्यान में रखना होगा कि भूमि किस प्रयोजन के लिए उपयोग की जा रही है और उस उपयोग से भूमि से क्या लाभ उद्भूत हो रहा है। राजस्व अधिकारी द्वारा किए गए आदेश के विरुद्ध अपील की जा सकती है। अब जब कोई मांग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उठाई जाती है तो सुसंगत नियमों के विभिन्न उपबन्धों के अधीन सदैव ही उसका विरोध किया जा सकता है और सम्बद्ध निर्धारिती को अपने आपको निर्दोष बताने का पूरा अवसर प्राप्त होगा। इस बात को नजरअन्दाज नहीं किया जाना चाहिए कि भू-राजस्व एक कर है और कराधान उपविधि की विधिमान्यता को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अवधारित किया जाना चाहिए कि कराधान के मामलों में न्यायालय चुनाव करने के लिए और प्रक्रम (स्लैब) की पद्धति अनुज्ञात करता है। इसलिए राजस्व अधिकारियों के विवेकाधिकार को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त मार्गदर्शन दिए गए थे और नियम को इस आधार पर अभिखंडित नहीं किया जा सकता कि यह बहुत व्यापक मनमानी, अनिश्चित स्वनिर्णयाधिकार की शक्ति प्रदान करता है, जो किसी भी मार्गदर्शन से नियंत्रित नहीं है। (पैरा 23)

इसलिए, प्रश्न यह है कि क्या इस शक्ति के प्रयोग के लिए कोई मार्गनर्शन है? अब तक यह बात पूर्णतः मान्यता प्राप्त हो चुकी है कि आक्षेपित उपबन्धों में मार्गदर्शन खोजना बेकार है। उसे उस विन्यास से लिया जा सकता है जिसमें उपबन्ध किया गया है, उस प्रयोजन से जिसके लिए अधिनियम को अधिनियमित किया गया है, उपविधि की उद्देशिका में से जिसमें यह निगमित किया गया है, खोजा जा सकता है। कोई भी विधान या उप-विधि किसी सार्वजनिक प्रयोजन को पूरा करने के लिए अधिनियमित की जाती है और विधि सम्बन्धी नीति और उद्देश्य जिसे प्राप्त किया जाना है, विवेकाधिकार की शक्ति के प्रयोग के बारे में विश्वसनीय मार्गदर्शन प्रस्तुत कर सकती है। (पैरा 13)

इस विनिश्चय से कोई सहायता नहीं मिल सकती क्योंकि हैदराबाद भू-राजस्व अधिनियम में निर्धारण की एक व्यापक पद्धति विहित की गई है और उसके सुसंगत उपबन्धों का अनुसरण कृष्येतर निर्धारण के समय किया जाएगा। नियम न्यूनतम और अधिकतम के बीच विवेकाधिकार का प्रयोग करने की शक्ति को सीमित करता है। विभिन्न दरों का जनसंख्या से परस्पर सम्बन्ध है। धारा 50 में यह उपबन्ध किया गया है कि कृष्येत्तर निर्धारण करते समय भूमि के उपयोग और उसके उपयोग से उद्भूत लाभ को ध्यान में रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त, राजस्व अधिकारियों द्वारा किए गए आदेशों के विरुद्ध न केवल अपील ही की जा सकती है बल्कि निर्धारण आदेश से व्यथित व्यक्ति द्वारा पुनर्विलोकन पिटीशन फाइल किया जाना भी अनुध्यात हैं। इसलिए ट्रावनकोर-कोचीन लैण्ड टैक्स ऐक्ट, 1955 को अभिखंडित करने के लिए जो कसौटी सांविधानिक न्यायपीठ ने अपनाई वह इस मामले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में उपबंधित नहीं है। इसके विपरित कृष्येत्तर निर्धारण के सम्बन्ध में ऐसे व्यापक, उपबन्ध कहां हैं, जैसे भूमि का प्रयोग, भूमि के प्रयोग से उद्भूत लाभ, जनसंख्या से सहबद्ध विभिन्न दरों का अधिकतम और न्यूनतम (पैरा 15)

यह ठीक नहीं है कि इस विनिश्चय से कैसे कोई सहायता मिल सकती है क्योंकि यहां समान दर पर कोई उद्ग्रहण नहीं किया गया है और कृष्येत्तर निर्धारण प्रत्येक भू-खण्ड के बारे में उसकी स्थिति, उपयोग और भूमि के उपयोग से उद्भूत लाभ को ध्यान में रखते हुए किया जाना है। (पैरा 16)

इस बात पर जोर देने के लिए बहुत मामूली प्रयास किया गया कि कार्यपालिका को आवश्यक विधायी कृत्यों का अत्यधिक प्रत्यायोजन करते हुए न उसे केवल नियम अधिनियमित करने की बल्कि उसे संशोधित करने की शक्ति भी प्रत्यायोजित की गई जिससे कि कृष्येत्तर निर्धारण में अन्तर रखा जा सके। (पैरा 24)

हैदराबाद लैण्ड रेवेन्यू ऐक्ट और आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) लैण्ड रेवेन्यू रूल्स, 1951 दोनों में ही पर्याप्त मार्गदर्शन दिए गए हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि आयुक्त को व्यापक मनमानी स्वनिर्णयाधिकार की शक्ति दी गई है। स्वनिर्णयाधिकार का प्रयोग न्यूनतम और अधिकतम के बीच ही किया जाना है। इसका मानदण्ड है उस क्षेत्र में कृष्येत्तर प्रयोजन के लिए उपयोग की जा रही भूमि, क्षेत्र को ग्रामों, उप-नगरों और नगरों के अनुसार विभाजित करना होगा और अन्ततः निर्धारण केवल भू-राजस्व का किया जा रहा है क्योंकि कृष्येत्तर निर्धारण और कुछ नहीं, भू-राजस्व ही है। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर उपबन्ध को अभिखंडित करते हुए भूल की है कि आयुक्त को मनमाने स्वनिर्णयाधिकार प्राप्त थे जो किसी भी मार्गदर्शन से नियंत्रित नहीं थे। स्वनिर्णयाधिकार न केवल नियंत्रित हैं बल्कि अधिनियम और उसके नियमों में उसके लिए पर्याप्त मार्गदर्शन दिए गए हैं और उच्च न्यायालय ने संशोधित नियम 81 को अभिखंडित करने में भूल की है। (पैरा 26)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1979]	[1979] 3 उम० नि० प० 1093=[1979] 1 एस० सी० आर० 845 : अविन्दर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य (Avinder Singh and Others *v.* State of Punjab and Another);	21
[1961]	[1961] 1 एस० सी० आर० 951 : रंगीलदास वरजदास खण्डवाला बनाम कलक्टर सूरत और अन्य (Rangildas Varajdas Khandwala *v.* Collector of Surat and Others).	19

प्रभेदित निर्णय

[1969]	[1969] 1 एस० सी० आर० 645 : केरल राज्य बनाम हाजी के० हाजी के० कुट्टी नाहा और अन्य (State of Kerala *v.* Haji K. Haji K. Kutty Naha and Others);	18
[1967]	[1967] 3 एस० सी० आर० 28 : आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य बनाम नल राजा रेड्डी और अन्य (State of Andhra Pradesh and Another *v.* Nalla Raja Reddy and Others);	17
[1967]	[1967] 2 एस० सी० आर० 679 : न्यू मानक चौक स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स कम्पनी लिमिटेड बनाम म्यूनिसिपल कारपोरेशन ऑफ दि सिटी ऑफ अहमदाबाद और अन्य (New Manak Chowk Spinning and Weaving Mills Company Limited and Others *v.* Municipal Corporation of the City of Ahmedabad and Others);	16, 18

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1961] [1961] 3 एस० सी० आर० 67 :
कुन्नाघत थाथुन्नी मोपिल नैयर बनाम केरल राज्य और अन्य
(Kunnathat Thathunni Moopil Nair v. The State of Kerala and Another). 14

सिविल अपीली अधिकारिता : 1970 की सिविल अपील सं० 1221-1222 और 1407-1413.

1963 के रिट पिटीशन सं० 672, 1165-1168, 1198, 1199 और 2619 तथा 1964 के रिट पिटीशन सं० 1934 में मैसूर उच्च न्यायालय के तारीख 30 सितम्बर, 1965 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपीलें।

अपीलार्थियों की ओर से (सभी अपीलों में)	सर्वश्री एम० वीरप्पा और अशोक कुमार शर्मा
प्रत्यर्थी की ओर से (1970 की सि० अ० सं० 1407-1412 में)	सर्वश्री नवनीत लाल, कैलाश वासुदेव और कृष्ण कुमार
प्रत्यर्थी की ओर से (1970 की सि० अ० सं० 1222 और 1413 में)	सर्वश्री एम० एन० फड़के, विनोद बोब्डे, डी० एन० मिश्र और श्रीमती ए० के० वर्मा
प्रत्यर्थी की ओर से (1970 की सि० अ० सं० 1221 में)	सर्वश्री एस० सी० जवेली और बी० पी० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए देसाई ने दिया।

न्यायाधिपति देसाई—

1970 की सिविल अपील सं० 1221-1222; बंगलौर स्थित मैसूर उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा रिट पिटीशन सं० 672/63 और 193/64 में किए गए विनिश्चय से उद्भूत होती है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थियों द्वारा 4 जुलाई, 1978 को यथा-संशोधित हैदराबाद लैण्ड रेवेन्यू रूल्स (हैदराबाद भू-राजस्व नियम) के नियम 71 जो निरसित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया गया प्रतीत होता है और जिसे आन्ध्रप्रदेश (तेलंगाना ऐरिया) लैण्ड रेवेन्यू रूल्स [आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) भू-राजस्व नियम], 1951 के रूप में पुन: अधिनियमित किया गया था, के आधार पर किए गए कृष्येतर निर्धारण की मांग को इस आधार पर अभिखंडित कर दिया था कि वह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी होने के नाते असांविधानिक था, इसलिए उसका प्रभाव शून्य है।

2. 1970 की सिविल अपील सं 1407 से 1413 पिटीशनों के एक समूह में उसी उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के एक विनिश्चय से उद्‌भूत होती है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने कृष्येतर निर्धारण की मांग को इस आधार पर अभिखंडित कर दिया था कि 27 मार्च, 1958 को यथा-संशोधित बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू रूल्स (मुम्बई भू-राजस्व नियम) का नियम 81 अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी होने के नाते असांविधानिक था और इसलिए उसका प्रभाव शून्य था।

3. दोनों ही समूहों के अपीलार्थी मैसूर राज्य और उसके कुछ अधिकारीगण हैं। प्रत्यर्थीगण दोनों ही समूहों में मूल पिटीशनर हैं।

4. हैदराबाद भू-राजस्व नियम का नियम 71 और मुम्बई भू-राजस्व नियम का नियम 81 समान रीति में किन्तु दो भिन्न-भिन्न तारीखों को संशोधित किए गए थे, और इस प्रकार संशोधित प्रत्येक नियम की वैधता को समान आधारों पर प्रश्नगत किया गया था और लगभग समान कारणों से ही उच्च न्यायालय ने यथा-संशोधित दोनों नियमों को अभिखंडित कर दिया और हमारे समक्ष परस्पर-विरोधी दलीलें भी लगभग समान आधारों पर दी गई और इसलिए ये समस्त अपीलें एक ही निर्णय द्वारा निपटाई जाती हैं।

5. 1956 में राज्य के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप पुराने मैसूर राज्य की सीमाओं में परिवर्तन किया गया। पूर्ववर्ती मुम्बई राज्य और पुराने हैदराबाद राज्य के कुछ भाग मैसूर राज्य को आबंटित कर दिए गए थे। इस ऐतिहासिक घटना के परिणामस्वरूप मैसूर राज्य के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न भू-राजस्व संहिताएं प्रवृत्त रह गई। संक्षेप में इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि मुम्बई राज्य का पूर्ववर्ती क्षेत्र जो अब मैसूर राज्य का भाग बन चुका था, वह भी भू-राजस्व के मामलों में बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू कोड (मुम्बई भू-राजस्व संहिता), 1879 और तद्धीन बनाए गए नियमों द्वारा ही नियंत्रित होता रहा। इसी प्रकार हैदराबाद राज्य का भी वह भाग जो मैसूर राज्य को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आबंटित कर दिया था, हैदराबाद लैंण्ड रेवेन्यू ऐक्ट (हैदराबाद भू-राजस्व अधिनियम) (1317 फसली का 8) द्वारा नियंत्रित होता रहा।

1970 की सिविल अपील सं० 1221-1222 के संबंध में

6. प्रत्यर्थियों ने 4 जुलाई, 1958 को प्रवृत्त होने वाले हैदराबाद भू-राजस्व नियमों के संशोधित नियम 71 की वैद्यता को प्रश्नगत किया। यह नियम इस प्रकार है—

*"71.(1) कृषि भूमि को कृष्येतर प्रयोजनों में परिवर्तित करने की दशा में निर्धारण की पद्धति—विशेष निर्धारण का उद्ग्रहण निम्नलिखित रीति में होगा—

(क) भूमि के किसी ऐसे ग्राम में स्थित होने की दशा में जिसकी जनसंख्या 5,000 से अधिक नहीं है, ऐसी भूमि पर उद्ग्रहणीय विशेष निर्धारण की दर प्रति एकड़ 40/-रुपए से अधिक नहीं होगी।

(ख) भूमि के किसी ऐसे ग्राम या ऐसे उपनगर से भिन्न, जो इस नियम के उपनियम (ग) के अधीन आता है जिसकी जनसंख्या 5,000 से अधिक है, में स्थित होने की दशा में उद्ग्रहणीय विशेष निर्धारण की दर प्रति एकड़ 40/-रुपए से कम और प्रति एकड़ 80/- रुपए से अधिक नहीं होगी।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"71. (1) Mode of assessment in the event of diversion of agricultural land to Non-Agricultural purposes. The special assessment shall be levied as follows :—

(a) in the case of land situated in any village, the population of which does not exceed 5,000 the rate of special assessment leviable on such land and not more than Rs. 40-per acre.

(b) in the case of land situated in any village or town, other than a town coming under Sub-rule (c) of this rule, the population of which exceeds 5,000 the rate of special assessment leviable shall be not less than Rs,40 per acre and not more than Rs, 30 per acre.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ग) रायचूर, गुलबर्ग और बीदार की नगरपालिक सीमाओं में स्थित क्षेत्र के भीतर स्थित भूमि की दशा में उद्ग्रहणीय विशेष निर्धारण की दर प्रति एकड़ 150/- रुपए से कम और प्रति एकड़ 250/- रुपए से अधिक नहीं होगी।"

इस नियम की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गई कि विभिन्न भूखण्डों के कृष्येतर निर्धारण के अवधारण के लिए इसमें कोई मार्गदर्शन नहीं दिए गए हैं और यह कि यह आवश्यक विधायी कृत्यों के अत्यधिक प्रत्यायोजन के दोष से ग्रस्त है और इसलिए संशोधित नियम 71 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए की जाने वाली कोई भी मांग मनमानी होगी और इसलिए उससे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा।

1970 की सिविल अपील सं० 1407 से 1413 के सम्बन्ध में

7. प्रत्यर्थियों ने, जो उच्च न्यायालय में पिटीशनर थे, 27 मार्च, 1958 को यथा-संशोधित मुम्बई भू-राजस्व नियमों के नियम 81 की वैधता को प्रश्नगत किया। नियम इस प्रकार है :—

*"81. (1) कृष्येतर निर्धारण की दर—कृष्येतर निर्धारण की दर निम्नलिखित रूप से उद्ग्रहणीय होगी—

(क) भूमि के किसी ऐसे ग्राम में स्थित होने की दशा में जिसकी जनसंख्या 5,000 से अधिक नहीं है, उद्ग्रहणीय कृष्येतर निर्धारण की दर ऐसी भूमि पर उद्ग्रहणीय कृषि

(c) in the case of land situated within an area comprising the municipality limits of the town of Raichur, Gulbarga and Bidar the rate of special assessment leviable shall be not less than Rs 150/- per acre and not more than Rs. 250/- per acre."

*"81. (1) Rate of Non-Agricultural assessment. The rate of Non-Agricultural aasessment leviable, shall be as follows—

(a) in the case of land situated in any village, the population of which does not exceed 5,000, the rate of Non-Agricultural assessment leviable shall be not less than the Agrcultural assessment levi-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्धारण से कम और प्रति एकड़ 40/- रुपए से अधिक नहीं होगी।

(ख) भूमि के किसी ग्राम अथवा ऐसे उपनगर से भिन्न जो इस नियम के खण्ड (ग) के अधीन आता है, किसी उपनगर में स्थित भूमि की दशा में जिसकी जनसंख्या 5,000 से अधिक है, उद्ग्रहणीय कृष्येतर निर्धारण की दर प्रति एकड़ 40/-रुपए से कम और 80/- रुपए से अधिक नहीं होगी।

(ग) भूमि के नियम 100 की सारणी में निर्दिष्ट किसी नगर या उपनगर में स्थित होने की दशा में उद्ग्रहणीय कृष्येतर निर्धारण की दर प्रति एकड़ 150/-रुपए से कम और 250/- रुपए से अधिक होगी।

(घ) कृष्येतर प्रयोजनों के लिए परिवर्तित किए गए समस्त क्षेत्रों में इस बात पर कोई ध्यान दिए बिना कि वस्तुतः कितने क्षेत्र पर निर्माण किया गया है, एक समान दर पर कृष्येतर निर्धारण उद्ग्रहणीय होगा।"

वही दलील जो पूर्ववर्ती पिटीशनों में दी गई थी, इन पिटीशनों में भी दोहराई गई।

---

able on such land and not more than Rs. 40 - per acre.

(b) in the case of land situated in any village or town other than a town coming under Clause (c) of this Rule, the population of which exceed 5,000 the rate of Non-Agricultural assessment leviable shall be not less than Rs 40 - per acre and not more than Rs. 80 - per aere.

(c) in the case of land situated in any City and Town, referred to in the table to Rule 100, the rate of Non-Agricultural assessment leviable shall be not less than Rs. 150 - per acre and not more than Rs. 250 - per aere.

(d) Non-Agricltural assessment will be leviable at an uniform rates for the entire extent converted for non-agricultural purposes irrespective of the extent actually built upon."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

8. दोनों ही नियमों की विधिमान्यता को अन्य विभिन्न आधारों पर प्रश्नगत किया गया किन्तु इसमें अन्तर्विष्ट उनमें से एक के सिवाय अन्य दलीलों पर उच्च न्यायालय ने विचार नहीं किया इसलिए यहां उनके दोहराने की आवश्यकता नहीं है ।

9. एकमात्र दलील जिस पर उच्च न्यायालय ने विचार किया था, वह यह थी कि वे नियम जिन्हें चुनौती दी गई है, दिशाहीन और अनियंत्रित शक्तियां प्रदान करते हैं और यह कि न तो अधिनियम में और न ही नियमों में कोई मार्गदर्शन दिया गया है और विधायी कृत्यों का अत्यधिक प्रत्यायोजन किया गया है इसलिए दोनों संशोधित नियम अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हैं ।

10. इस प्रकार विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या हैदराबाद भू-राजस्व नियमों का संशोधित नियम 71 और मुम्बई भू-राजस्व नियम का संशोधित नियम 81 विधायी कृत्यों पर अत्यधिक प्रत्यायोजन के दोष से ग्रस्त है अथवा उनके द्वारा अधिकारियों को अनियंत्रित और दिशाहीन, मनमानी शक्तियां प्रदान कर दी गई हैं अथवा दोनों नियमों को प्रवृत्त करने और कार्यरूप देने के सम्बन्ध में विवेकाधिकार को नियंत्रित करने के लिए कोई मार्गदर्शन नहीं दिए गए हैं ।

11. सबसे पहले हम हैदराबाद भू-राजस्व नियमों के संशोधित नियम 71 की विधिमान्यता की परीक्षा करेंगे । हैदराबाद भू-राजस्व अधिनियम (1316 फसली का 8) को भू-राजस्व से सम्बन्धित आदेशों और विनियमों को संशोधित और समेकित करने के लिए अधिनियमित किया गया था । यह एक व्यापक संहिता है जिसे 12 अध्यायों में विभाजित किया गया है । अध्याय 2 राजस्व अधिकारियों की नियुक्ति और उनकी अपनी शक्तियों के बारे में है । अध्याय 4 में भूमि और भू-राजस्व के सम्बन्ध में उपबन्ध अन्तर्विष्ट किए गए हैं । धारा 24 में यह उपबन्ध किया गया है कि ऐसी समस्त भूमि, जिसका अन्य-संक्रांमण नहीं किया गया है, सरकार की है धारा 48 में यह उपबन्ध किया गया है कि ऐसी समस्त भूमि के सम्बन्ध में चाहे वे कृषि कार्यों के लिए प्रयोग की जा रही हों या किसी अन्य प्रयोजन के लिए और चाहे वे कहीं भी स्थित हों, इस उपबन्ध और अध्याय 7 तथा 9 के उपबन्धों के अनुसार ऐसे मामलों को छोड़कर जिनमें भूमि का हक किसी नगरपालिका को अन्तरित कर दिया गया है अथवा जिसे किसी विशेष संविदा के अधीन अथवा किसी अन्य आदेश अथवा विधि के अधीन सरकार से राजस्व

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से पूर्णतः छूट-प्राप्त है, भू-राजस्व के संदाय के लिए दायी होगी। धारा 50 जो कि वर्तमान प्रयोजनों के लिए सारभूत है, भू-राजस्व के निर्धारण और उद्ग्रहण के लिए शक्ति प्रदान करती है। यह इस प्रकार है :—

* "50. भू-राजस्व उपयोग की विभिन्न रीति के अनुसार निर्धारित किया जाएगा—

(क) कृषि प्रयोजन,

(ख) कृषि प्रयोजन के अतिरिक्त कोई ऐसा प्रयोजन जिससे लाभ या फायदा उद्भूत होता है।

जब किसी भूमि की दर पूर्वोक्त में से किसी प्रयोजनों के लिए निर्धारित की जाती है और भूमि किसी अन्य प्रयोजन के लिए विनियोजित कर दी जाती है, तो उसकी दर में परिवर्तन किया जाएगा और उसे फिर से नियत किया जाएगा भले ही वर्तमान समझौते के निबन्धनों का अभी अवसान न हुआ हो।"

यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भू-राजस्व का निर्धारण भूमि के उपयोग के अनुसार ही किया जाना था विशेष रूप से ऐसे प्रयोग के मामलों में जिनमें भूमि का उपयोग कृषि से भिन्न प्रयोजनों के लिए किया गया है वहां कृष्येतर निर्धारण भूमि के उपयोग को और भूमि के ऐसे उपयोग से उद्भूत होने वाले लाभ या फायदे को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा। अध्याय 7 में भूमि के सर्वेक्षण और बंदोबस्त के बारे में उपबन्ध किया गया है जिसके अन्तर्गत भूमि के प्रत्येक टुकड़े और भूखण्ड का निर्धारण सम्मिलित है। धारा 84 में

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"50 Land revenue shall be assessed according to the various modes of use—

(a) Agricultural use,

(b) in addition to agricultural use, any other use from which profit or advantage is derived

When rate is assessed on any land for any one of the aforesaid purposes and the land is appropriated for any other purpose, the rate thereof shall be altered and fixed again although the terms of subsisting settlement may not have expired."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्धारण की उद्घोषणा के बारे में और वह रीति जिसमें यह घोषणा की जाएगी, उपबन्ध किया गया है और इस उद्घोषणा के अन्तर्गत प्रत्येक भूखण्ड जिसे सर्वेक्षण संख्या कहते हैं, की बाबत किए गए निर्धारण को सम्मिलित किया जाना चाहिए। अध्याय 9 में राजस्व के संदाय के उत्तरदायित्व, उसकी वसूली की पद्धति और भू-राजस्व की बाबत संदाय की प्राथमिकता के बारे में उपबन्ध किया गया है। अध्याय 10 भू-राजस्व अधिनियम के अधीन आने वाले मामलों का निपटान करने वाले राजस्व अधिकारियों के लिए विहित प्रक्रिया के बारे में है। अध्याय 11 में राजस्व अधिकारियों के आदेशों के विरुद्ध अपील, पुनर्विलोकन और पुनरीक्षण के बारे में उपबन्ध किया गया है। धारा 172 सरकार को अधिनियम के प्रवर्तन से सम्बन्धित विषयों या ऐसे विषयों से जिनके लिए अधिनियम में अभिव्यक्ततः उपबन्ध नहीं किए गए हैं, सम्बद्ध व्यक्तियों के मार्गदर्शन के लिए तथा अधिनियम के प्रयोजनों और उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अधिनियम के उपबन्धों से सुसंगत नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है, और इन्हें जरीदा (जो राजपत्र के अनुरूप हैं) में प्रकाशित किया जाएगा। इस शक्ति का प्रयोग करते हुए, हैदराबाद भू-राजस्व नियम अधिनियमित और प्रख्यापित किए गए जो बाद में निरसित कर दिए गए और आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) भू-राजस्व नियम, 1951 के रूप में पुनः अधिनियमित किए गए। तारीख 4 जुलाई, 1958 को यथा-संशोधित नियम 71 को इससे पूर्व उद्धृत किया गया है। इस नियम में कृषि भूमि के कृष्येतर प्रयोजनों के लिए परिवर्तित किए जाने की दशा में, निर्धारण की रीति के बारे में उपबन्ध किया गया है। संक्षेप में, कृष्येतर निर्धारण जिसे विशेष निर्धारण के रूप में विरचित किया गया है, नियम 71 (1) के उपखण्ड (क), (ख) और (ग) में उपबन्धित न्यूनतम और अधिकतम सीमा के भीतर ही उद्गृहीत किया जाएगा। संशोधित नियम में समय-समय पर कृष्येतर भूमि की निर्धारण राशि को बढ़ाने के लिए पुनरीक्षण की शक्ति प्रदान की गई है।

12. क्या यह शक्ति असीमित, अनियंत्रित या मनमानी है? यथा-संशोधित नियम 71 (1) में यह कहा गया है कि विभिन्न क्षेत्रों में जो अधिकतम और न्यूनतम के बीच जनसंख्या से परस्पर सम्बद्ध हैं, कृष्येतर निर्धारण उद्गृहीत किया ही जाना है। सामान्यतः भूमि को कृषि प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाता है और निर्धारण भूमि के कृषि प्रयोजन में किए जाने वाले उपयोग के आधार पर ही उद्गृहीत किया जाता है। जहां भूमि के उपयोग में परिवर्तन किया गया हो, वहां विशेष निर्धारण जिसे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कृष्येतर निर्धारण कहा जाता है, उद्गृहीत किया जा सकता है। कृष्येतर निर्धारण उद्गृहीत करने का अधिकार विवादग्रस्त नहीं है और न ही कृष्येतर निर्धारण भूमि के उपयोग के बदले राजस्व के संदाय के लिए किया गया निर्धारण है। प्रश्न केवल यह है कि नियम द्वारा जो शक्ति दी गई है, वह अधिकारियों को इतना व्यापक मनमाना विवेकाधिकार प्रदान करती है, जिससे मार्गदर्शनों के अभाव में राजस्व अधिकारी विभिन्न क्षेत्रों में मनमाना कृत्य कर सकते हैं और इसलिए मार्गदर्शनों के अभाव में यह नियम अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है।

13. इसलिए, प्रश्न यह है कि क्या इस शक्ति के प्रयोग के लिए कोई मार्गदर्शन है? अब तक यह बात पूर्णत: मान्यता-प्राप्त हो चुकी है कि आक्षेपित उपबन्धों में मार्गदर्शन खोजना बेकार है। उसे उस विन्यास से लिया जा सकता है जिसमें उपबन्ध किया गया है, उस प्रयोजन से जिसके लिए अधिनियम को अधिनियमित किया गया है, उप-विधि की उद्देशिका में से जिसमें यह निगमित किया गया है, खोजा जा सकता है। कोई भी विधान या उप-विधि किसी सार्वजनिक प्रयोजन को पूरा करने के लिए अधिनियमित की जाती है और विधि संबंधी नीति और उद्देश्य जिसे प्राप्त किया जाना है, विवेकाधिकार की शक्ति के प्रयोग के बारे में विश्वसनीय मार्गदर्शन प्रस्तुत कर सकती है। प्रोफेसर विल्स ने अपनी पुस्तक कांस्टीट्यूशनल लॉ (सांविधानिक विधि) के पृष्ठ 587 पर निम्नलिखित अवलोकन किया—

> "यदि कोई उप-विधि किसी निश्चित नीति की घोषणा करती है तो विधायी शक्तियों के प्रत्यायोजन के विरुद्ध प्रर्याप्त निश्चित मानक है और यदि मानक युक्तियुक्त है, तो समता के लिए भी नियम बनाने के लिए पर्याप्त और निश्चित मानक हैं। यदि समता के उल्लघंन को रोकने के लिए कोई मानक अधिकथित नहीं किया गया है तो जो व्यक्ति शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं उन्हें ऐसी रीति में कृत्य करना चाहिए मानो वे वैध मानक के आधार पर कार्यवाही कर रहे हों।"

14. कुन्नाथात थाथुन्नी मोयिल नैय्यर बनाम केरल राज्य और अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक सांविधानिक न्यायपीठ ने ट्रावनोर-कोचीन लैण्ड टैक्स ऐक्ट, 1955 को इस आधार पर अनुच्छेद 14

[1] [1961] 3 एस० सी० आर० 67.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का उल्लघंनकारी मानते हुए अभिखण्डित कर दिया कि उसमें असमान व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार किया गया था। आक्षेपित अधिनियम द्वारा राज्य के अधीन समस्त भूमि पर चाहे वह किसी भी प्रकार की हो, और चाहे वह जिस भू-धृति के अधीन धारित की गई हो, समान दर पर कर, जिसे आधार-कर कहा गया था, प्रभारित और उद्‌गृहीत किया जाना था। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम ऐसे समस्त व्यक्तियों को, जो भूमि धारण करते है, विहित समान दर पर कर का संदाय करने के लिए बाध्य करता है चाहे उसे उस सम्पत्ति से कोई आय हुई हो या नहीं अथवा वह सम्पत्ति आय देने की क्षमता रखती हो या नहीं। परिणामस्वरूप न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम के उपबन्धों में वर्गीकरण के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया और यह ऐसा मामला है जिसमें वर्गीकरण के अभाव में असमानता बरती गई है। इस निष्कर्ष पर पहुंचते हुए मुख्य न्यायाधिपति सिन्हा ने बहुमत की ओर से निर्णय पढ़ते हुए निम्नलिखित अवलोकन किया—

> "इस प्रकार अधिनियम में भू-धारकों पर ऐसा कर संदत्त करने के दायित्व की प्रस्थापना की गई है जिसे न्यायिक आधार पर उद्‌गृहीत नहीं किया जा सकता क्योंकि (1) अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में प्रस्थापित निर्धारिती को नोटिस देने की अपेक्षा नहीं की गई है; (2) निर्धारण प्राधिकारी द्वारा की गई गलती को सुधारने के लिए कोई प्रक्रिया नहीं दी गई है; (3) विधि सम्बन्धी प्रश्नों के लिए वरिष्ठ सिविल न्यायालय की राय प्राप्त करने के लिए कोई प्रक्रिया विहित नहीं की गई है, जैसा कि सामान्यतः समस्त कराधान संबंधी उप-विधियों में पाया जाता है; और (4) निर्धारण प्रक्रिया के विषय में निर्धारण प्राधिकारी पर न्यायसम्मत् रूप में कृत्य के लिए कोई कर्तव्य अधिरोपित नहीं किया गया है, न ही ऐसी किसी निर्धारिती के लिए जो निर्धारण आदेश से व्यथित हो, अपील करने के अधिकार का उपबन्ध किया गया है।"

15. इस विनिश्चय से कोई सहायता नहीं मिल सकती क्योंकि हैदराबाद भू-राजस्व अधिनियम में निर्धारण की एक व्यापक पद्धति विहित की गई है और उसके सुसंगत उपबन्धों का अनुसरण कृष्येतर निर्धारण के समय किया जाएगा। नियम न्यूनतम और अधिकतम के बीच विवेकाधिकार का प्रयोग करने की शक्ति को सीमित करता है। विभिन्न दरों का जनसंख्या से परस्पर सम्बन्ध है। धारा 50 में यह उपबन्ध किया गया है कि कृष्येतर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्धारण करते समय भूमि के उपयोग और उसके उपयोग से उद्भूत लाभ को ध्यान में रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त, राजस्व अधिकारियों द्वारा किए गए आदेशों के विरुद्ध न केवल अपील ही की जा सकती है बल्कि निर्धारण आदेश से व्यथित व्यक्ति द्वारा पुनर्विलोकन पिटीशन फाइल किया जाना भी अनुज्ञात है। इसलिए ट्रावनकोर-कोचीन लैण्ड टैक्स ऐक्ट, 1955 को अभिखंडित करने के लिए जो कसौटी सांविधानिक न्यायपीठ ने अपनाई वह इस मामले में उपलब्ध नहीं है। इसके विपरीत कृष्येतर निर्धारण के सम्बन्ध में ऐसे व्यापक उपबन्ध कहां हैं, जैसे भूमि का प्रयोग, भूमि के प्रयोग से उद्भूत लाभ, जनसंख्या से सहबद्ध विभिन्न दरों का अधिकतम और न्यूनतम।

16. न्यू मानक चौक स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स कम्पनी लिमिटेड बनाम म्युनिसिपल कारपोरेशन आफ दि सिटी आफ अहमदाबाद और अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक सांविधानिक न्यायपीठ ने नगर निगम द्वारा सम्पत्ति-कर के निर्धारण को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर अभिखंडित कर दिया कि क्षेत्रफल के आधार पर कर उद्गृहीत करने की पद्धति अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों के उपबन्धों के विरुद्ध है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि क्षेत्रफल के आधार पर कराधान की पद्धति से निश्चित रूप से असमानता उत्पन्न होगी क्योंकि कारखानों के बारे में किसी उचित आधार पर कोई वर्गीकरण नहीं किया गया है और निगम टैक्सटाइल कारखाने में समाहित प्रत्येक वन और भूमि के वार्षिक किराया मूल्य को अवधारित करने में विधि का अनुपालन करने में असफल रहा। हम नहीं समझते कि इस विनिश्चय से कैसे कोई सहायता मिल सकती है क्योंकि यहां समान दर पर कोई उद्ग्रहण नहीं किया गया है और कृष्येतर निर्धारण प्रत्येक भू-खण्ड के बारे में उसकी स्थिति, उपयोग और भूमि के उपयोग से उद्भूत लाभ को ध्यान में रखते हुए किया जाना है।

17. इसके पश्चात् आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य बनाम नल राजा रेड्डी और अन्य[2] वाले मामले के प्रति निर्देश किया गया। आन्ध्र प्रदेश भू-राजस्व (अपर निर्धारण) और उपकर पुनरीक्षण अधिनियम, 1962 को असांविधानिक घोषित किया गया था, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सेच्य प्रदेश के आधार पर किए गए वर्गीकरण का जलप्रदाय की अवधि या भूमि की मिट्टी की क्वालिटी या उत्पादकता से कोई युक्तियुक्त सम्बन्ध नहीं है

---

[1] [1967] 2 एस० सी० आर० 679.

[2] [1967] 3 एस० सी० आर० 48.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और यह कि धारा 3 और 4 में यथास्थिति शुष्क अथवा नम भूमि के लिए न्यूनतम समान दर नियत करते हुए स्थापित टरम्स के सिद्धांत को नजरअन्दाज कर दिया गया है और इसलिए दोनों ही मामलों में किए गए वर्गीकरण के प्रयास का उस उद्देश्य अर्थात् निष्पक्ष निर्धारण और राजस्व निर्धारण की प्रक्रिया को समुचित रूप देने से कोई युक्तियुक्त सम्बन्ध नहीं है। पुनः हम यह देख पाने में असफल हैं कि कैसे यह विनिश्चय हमारी सहायता कर सकता है क्योंकि जनसंख्या की कसौटी पर आधारित भौगोलिक वर्गीकरण का आधार वर्गीकरण का वैध आधार है।

18. अगला मामला जिसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया, केरल राज्य बनाम हाजी के० हाजी के० कुट्टी नाहा और अन्य[1] वाला मामला था जिसमें इस न्यायालय ने केरल बिल्डिंग्स टैक्स ऐक्ट, 1961 को संविधान के समानता-खण्ड का उलंघनकारी होने के कारण विधि-विरुद्ध घोषित करने वाले केरल उच्च न्यायालय के विनिश्चय को कायम रखा था। न्यायालय ने न्यू मानक चौक[2] वाले विनिश्चय में अपने इस मत का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि किसी उचित वर्गीकरण के अभाव में जिसका प्रयास अभी न किया गया हो, किसी भवन के उपयोग और उस भवन को तैयार करने में उपयोग की गई सामग्री को नजरअन्दाज करते हुए उसके क्षेत्रफल के आधार पर कर उद्गृहीत करना ऐसी कार्यवाही है जिसका असमानों को समान मानने का हानिकारक प्रभाव हो सकता है और इसलिए वह संविधान के अनुच्छेद 14 का उलंघनकारी है। हमारे समक्ष उठाए गए मुद्दे से यह विनिश्चय सुसंगत नहीं है।

19. पूर्वोल्लिखित विनिश्चयों के मुकाबले हमारे लिए रंगीलदास वरजदास खण्डेवाला बनाम कलक्टर, सूरत और अन्य[3] वाले मामले के प्रति निर्देश करना अधिक लाभप्रद होगा। कृष्येतर निर्धारण करने की शक्ति को इस न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत किया गया था भले ही उसमें परिस्थितियां भिन्न रही हों। इस विवाद में अन्तर्वलित भूमि बाम्बे पर्सनल इनाम अबोलिशन ऐक्ट, 1952 के अधीन नियंत्रित था जिसकी सांविधानिक वैधता को चुनौती दी गई थी। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 31 क की छत्रछाया में सुरक्षित है।

---

[1] [1969] 1 एस० सी० आर० 645.

[2] [1967] 2 एस० सी० आर० 679.

[3] [1961] 1 एस० सी० आर० 951.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

20. उस मामले में दूसरी दलील यह दी गई थी कि कलक्टर मुम्बई भू-राजस्व संहिता की धारा 52 के अधीन कृष्येतर निर्धारण उद्ग्रहीत नहीं कर सकता था। इस दलील को अस्वीकार करते हुए इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब भूमि का उपयोग कृष्येतर प्रयोजन के लिए किया जा रहा हो तो ऐसी स्थिति में धारा 48 निर्धारण अधिकारी को भू-राजस्व के निर्धारण के समय इस बात के लिए बाध्य करती है कि वह निर्धारण के समय भूमि कृषि कार्य के लिए उपयोग में लाई जा रही है इस पर ध्यान दें और उसका निर्धारण उसी उपयोग के अनुसार करें। नियम 71 में शक्तियों के मनमाने प्रयोग के विरुद्ध तीन सुरक्षोपाय उपबंधित किए गए हैं अर्थात् (i) भूमि का उपयोग, (ii) भूमि के उपयोग से उद्भूत लाभ और (iii) भूमि की स्थिति।

21. इस संदर्भ में हम इस न्यायालय के नवीनतम विनिश्चय अविन्दर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य[1] वाले मामले के प्रति निर्देश कर सकते हैं। इस न्यायालय ने अनेक विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि विधायी शक्तियों के कुछ भाग का प्रत्योजन संविधान द्वारा सृष्ट की गई विभिन्न संस्थाओं को जीवित रखने और कार्यकरण के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। सुसंगत अवलोकन इस प्रकार उद्धृत किया जा सकता है—

"विधि रचना का कार्य किसी ऐसी योजना की भांति नहीं है जिसके समस्त विवरण पहले से ही तैयार हों और जिसमें कि एक बार स्थिति उत्पन्न हो जाने से प्रत्यायोजन की गतिशीलता आसानी से अनुसरित हो जाती है इस प्रकार हम संविधान सम्बन्धी दूसरे नियमों पर आते हैं जिसके अनुसार आवश्यक विधायी कृत्य प्रत्यायोजित नहीं किए जा सकते। किन्तु जो विधायी कृत्य आवश्यक नहीं हैं, भले ही वे अनगिनत हों और यहां तक कि महत्वपूर्ण भी हो सकते हैं, वे समुचित अभिकरणों को सौंपे जा सकते हैं। वास्तव में प्रत्येक प्रतिनिधि मालिक के प्राधिकार एवं नियंत्रण के अधीन हैं और प्रत्यायोजित की गई शक्तियों का प्रयोग वह मालिक द्वारा दिए गए निदेशों का पालन चाहे उनमें परिवर्तन किए गए हों या उन्हें रद्द कर दिया गया हो, के अधीन करना होता है। अतः तीसरा सिद्धान्त जो इससे निकलता है वह यह है कि यहां तक कि यदि प्रत्यायोजन किया भी गया हो, तब

[1] [1979] 3 उम० नि० प० 1093=[1979] 1 एस० सी० आर० 845.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

> भी प्रत्यायोजित विधान पर विधानमण्डल का नियंत्रण निरन्तर रूप में, जैसी कि सांविधानिक अपेक्षा है, बना रहना चाहिए। इन तीन सिद्धांतों के अधीन रहते हुए प्रत्यायोजन का कार्यकलाप उचित, आवश्यक और यहां तक कि परमावश्यक हो जाता है, यदि विधायी प्रक्रिया कुछ रुक न जाए या छिन्न न हो जाए या समाप्त ही न हो जाए।"

इस प्रकार यह बात पूर्णत: स्पष्ट है कि विधानमण्डल विवरणों का प्रत्यायोजन कर सकता है जिससे कि प्रतिनिधि द्वारा कार्यवाही की जा सके और यह विवरण असंख्य और महत्वपूर्ण हो सकते हैं और इसके बावजूद भी वे युक्तियुक्त अधिकरण को प्रत्यायोजित किए जा सकते हैं।

22. इस मानदण्ड को लागू करते हुए इस मामले में यह देखना है कि क्या प्रकट होता है। नियम 71 की रचना हैदराबाद भू-राजस्व अधिनियम की धारा 172 द्वारा प्रदत्त नियम बनाने की शक्तियों का प्रयोग करते हुए की गई है। नियम बनाने की इस शक्ति का प्रयोग अधिनियम के उपबन्धों को पूरा करने के प्रयोजन से किया जाता है। भू-राजस्व अधिनियम को अधिनियमित करने का मूल प्रयोजन राज्य और उसके अभिकरणों तथा उसके अधिकारियों को भूमि का निर्धारण और भू-राजस्व उद्गृहीत करने के लिए सशक्त करना है। जब कभी भूमि को कृषि से भिन्न, अन्य प्रयोजन के लिए परिवर्तित कर दिया जाता है तो कृष्येत्तर निर्धारण या विशेष निर्धारण करने की शक्ति प्रदान की जाती है किन्तु यह निर्धारण अधिनियम के प्रयोजन अर्थात् राजस्व उद्गृहीत और संगृहीत करने के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए संशोधित नियम 71 के अधीन अवधारित किया जाता है अर्थात् भूमि जिस प्रयोजन में लाई जा रही हैं और उसके ऐसे उपयोग सम्बन्धी परिवर्तन से उद्भूत लाभ तथा जनसंख्या से उसका सम्बन्ध, जैसा कि संशोधित नियम 71 के विभिन्न उपबन्धों में तथा आक्षेपित नियम के न्यूनतम और अधिकतम के अधीन अधिकथित किया गया है। इसके अतिरिक्त निर्धारण प्राधिकारी द्वारा किए गए आदेश के विरुद्ध अपील की जा सकती है और उसका पुनर्विलोकन किया जा सकता है। हमारी राय में अधिनियम और नियमों के अधीन पर्याप्त मार्गदर्शन दिए गए हैं जिनका अनुसरण करते हुए निर्धारण प्राधिकारी को कृष्येतर निर्धारण करना है। इस संदर्भ में विल्लीस द्वारा प्राय: उद्धृत अनुच्छेद के प्रति निर्देश करना लाभदायक होगा जो दोहराया गया है। यह इस प्रकार है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"राज्य को किसी वस्तु पर यह अधिरोपित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह समस्त वस्तुओं पर कर अधिरोपित कर दे। उसके लिए यह छूट है कि वह जिलों, उद्देश्यों, व्यक्तियों, पद्धतियों और इतना ही नहीं, कराधान की दरों का चुनाव करे यदि यह युक्तियुक्त रूप से ऐसा करना चाहे......।"

23. हमारी राय में दुर्भाग्यवश उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए गलती की है कि नियम 71 कृष्येतर प्रयोजन के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि पर उद्ग्रहणीय विशेष निर्धारण को अवधारित करने के विषय में राजस्व अधिकारियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान करती है। उच्च न्यायालय इस बात पर ध्यान देने में असफल रहा कि जिस क्षेत्राधिकार के भीतर राजस्व अधिकारी को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना है वह न्यूनतम और अधिकतम की सीमा द्वारा नियंत्रित कर दिया गया है और निर्धारण की मात्रा अवधारित करते समय राजस्व अधिकारी को इस बात को ध्यान में रखना होगा कि भूमि किस प्रयोजन के लिए उपयोग की जा रही है और उस उपयोग से भूमि से क्या लाभ उद्भूत हो रहा है। राजस्व अधिकारी द्वारा किए गए आदेश के विरुद्ध अपील की जा सकती है। अब जब कोई मांग उठाई जाती है तो सुसंगत नियमों के विभिन्न उपबन्धों के अधीन सदैव ही उसका विरोध किया जा सकता है और सम्बद्ध निर्धारिती को अपने आपको निर्दोष बताने का पूरा अवसर प्राप्त होगा। इस बात को नजरअन्दाज नहीं किया जाना चाहिए कि भू-राजस्व एक कर है और कराधान उपविधि की विधिमान्यता को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अवधारित किया जाना चाहिए कि कराधान के मामलों में न्यायालय चुनाव करने के लिए और प्रक्रम (स्लैब) की पद्धति अनुज्ञात करता है। इसलिए हमारी यह राय है कि राजस्व अधिकारियों के विवेकाधिकार नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त मार्गदर्शन दिए गए थे और नियम को इस आधार पर अभिखंडित नहीं किया जा सकता कि यह बहुत व्यापक मनमानी, अनिश्चित स्वनिर्णयाधिकार की शक्ति प्रदान करता है जो किसी भी मार्गदर्शन से नियंत्रित नहीं है।

24. इस बात पर जोर देने के लिए बहुत मामूली प्रयास किया गया कि कार्यपालिका को आवश्यक विधायी कृत्यों का अत्यधिक प्रत्यायोजन करते हुए न उसे केवल नियम अधिनियमित करने की बल्कि उसे संशोधित करने की शक्ति भी प्रत्यायोजित की गई जिससे कि कृष्येतर निर्धारण में अन्तर रखा जा सके। धारा 50 राज्य विधानमण्डल को निर्धारण उद्गृहीत करने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की स्पष्ट रूप से शक्ति प्रदान करती है और जब भूमि का उपयोग कृषि से भिन्न किसी अन्य प्रयोजन के लिए मोड़ दिया जाता है तो विधानमण्डल कृष्येतर निर्धारण उद्गृहीत करने की शक्ति प्रदान करता है। निर्धारण उद्गृहीत करने के लिए व्यापक उपबन्ध किए गए हैं। अधिनियम के उपबन्धों को प्रभावी करने के लिए धारा 172 में नियम बनाने की शक्ति प्रदान की गई है और उसके लिए, जैसा इसमें इसके पहले उपदर्शित किया गया है, मार्गदर्शन उपबन्धित किए गए हैं। इसलिए हम इस निवेदन से प्रभावित नहीं हुए कि इस मामले में विधानमण्डल अपने आवश्यक विधायी कृत्यों का कार्यपालिका के पक्ष में अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोषी है।

1970 की सिविल अपील सं० 1407 से 1413

25. इन अपीलों में मुम्बई भू-राजस्व नियम के संशोधित नियम 81 की वैधता को समान आधारों पर ही प्रश्नगत किया गया था और उन्हीं कारणों से यह चुनौती विफल होनी चाहिए। तथापि हम सुसंगत अधिनियम और इस मामले को नियंत्रित करने वाले नियमों की स्कीम का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

26. मुम्बई भू-राजस्व अधिनियम को 1879 में राजस्व अधिकारियों से सम्बन्धित विधि को समेकित और संशोधित करने के लिए तथा भू-राजस्व का निर्धारण और उसकी वसूली और भू-राजस्व प्रशासन से सम्बन्धित अन्य विषयों के लिए अधिनियमित किया गया था। धारा 48 भूमि के उपयोग के संदर्भ में (क) कृषि के प्रयोजन के लिए, (ख) निर्माण के प्रयोजन के लिए और (ग) कृषि और निर्माण से भिन्न प्रयोजन के लिए भू-राजस्व उद्गृहीत करने और उसका निर्धारण करने की शक्ति प्रदान करती है। अध्याय 8 के अन्तर्गत सर्वेक्षण, निर्धारण और भू-राजस्व के बंदोबस्त के बारे में उपबन्ध किए गए हैं। अध्याय 8-क में कृषि भूमि के निर्धारण और बंदोबस्त के बारे में उपबन्ध किए गए हैं। अध्याय 11 में राजस्व अधिकारियों द्वारा संहिता द्वारा अधिरोपित कृत्यों का अनुपालन करते हुए अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन और कृत्यों के अनुपालन के दौरान उनके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया उपबन्धित की गई है। अध्याय 13 में राजस्व अधिकारियों के आदेशों के विरुद्ध अपील और पुनर्विलोकन का उपबन्ध किया गया है। धारा 214 राज्य सरकार को अधिनियम के उपबन्धों से अनसंगत नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है जिससे कि अधिनियम के प्रयोजनों और उसके उद्देश्यों को पूरा किया जा सके और जिससे कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिनियम के प्रवर्तन से सम्बन्धित मामलों में समस्त व्यक्तियों का मार्गदर्शन हो सके। इन शक्तियों से सुसज्जित भू-राजस्व नियम, 1951 अधिनियमित किए गए। अध्याय 14 का शीर्ष "कृष्येतर निर्धारण अधिरोपित किया जाना और पुनरीक्षण" है जिसके अन्तर्गत कृष्येतर निर्धारण और उसके उद्ग्रहण के बारे में व्यापक उपबन्ध किए गए हैं। नियम 80 में ऐसी दशा में निर्धारण में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान की गई है जब कृषि प्रयोजन के लिए निर्धारित या धारित भूमि का उपयोग कृष्येतर प्रयोजन के लिए किया जाए। नियम 80-क में उस अवधि के अवसान पर जिसके लिए किसी भूमि का निर्धारण और उद्ग्रहण किया गया था, कृष्येतर निर्धारण के पुनरीक्षण की शक्ति प्रदान की गई है। नियम 81 में कृष्येतर निर्धारण की सामान्य दरें उपबंधित की गई हैं। इसे संशोधित किया गया और संशोधित नियम की विधिमान्यता को प्रश्नगत किया गया है। न्यूनतम और अधिकतम दरें जनसंख्या के आधार पर सीमांकित क्षेत्र के आधार पर भिन्न-भिन्न है और आगे यह उपबन्ध किया गया है कि न्यूनतम और अधिकतम दरों को नियत करते समय कृष्येतर प्रयोजन के लिए उपयोग में लाए जाने वाले स्थान में स्थित भूमि के मूल्य के सामान्य दर को सम्यक् रूप से ध्यान में रखा जाएगा। नियम 82 में कृष्येतर निर्धारण की दर के बारे में व्यापक उपबन्ध किए गए है जिसे उस उपबन्ध के अनुसार अवधारित किया जाएगा जहां कृष्येतर निर्धारण की विशेष दरें प्रवृत्त हैं। जहां कृष्येतर निर्धारण सामान्य दर पर उद्गृहीत किया जाता है वहां आयुक्त वह दर निर्धारित करने से पूर्व जिस पर किसी विशेष भू-खण्ड के लिए कृष्येतर निर्धारण उद्गृहीत किया जाएगा, अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले के उन ग्रामों, उप-नगरों और नगरों को जो उसके मण्डल में स्थित हैं, और जिनके लिए नियम 82 के अधीन कोई मानक दर विहित नही की गई है, दो वर्गों में विभाजित कर देगा। कृष्येतर निर्धारण करते समय भी आयुक्त कृष्येतर प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भूमि के स्थान और उसके मूल्य के स्तर को ध्यान में रखेगा। हमारी राय में अधिनियम और नियमों दोनों में ही पर्याप्त मार्गदर्शन दिए गए हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि आयुक्त को व्यापक मनमानी स्वनिर्णयाधिकार की शक्ति दी गई है। स्वनिर्णयाधिकार का प्रयोग न्यूनतम और अधिकतम के बीच ही किया जाना है; इसका मानदण्ड है उस क्षेत्र में कृष्येतर प्रयोजन के लिए उपयोग की जा रही भूमि, क्षेत्र को ग्रामों, उप-नगरों और नगरों के अनुसार विभाजित करना होगा और अन्ततः निर्धारण केवल भू-राजस्व का किया जा रहा है क्योंकि कृष्येत्तर निर्धारण और कुछ नहीं, भू-राजस्व ही है। हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आधार पर उपबन्ध को अभिखंडित करते हुए भूल की है कि आयुक्त को मनमाने स्वनिर्णयाधिकार प्राप्त थे जो किसी भी मार्गदर्शन से नियंत्रित नहीं थे। स्वनिर्णयाधिकार न केवल नियंत्रित है बल्कि अधिनियम और उसके नियमों में उसके लिए पर्याप्त मार्गदर्शन दिए गए हैं और उच्च न्यायालय ने संशोधित नियम 81 को अभिखंडित करने में भूल की है।

27. चलते-चलते अंत में इस बात पर जोर दिया गया कि कृष्येतर निर्धारण उद्गृहीत करने से पूर्व नोटिस जारी करने के लिए कोई उपबन्ध नहीं किया गया है। हम राजस्व प्राधिकारियों से सामान्यतः यह आशा करते हैं कि वे कृष्येतर निर्धारण के उद्ग्रहण के आदेश से प्रभावित व्यक्ति की सुनवाई करें अथवा अपील या पुनरीक्षण के समय उसकी सुनवाई करें। किन्तु इस आधार पर मांग को नामंजूर नहीं किया जा सकता क्योंकि जब कोई मांग की जाती है तो उसका विरोध किया जा सकता है और उसके विनिश्चय के विरुद्ध अपील की जा सकती है। यह नहीं कहा जा सकता कि नियम दूषित है क्योंकि इसके अन्तर्गत नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत को समाहित नहीं किया गया है।

28. उच्च न्यायालय के विनिश्चय को किसी अन्य आधार पर समर्थन देने का प्रयास नहीं किया गया। तदनुसार, ये अपीलें सफल होनी चाहिएं।

29. समस्त अपीलें मंजूर की जाती हैं और दोनों ही अपील-समूहों में उच्च न्यायालय का निर्णय अभिखंडित और अपास्त किया जाता है और प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए रिट पिटीशन समस्त खर्चों सहित खारिज किए जाते हैं।

अपीलें मंजूर की गई।

द्वि०/श्री०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मण और अन्य

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

(Lakshman and Others

v.

State of Madhya Pradesh)

राजाराम सपुत्र लाधूराम

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

(Rajaram S/o Ladhuram

v.

State of Madhya Pradesh)

किशन और अन्य

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

(Kishan and Others

v.

State of Madhya Pradesh)

तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चोगाराम और अन्य

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

(Chogaram and Others

v.

State of Madhya Pradesh)

(6 मई, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14, 19 और 301 [सपठित वन अधिनियम, 1927, धारा 32(1) और 76 तथा मध्य प्रदेश ग्रेजिंग रेट्स रूल्स, 1979, नियम 7, 6, 3(2) और 5]—मध्य प्रदेश सरकार द्वारा नियमावली के नियम 6 और 7 के अधीन मध्य प्रदेश से भिन्न अन्य राज्यों के व्यक्तियों से संबंधित पशुओं के बारे में अधिसूचना जारी की जाना—अधिसूचना में चरवाई की अधिक दर उद्गृहीत की जाना—राज्य में होकर गुजरने के लिए 45 दिनों की अधिकतम सीमा नियत की जाना—चरवाई की अधिक दर उद्गृहीत करना और राज्य में पशुओं के ठहरने की सीमा बांधना असांविधानिक है, तथापि राज्य में पशुओं के गुजरने का मार्ग नियत करना सांविधानिक है।

पिटीशनरों ने जो कि गुजरात और राजस्थान के खाना बदोशचरवाहे हैं और अपनी भेड़ों, बकरियों और अन्य पशुओं के साथ चरागाहों और पत्तियों की तलाश में एक से दूसरे स्थान घूमते रहते हैं संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन एक रिट पिटीशन फाइल किया है जिसमें उन्होंने मध्य प्रदेश राज्य के द्वारा जारी की गई तारीख 28.6.1979 की अधिसूचना को चुनौती दी है। रिट पिटीशन को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—मध्य प्रदेश के पशुओं के स्वामियों और अन्य राज्यों के पशुओं के स्वामियों (बाहरी पशुओं के स्वामियों के रूप में वर्णित) के बीच सुभिन्नता के लिए और "बाहरी पशु" कहे जाने वाले पशुओं के स्वामियों पर प्रतिषेधात्मक चराई दरों के उद्ग्रहण के लिए कोई युक्तियुक्त आधार दिखाई नहीं देता। मध्य प्रदेश के वन केवल मध्य प्रदेश के निवासियों के पशुओं के लिए आरक्षित चरागाह नहीं हैं, जैसे कि मध्य प्रदेश के कस्बों और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गांवों को केवल मध्य प्रदेश के मूल निवासियों के निवास के लिए ही आरक्षित नहीं रखा जा सकता। जन्म की अप्रत्याशित घटनाएं और भूपरिचय ऐसे भेदभाव के लिए कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं करते और इस प्रकार के मामलों में प्रतिकूल व्यवहार को प्राधिकृत नहीं कर सकते। ऐसा नहीं है कि भौगोलिक वर्गीकरण कभी अनुज्ञेय नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, किस राज्य द्वारा अपने राजस्व से चलाई जा रही शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के मामले में अपने निवासियों को दी जाने वाली वरीयता न्यायोचित कही जा सकती है। किन्तु अन्य राज्यों के पशुओं के स्वामियों के मामले में वस्तुतः शास्तिक चराई प्रभारों के उद्ग्रहण के लिए ऐसा कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। औचित्य समर्थन का एकमात्र प्रयास यह है कि "बाहरी पशुओं" के आने के परिणामस्वरूप राज्य की वन-संपदा नष्ट हो जाएगी। ऐसे औचित्य को समझना कठिन है। यदि मध्य प्रदेश के निवासियों के पशुओं को चरने दिया जाता है तो क्या इससे वही क्षति नहीं होगी जो कि अन्य राज्यों के व्यक्तियों के पशुओं से होती है ? निश्चित रूप से ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मध्य प्रदेश के पशु अन्य राज्यों के व्यक्तियों के पशुओं से कम क्षति पहुचाने वाले हैं। इसके अतिरिक्त, यदि संरक्षित वनों में सभी पशुओं को चराने से रोकने का उद्देश्य था तो इस प्रकार चराने को उसी प्रकार से रोका जा सकता था जैसे कि आरक्षित वनों के मामले में। तथाकथित "बाहरी पशुओं" के मामले में भी धनी स्वामियों के, पशु मध्य प्रदेश के वनों में चर सकते हैं किन्तु निर्धन चरवाहों के पशु ऐसा नहीं चर सकते। इसके अतिरिक्त युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए, जिन्हें जनसाधारण के हितों में अधिरोपित किया जा सकता है, किसी भी नागरिक को हमारे संविधान के अधीन भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक आने-जाने, भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में प्रवेश करने और बसने तथा कोई वृत्ति या आजीविका, व्यापार या कारबार चलाने का अधिकार है। अतः चरवाहों को, चाहे वे मध्य प्रदेश, गुजरात या राजस्थान के हों, अपनी वृत्ति के अनुसरण में अपने पशुओं के साथ मध्य प्रदेश राज्य से होकर गुजरने और पुनः गुजरने का अधिकार है। निस्संदेह, यह अधिकार जनसाधारण के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अधीन है। उन चरवाहों में जो मध्य प्रदेश के हैं और जो अन्य राज्यों के हैं, वर्गीकरण के लिए कोई युक्तियुक्त आधार दिखाई नहीं देता, न ही अन्य राज्यों के चरवाहों पर भारी प्रभार अधिरोपित करने वाले निर्बन्धन के पीछे कोई स्वीकार्य कारण ही दिखाई देता है। जो भी हो, अन्य राज्यों के व्यक्तियों के पशुओं के लिए उच्चतर चराई दरें प्रभारित करने में कोई औचित्य नहीं है। तथापि, उस रास्ते को, जिससे अभिवहन में पशुओं को ले जाना होता है, विहित करने की बावत हमें कोई गलत बात दिखाई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं देती क्योंकि स्पष्ट रूप से इसका उद्देश्य वनों को पशुओं के भटकने और मनमानी क्षति करने से रोकना है। तथापि, 45 दिन की अधिकतम सीमा को जिसमें पशुओं को मध्य प्रदेश राज्य से गुजर जाना चाहिए, न्यायोचित नहीं माना जा सकता मध्य प्रदेश के निवासियों के पशुओं के मामले में चराई दर एक वर्ष की अवधि के लिए उद्गृहीत की जाती है। जब कोई कारण नहीं है कि अन्य राज्यों के व्यक्तियों के मामले में वह प्रभार 45 दिन के लिए उद्गृहीत किया जाए। इस आशंका का, कि यदि पशुओं को लंबे समय तक एक ही स्थान में चरने दिया जाए तो चरागाह और पर्णावली बिल्कुल ही नष्ट हो सकते हैं, अन्य नियमों द्वारा ध्यान रखा गया है जिसमें यह विहित है कि पशु एक ही चरागाह एकक में एक मास से अधिक तक नहीं चर सकते। (पैरा 3)

आरम्भिक अधिकारिता : 1979 की रिट पिटीशन सं० 829 और 1980 की रिट पिटीशन सं० 1104, 200 और 2655.

(भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन)

पिटीशनरों की ओर से	सर्वश्री जी० एन० दीक्षित, एस० मार्कण्डेय, पी० सिन्हा, एम० एम० तिमई, जे० के० नैय्यर और एस० के० बिसारिया
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री एस० के० गम्भीर

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया।

न्यायाधिपति चिन्नप्पा रेड्डी—

पिटीशनर गुजरात और राजस्थान के खानाबदोश चरवाहे हैं, जोकि अपनी भेड़ों, बकरियों और अन्य पशुओं के साथ चारागाहों और पत्तियों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान घूमते रहते हैं। राज्यों की सीमाएं उनके लिए कोई रोध नहीं है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह उनके अपने और उनके पशुधन के जीवित रहने का प्रश्न है। अपने इधर-उधर घूमते रहने के दौरान वे कभी उत्तर प्रदेश और कभी महाराष्ट्र जाते हुए रास्ते में मध्य प्रदेश राज्य से होकर बहुधा गुजरते हैं। गुजरात और राजस्थान में सूखा पड़ने के समय विशिष्टतया ऐसा होता है। मध्य प्रदेश राज्य की सत्ता को यह आशंका हुई कि पशुओं के इन बहुत बड़े झुण्डों के बिना किसी अवरोध के मध्य प्रदेश से होकर गुजरने से उनकी वन-सम्पदा को बड़े पैमाने पर तबाही हो सकती है। इसलिए, उन्होंने बाहरी पशुओं (फारेन कैटल) के मध्य प्रदेश के वनों में चरने को रोकने के लिए एक योजना बनाई। एक क्षण के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस बात को भुला दिया गया कि भारत एक देश है और कोई भी भारतीय भारत के किसी संघटक राज्यों में विदेशी नहीं है। योजना इस प्रकार थी: भारतीय वन अधिनियम, 1927 राज्य सरकार को संरक्षित वनों से घास काटने और पशुओं को चराने को विनियमित करने के लिए धारा 32 (i), और साधारणतया अधिनियम के उपबन्धों का पालन करने (धारा 76) के लिए नियम बनाने हेतु समर्थ बनाता था। यहां पर यह बात ध्यान देने की है कि धारा 2 (i) में यथापरिभाषित "पशु" के अन्तर्गत भैंसों, भेड़ों, बकरियों और चरने वाले जानवरों की बहुत सी अन्य किस्में हैं। यह बात भी ध्यान देने की है कि हमारा इस मामले में सम्बन्ध केवल संरक्षित वनों से है न कि आरक्षित वनों से। इससे पूर्व मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 1974 में नियम बनाए गए थे, जिन्हें मध्य प्रदेश ग्रेज़िंग रेट्स रूल्स, 1974 कहा गया है, जिनके द्वारा चराई अनुज्ञप्तियां, अभिवहन चराई अनुज्ञपप्तियां, चराई दरें और अन्य विषयों के लिए उपबन्ध किया गया था। नियम 4 में वनखंडों में, बागान क्षेत्रों और अन्य ऐसे क्षेत्रों में, जिन्हें प्रभागीय वन अधिकारी ने चराने के लिए बन्द घोषित किया हो, चराने का प्रतिवेध था। नियम 3 में विशिष्ट चरागाह एककों में चराई के लिए अनुज्ञप्तियां जारी करने का उपबन्ध था; प्रत्येक वन परिसर (फारेस्ट रेन्ज) को, जब तक ऐसे चरागाह एककों की व्यवस्था नहीं हो जाती, एक चरागाह के रूप में माना जाना था। नियम 5 में मध्य प्रदेश राज्य में सरकारी वनों से होकर पशुओं के अभिवहन के लिए अभिवहन अनुज्ञप्तियों के जारी करने का उपबन्ध था जिससे कि अभिवहन में पशु किसी विशिष्ट चरागाह एकक में एक मास से अधिक तक लगातार न चरते रहें। नियम 6 में चराई दरों, वाणिज्यिक और अभिवहन, विहित करना था। यह भैंसों के लिए प्रति पशु प्रति वर्ष 6 रुपया था, जबकि भेड़ों और बकरियों के लिए प्रति पशु प्रति वर्ष 1 रुपया था, चाहे यह वाणिज्यिक हो या अभिवहन के प्रयोजन के लिए हो। नियम 7 में "निकटवर्ती राज्यों के बाहरी पशुओं" के लिए चराई दरें विहित की गई थीं। चाहे पशु वनों में चरें या वहां से होकर गुजरें, वनों में चरना भैंसों की दशा में प्रति पशु प्रतिवर्ष 10 रुपए की दर से और भेड़ों और बकरियों की दशा में प्रति पशु प्रति वर्ष 2 रुपए की दर से अनुज्ञात था। 1979 में 1974 में बनाए गए नियमों को अधिक्रांत कर दिया गया और नए नियम बनाए गए। ये नए नियम अब प्रवृत्त हैं। नियम 2 (5) के अनुसार आरक्षित वनों में चराना मना है। नियम 3 में इस प्रकार व्यवस्थित चरागाह एककों में चराई अनुज्ञप्तियां जारी करने के लिए उपबन्ध है। जब तक चरागाह एककों की व्यवस्था नहीं हो जाती, प्रत्येक वन परिसर को एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलग चरागाह एकक के रूप में माना जाना है । नियम 3 (2) में समय-समय पर अधिसूचित की जाने वाली दरों पर चराई प्रभारों के उद्ग्रहण का उपबंध है, नियम 4 में बन्द खण्डों, बागान क्षेत्रों और अन्य एसे क्षेत्रों, जिन्हें प्रभागीय वन अधिकारी ने चराई के लिए बन्द घोषित किया है, चराना निषिद्ध है । नियम 5 में सरकारी वनों से होकर पशुओं के अभिवहन के लिए चराई प्रभारों के संदाय पर अभिवहन चराई अनुज्ञप्तियों का उपबन्ध है जहां पर पशुओं के स्वामी मध्य प्रदेश के निवासी हैं, तथापि, अभिवहन में पशुओं को 30 दिन से अधिक तक लगातार एक ही चरागाह एकक में चराने की अनुज्ञा नहीं है । नियम 6 को समय-समय पर सरकार को मध्य प्रदेश के निवासियों द्वारा संदेय चराई प्रभारों और अभिवहन चराई प्रभारों की दरें अधिसूचित करने के लिए समर्थ करता है । नियम 7 में "निकटवर्ती राज्यों के बाहरी पशुओं" के लिए चराई की दरों के उद्ग्रहण का उपबन्ध है । उक्त नियम राज्य सरकार को मध्य प्रदेश राज्य से बाहर निवास करने वाले पशुओं के स्वामियों को समय-समय पर अधिसूचित किए जाने वाले प्रभारों का संदाय करने पर उनके पशुओं के लिए चराई या अभिवहन चराई सुविधाएं प्रतिषिद्ध करने, निर्बन्धित करने या अपने स्वविवेक से अनुदत्त करने के लिए समर्थ करता है । इसके अतिरिक्त नियम 7 (2) सरकार को विनिर्दिष्ट चरागाह क्षेत्र, पशुओं द्वारा बनाए जाने वाले रास्ते के प्रवेश और निकासी के स्थान, वह अवधि जिसके दौरान चराई या अभिवहन चराई इत्यादि पूरी हो जानी चाहिएं, विनिर्दिष्ट करने के लिए सशक्त करता है । 28 जून, 1979 को दो अधिसूचनाएं, एक नियम 6 के अधीन और दूसरी नियम 7 के अधीन जारी की गई थीं, जिनमें चराई और अभिवहन चराई अनुज्ञप्तियों के जारी करने के लिए प्रभारों की दरें अधिसूचित की गई थीं । मध्य प्रदेश के निवासियों के पशुओं की बाबत भेड़ों और बकरियों की दशा में प्रत्येक जानवर के लिए चराई की दर एक रुपया प्रति वर्ष थी । भैंसों की दशा में कोई प्रभार नहीं था । नियम 7 के अधीन जारी की गई अधिसूचना में मध्य प्रदेश राज्य से होकर गुजरने वाले राजस्थान और गुजरात के जानवरों द्वारा, अपनाए जाने वाले रास्ते विहित हैं । इसमें यह भी अनुबन्ध है कि अनुज्ञप्तियों के जारी होने के पश्चात् पशुओं के स्वामियों को अपने पशुओं को 45 दिन की अवधि के भीतर मध्य प्रदेश राज्य से होकर अवश्य ले जाना होगा । भैंसों के मामले में विहित चराई की दरें 10 रुपए प्रति पशु और भेड़ों और बकरियों की दशा में प्रति पशु 5 रुपए हैं ।

2. ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य प्रदेश सरकार अन्य राज्यों के पशुओं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(जिन्हें उक्त नियमों में 'बाहरी पशु' कहा गया है) के उनके मामले में, मध्य प्रदेश के निवासियों के पशुओं के मामले में चराई दरों के मुकाबले उच्चतर चराई दरें प्रभारिक करके आगमन को रोकना चाहती है। इन रिट पिटीशनों में, उच्चतर दरों के उद्ग्रहण, मध्य प्रदेश से अभिवहन के दौरान 'बाहरी पशुओं' द्वारा अपनाए जाने वाले रास्ते के विनिधान और इस अनुबंध को कि पशुओं को मध्य प्रदेश से 45 दिनों के भीतर चले जाना चाहिए, चुनौती दी गई है। यह दलील दी गई है कि अनुच्छेद 14 और 19 (ङ), (च) और (छ) के अधीन पिटीशनरों के मूल अधिकारों और अनुच्छेद 301 के अधीन अधिकार का उल्लघंन हुआ है। इसके विपरीत, मध्य प्रदेश सरकार की ओर से यह दलील दी गई है कि 'बाहरी पशुओं' के लिए चराई दरें, 'बाहरी पशुओं' द्वारा मध्य प्रदेश से अभिवहन के दौरान अपनाया जाने वाला रास्ता और वह अवधि जिसके लिए 'बाहरी पशु' मध्य प्रदेश की सीमाओं के भीतर रह सकते हैं, विहित करने वाले नियम राज्य की वन सम्पदा की तबाही का निवारण करने और उनका संरक्षण करने की दृष्टि से मध्य प्रदेश में और उससे होकर 'बाहरी पशु' के आगमन और गुजरने को विनियमित करने के लिए बनाए गए हैं।

3. हमें मध्य प्रदेश के पशुओं के स्वामियों और अन्य राज्यों के पशुओं के स्वामियों (बाहरी पशुओं के स्वामियों के रूप में वर्णित) के बीच सुभिन्नता के लिए और 'बाहरी पशु' कहे जाने वाले पशुओं के स्वामियों पर प्रतिषेधात्मक चराई दरों के उद्ग्रहण के लिए कोई युक्तियुक्त आधार दिखाई नहीं देता। मध्य प्रदेश के वन केवल मध्य प्रदेश के निवासियों के पशुओं के लिए आरक्षित चरागाह नहीं हैं, जैसे कि मध्य प्रदेश के कस्बों और गांवों को केवल मध्य प्रदेश के मूल निवासियों के निवास के लिए ही आरक्षित नहीं रखा जा सकता। जन्म की अप्रत्याशित घटनाएं और भूपरिचय ऐसे भेदभाव के लिए कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं करते और इस प्रकार के मामलों में प्रतिकूल व्यवहार के प्राधिकृत नहीं कर सकते। हम यह नहीं कहते कि भौगोलिक वर्गीकरण कभी अनुज्ञेय नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, किसी राज्य द्वारा अपने राजस्व से चलाई जा रही शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के मामले में अपने निवासियों को दी जाने वाली वरीयता न्यायोचित कही जा सकती है। किन्तु अन्य राज्यों के स्वामियों के मामले में वस्तुतः शास्तिक चराई प्रभारों के उद्ग्रहण के लिए ऐसा कोई न्यायौचित्य हमें दिखाई नहीं देता। औचित्य समर्थन का एकमात्र प्रयास यह है कि "बाहरी पशुओं" के आने के परिणामस्वरूप राज्य की वन-सम्पदा नष्ट हो जाएगी। ऐसे औचित्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को समझना कठिन है। यदि मध्य प्रदेश के निवासियों के पशुओं को चरने दिया जाता है तो क्या इससे वही क्षति नहीं होगी जो कि अन्य राज्यों के व्यक्तियों के पशुओं से होती है ? निश्चित रूप से ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मध्य प्रदेश के पशु अन्य राज्यों के व्यक्तियों के पशुओं से कम क्षति पहुंचाने वाले हैं। इसके अतिरिक्त, यदि संरक्षित वनों में सभी पशुओं को चराने से रोकने का उद्देश्य था तो इस प्रकार चराने को उसी प्रकार से रोका जा सकता था जैसे कि आरक्षित वनों के मामले में। तथाकथित "बाहरी पशुओं" के मामले में भी धनी स्वामियों के अपने पशु मध्य प्रदेश के वनों में चर सकते हैं किन्तु निर्धन चरवाहों के पशु ऐसा नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त, युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए, जिन्हें जनसाधारण के हितों में अधिरोपित किया जा सकता है, किसी भी नागरिक को हमारे संविधान के अधीन भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक आने-जाने, भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में प्रवेश करने और बसने तथा कोई वृत्ति या आजीविका, व्यापार या कारबार चलाने का अधिकार है। अतः, चरवाहों को, चाहे वे मध्य प्रदेश, गुजरात या राजस्थान के हों, अपनी वृत्ति के अनुसरण में अपने पशुओं के साथ मध्य प्रदेश राज्य से होकर गुजरने और पुनः गुजरने का अधिकार है। निस्संदेह, यह अधिकार जनसाधारण के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अधीन है। हमें उन चरवाहों में जो मध्य प्रदेश के हैं और जो अन्य राज्यों के हैं, वर्गीकरण के लिए कोई युक्तियुक्त आधार दिखाई नहीं देता ; न ही अन्य राज्यों के चरवाहों पर भारी प्रभार अधिरोपित करने वाले निर्बन्धन के पीछे कोई स्वीकार्य कारण ही दिखाई देता है। हमें विश्वास हो गया है कि जो भी हो, अन्य राज्यों के व्यक्तियों के पशुओं के लिए उच्चतर चराई दरें प्रभारित करने में कोई औचित्य नहीं है। तथापि, उस रास्ते का जिससे अभिवहन में पशुओं को ले जाना होता है, विहित करने की बाबत हमें कोई गलत बात दिखाई नहीं देती क्योंकि स्पष्ट रूप से इसका उद्देश्य वनों को पशुओं के भटकने और मनमानी क्षति करने से रोकना है। तथापि, हम 45 दिन की अधिकतम सीमा को जिसमें पशुओं को मध्य प्रदेश राज्य से गुजर जाना चाहिए, न्यायोचित नहीं मान सकते। मध्य प्रदेश के निवासियों के पशुओं के मामले में चराई दर एक वर्ष की अवधि के लिए उद्गृहीत की जाती है। तब कोई कारण नहीं है कि अन्य राज्यों के व्यक्तियों के मामले में वह प्रभार 45 दिन के लिए उद्गृहीत किया जाए। इस आशंका का, कि यदि पशुओं को लम्बे समय तक एक ही स्थान में चरने दिया जाए तो चरागाह और पर्णावली बिल्कुल ही नष्ट हो सकते हैं, अन्य नियमों द्वारा ध्यान रखा गया है जिनमें यह विहित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है कि पशु एक ही चरागाह एकक में एक मास से अधिक तक नहीं चर सकते। इन परिस्थितियों में, हम मध्य प्रदेश राज्य से भिन्न राज्यों के व्यक्तियों के पशुओं की दशा में उच्चतर चराई दरों के उद्ग्रहण को अभिखंडित करते हैं और प्रत्यर्थियों को यह निदेश देते हैं कि वे वही दरें उद्गृहीत की जाएं जो कि मध्य प्रदेश के निवासियों के पशुओं के मामले में उद्गृहीत की गई हैं। 45 दिन के रुकने की सीमा को भी असांविधानिक घोषित किया जाता है। तदनुसार, रिट पिटीशन मंजूर किए जाते हैं। पिटीशनरों को उनके खर्चे मिलेंगे।

रिट पिटीशन मंजूर किए गए।

घ०/स०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भगवन्त सिंह

बनाम

पुलिस आयुक्त, दिल्ली

(Bhagwant Singh

v.

Commissioner of Police, Delhi)

(6 मई, 1983)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और आर० एस० पाठक)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32 [सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 173 (2) और भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 302 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 4]—पुलिस की निष्क्रियता—दहेज के कारण हुई पुत्री की मृत्यु के बारे में पिता द्वारा पुलिस के पक्षपातपूर्ण अन्वेषण के विरुद्ध पिटीशन का प्रस्तुत किया जाना—पुलिस से विस्तृत स्पष्टीकरण देने की मांग की जानी—पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण में अविश्वास प्रकट किया जाना—अन्वेषण करने वाले केन्द्रीय जांच ब्यूरो को शीघ्रता से निपटारा करने का निदेश दिया जाना—पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में, पदधारी पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कोई दाण्डिक कार्यवाही नहीं की जा सकती।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32 [सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 190 और 192 तथा भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45)]—धारा 302, 306 और 309—अधिकारिता—उच्चतम न्यायालय पुलिस की निष्क्रियता के विरुद्ध विनिश्चय नहीं कर सकता—यदि यह हत्या या आत्म-हत्या का मामला है; तो एक मात्र समुचित या अधिकारिता प्राप्त न्यायालय ही उस प्रश्न के बारे में अन्वेषण कर सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1973 का 2)—धारा 172 (1)—पुलिस केस डायरी—पुलिस केस डायरी में प्रविष्टियां पूर्ण ब्यौरे सहित, सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख करते हुए सावधानीपूर्वक कालानुक्रम में और पूर्ण विषयनिष्ठा सहित शीघ्रता से दर्ज की जानी चाहिएं ।

पिटीशनर (भगवन्त सिंह) भारतीय राजस्व सेवा का सदस्य है। उनकी पुत्री गुरिन्दर कौर, उसकी तीन सन्तान में से एक है जो कुशाग्र बुद्धि बालिका थी । सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई थी और लेडी इरविन कालेज से बी० एस सी० (गृह विज्ञान) की डिग्री प्राप्त की थी । वह चरित्र सम्पन्न और सुन्दर थी । पिता ऐसी पुत्री पाकर गौरवान्वित थे । पिटीशनर और करतार सिंह साहनी कार्यालय में सहकर्मी थे और 30 वर्षों से उनमें मित्रता थी । करतार सिंह साहनी का एक पुत्र है जो कश्मीरी गेट, दिल्ली में मोटर पार्ट्स की दुकान करता है । दोनों परिवारों के सम्बन्ध को दृष्टि में रखते हुए गुरिन्दर और अमरजीत सिंह के बीच विवाह का विनिश्चय किया गया । पिटीशनर प्रारंभ से ही दहेज प्रथा का विरोधी था। गुरिन्दर कौर भी अन्य बालिकाओं के साथ महाविद्यालय में दहेज विरोधी आन्दोलनों में सक्रिय रही थी । पिटीशनर के अनुसार, सम्बन्धित माता-पिता के बीच इस बात का अनुबन्ध किया गया था कि विवाह के समय दहेज की मांग नहीं की जाएगी । विवाह भली-भांति सम्पन्न हो गया । कुछ समय शान्तिपूर्वक व्यतीत हो गया, किन्तु इसके पश्चात् गुरिन्दर कौर की ससुराल वालों की ओर से धन और आभूषण के रूप में दहेज की मांग की गई, किन्तु पिटीशनर दहेज न देने की अपनी धारणा पर दृढ़ रहा । इसके पश्चात् यह कहा गया है कि गुरिन्दर कौर के साथ बुरा व्यवहार किया जाने लगा । वह गर्भवती थी किन्तु दमनात्मक दुर्व्यहार के कारण उसका गर्भपात हो गया । पिटीशनर के अनुसार उसकी पुत्री के साथ लगातार दुर्व्यवहार होता रहा । इतना ही नहीं, बल्कि अपना कारबार बढ़ाने के लिए ससुराल वालों की ओर से 50,000 रुपये की भी मांग की गई । पिटीशनर दहेज के रूप में कुछ भी देने के लिए तैयार नहीं थे और गुरिन्दर कौर के प्रति उसके ससुराल वालों का व्यवहार बद से बदतर होता गया और उधर पति-पत्नी के बीच भी मनमुटाव और विद्वेष उत्पन्न हो गया । विवाह के दस मास पश्चात् गुरिन्दर कौर को, जिसकी उम्र 22 वर्ष थी, स्नान घर में मिट्टी के तेल से आग लगने से जल जाने के उत्पीड़न से मृत पाया गया था । पुलिस का कहना था कि यह आत्महत्या का मामला है, किन्तु उसके विपरीत पिटीशनर ने इसे हत्या का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मामला बताया। पुलिस ने 29 अगस्त, 1981 तक अन्वेषण जारी रखा और यह अनुमान लगाया कि यह आत्महत्या का मामला है। इसके पश्चात्, मामला केन्द्रीय जांच ब्यूरो के सुपुर्द कर दिया गया। पिटीशनर ने इस रिट पिटीशन में अपनी विवाहित पुत्री की मृत्यु के विषय में अनुतोष की मांग की है। रिट पिटीशन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—यह स्वीकार किया गया है कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 306 (4) के प्रति निर्देश को तारीख 15 मई, 1981 को शामिल किया गया था, इसलिए पूर्वतर कथन करने के लोप को भूल के रूप में स्पष्ट किया गया था। पुलिस आयुक्त ने अन्वेषण में हुए विलम्ब का कारण यह बताया है कि श्री भगवन्त सिंह ने 21 अप्रैल, 1981 को ही अपना कथन अभिलिखित होने दिया, न कि उससे पूर्व। (पैरा 10)

ऐसे मामलों में तत्व यह है कि घटना की सूचना मिलने पर तुरन्त घटनास्थल का निरीक्षण करने पर उस आइने को पुलिस द्वारा अपने कब्जे में लिया जाना चाहिए था और निशानों के अस्तित्व तथा पहचान के संबंध में तत्काल रिपोर्ट के लिए उसे तुरन्त सेन्ट्रल फॉरेंसिक साइंस लेबोरेटरी के विशेषज्ञों के सुपुर्द किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में "विलम्ब" एक तात्विक मुद्दा है और इसके परिणामस्वरूप प्रायः महत्वपूर्ण सुराग मिट सकता है। (पैरा 11)

यह संकेत करना पर्याप्त है कि पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण से विश्वास उत्पन्न नहीं होता। वस्तुतः स्वयं अपराध शाखा द्वारा उसे तात्विक रूप से अपर्याप्त माना गया है क्योंकि 12 मई, 1981 को यह संकेत करते हुए अपराध शाखा द्वारा दिल्ली पुलिस उपायुक्त को एक ज्ञापन भेजा गया था कि फाइल से यह दर्शित होता है कि महत्वपूर्ण व्यक्तियों के कथन अभिलिखित नहीं किए गए थे। (पैरा 15)

घटना के बाद पुलिस द्वारा अनियमित रूप से और निरुत्साहपूर्वक अन्वेषण किया था और इससे यह दर्शित होता है कि मामले की सच्चाई का पता लगाने की आकस्मिक आवश्यकता की चिन्ता नहीं की गई थी। इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि मामले के अन्वेषण में लापरवाही रही है और यह तीक्ष्णता के अभाव से और अयुक्तियुक्त विलम्बकारिता से ग्रस्त रहा है। (पैरा 16)

पुलिस केस डायरी में कि गई प्रविष्टि से यह प्रतीत नहीं होता है कि यह पूर्णतया उतनी ईमानदारी से और दक्षतापूर्वक दर्ज किया गया है जितना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऐसी दस्तावेज की बाबत विधि द्वारा अपेक्षित है। (पैरा 17)

जहां ऐसे मामलों में मृत्यु अपराध के कारण होती है, वहां अपराधकर्ता विधि के दायरे से प्रायः छुट जाते हैं क्योंकि पुलिस द्वारा किया अन्वेषण पर्याप्त नहीं होता। यदि ऐसे मामलों में शीघ्रता से अन्वेषण करने के लिए समुचित रूप से उच्च प्राथमिकता दी जाए, यदि ऐसी घटनाओं का शीघ्रता से अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए विशेष मजिस्ट्रीरियल मशीनरी सृजित की जाए और ऐसे मामलों के विचित्र लक्षणों पर विचार करते हुए, अन्वेषण सम्बन्ध दक्ष तकनीक और प्रक्रिया अपनाई जाए तो इससे महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त होगी। पुलिस बल में पर्याप्त रैंक और हैसियत वाली एक महिला पुलिस अधिकारी प्रारंभ में ही अन्वेषण के लिए सहयोजित की जानी चाहिए। ऐसे मामलों में जहां अपने पति के घर में कोई पत्नी संदेहजनक परिस्थितियों में मर जाती है वहां परिस्थितियों को अभिनिश्चित करना अनिवार्यतः अत्यधिक कठिन विषय है जिस में वह घटना होती है। चूंकि ऐसी घटना पति के घरमें होती है इसलिए महत्वपूर्ण साक्षी प्रायः पति और उसके माता-पिता या पति के साथ रहने वाले उसके अन्य नातेदार होते हैं। चाहे रसोई घर में स्टोव पर खाना बनाया जा रहा था, जिसके कारण घटना हुई थी, या घर में निवास करने वाले के अनुसार, आत्म-हत्या के लिए अबोध्य तर्क दिया गया हो या वस्तुतः युवा पत्नी हत्या की शिकार हुई हो, ये ऐसे विषय हैं जिनमें किसी महिला के दैहिक अस्तित्व की ठीक से जानकारी अत्यन्त उल्लेखनीय है। (पैरा 19)

कोरोनर अधिनियम के लागू किए जाने से आहत व्यक्ति के मृत्यु के बारे में तुरन्त जांच करना संभव होगा। (पैरा 21)

आरम्भिक (रिट) अधिकारिता : 1981 का रिट पिटीशन सं० 6607.

(संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन)

पिटीशनर की ओर से	श्री कपिल सिबल
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री एन० सी० तालुकदार, आर० एन० पोद्दार।
केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से	कुमारी पी० सुभाषिणी
मध्यक्षेप की ओर से	सर्वश्री दानी लतीफ और एन० के० अग्रवाल।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति आर० एस० पाठक ने दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायाधिपति पाठक—

पिटीशनर श्री भगवंत सिंह ने अपनी विवाहित पुत्री गुरिन्दर कौर की मृत्यु के विषय में अनुतोष के लिए इस न्यायालय से आवेदन किया है।

2. श्री भगवंत सिंह भारतीय राजस्व सेवा के सदस्य हैं। उनकी पुत्री गुरिन्दर कौर, उनकी तीन सन्तान में से एक थी। वह विलक्षण और कुशाग्र बुद्धि बालिका थी, जिसने सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त की और लेडी इरविन कालेज से बी० एस सी० (गृह विज्ञान) की डिग्री प्राप्त की थी। वह देखने में सुन्दर थी और उसका व्यक्तित्व आकर्षक था और उसकी शिक्षा और आचरण प्रशंसनीय था। स्पष्ट है कि पिता अपनी पुत्री से गौरवान्वित थे।

3. श्री भगवंत सिंह और श्री करतार सिंह साहनी कार्यालय में सहकर्मी थे। वे 30 वर्षों से मित्र थे। श्री करतार सिंह का एक पुत्र अमरजीत सिंह है। यह परिवार जे-7/93, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली में निवास करता है। उनका पुत्र कश्मीरी गेट दिल्ली में मोटर पार्ट्स की दुकान करता है। यह प्रतीत होता है कि दोनों सहकर्मियों ने दोनों परिवारों के निकट सम्बन्ध को दृष्टि में रखते हुए गुरिन्दर कौर और अमरजीत सिंह के बीच विवाह का विनिश्चय किया।

4. यह प्रतीत होता है कि श्री भगवंत सिंह प्रारम्भ से ही दहेज प्रथा की बुराइयों का विरोधी था और इस भावना को गुरिन्दर कौर ने भी गहराई से अपनाया हुआ था क्योंकि यह प्रतीत होता है कि उसने अपने महाविद्यालय के अन्य बालिकाओं के साथ "दहेज विरोधी आंदोलन" के पक्ष में एक प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किये थे। श्री भगवंत सिंह के अनुसार संबंधित माता-पिता के बीच इस बात का अनुबंध किया गया था कि विवाह के समय दहेज की मांग नहीं की जाएगी। विवाह भली-भांति सम्पन्न हो गया और युवक और युवती ने कुछ मास तक सामंजस्यपूर्वक समय व्यतीत किया, किन्तु शीघ्र ही यह अभिकथित किया गया कि गुरिन्दर कौर को अपनी सास से यह संकेत मिला कि उसके माता-पिता की ओर से धन और आभूषण के रूप में अनुदान अपेक्षित है। इस बात की सूचना मिलने पर श्री भगवंत सिंह ने इस बात की उपेक्षा करने का निश्चय किया कि ये इस धारणा के प्रति दृढ़ थे कि दहेज प्राप्त करने का कोई भी कपटपूर्ण प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए। यह अभिकथन किया गया है कि इस बात से गुरिन्दर कौर के साथ उसकी सास द्वारा लगातार बुरा व्यवहार किया जाने लगा। वह गर्भवती थी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किन्तु घर में दमनात्मक दुर्व्यवहार के कारण उसका गर्भपात हो गया और उसे परिचर्या-गृह (नरसिंग होम) में दाखिल किया गया।

5. श्री भगवंत सिंह के अनुसार, उसकी पुत्री के साथ लगातार दुर्व्यवहार होता रहा। प्रायः उसे इस बात का ताना मारा जाता था कि जब तक वह अपनी सास को नेकलेस भेंट करने की कुटुम्ब की परम्परा को नहीं निभाती तब तक उसके कोई बच्चा नहीं होगा। यह कहा जाता है कि गुरिन्दर कौर पर लगातार दबाव दिया जाता रहा और यह बात बहुत पहले की नहीं है जब उसके पति ने श्री भगवंत सिंह को यह संसूचित किया था कि वह अपने कारबार को चलाने के लिए लगभग 50,000 रुपये की अपेक्षा करता है। क्योंकि श्री भगवंत सिंह इस दबाव को न मानने के लिए दृढ़ थे इसलिए यह अभिकथन किया गया है कि बालिका को निरन्तर परेशान किया जाता रहा है और उसकी सास और ससुर ने उसे यह स्पष्ट कर दिया कि उन्हें इस विवाह से बड़ा दुःख है। उसके प्रति उसके पति और उसके कुटुम्ब के लोगों का व्यवहार और सम्बन्ध बद से बदतर होते गये और वह सम्मान जो सामान्यतया किसी घर में किसी बंधु के लिए अपेक्षित है उसके स्थान पर उसे लगातार तिरस्कार और अवमान तथा द्वेष मिलता रहा। यह अविस्मरणीय है कि गुरिन्दर कौर अच्छे कुटुम्ब की बालिका थी और वह सदचरित्र और सुशिक्षित थी। उसका लालन-पालन ऐसे घर में हुआ था जहां पर दहेज प्रथा को बुराई के रूप में समझा जाता था और उसका विरोध किया जाता था। इसलिए युक्तियुक्त रूप से यह माना जा सकता है कि उसने अपने पिता के विरुद्ध निर्दिष्ट उद्दापन (धन ऐंठने) के प्रयत्न के विरुद्ध दृढ़ता से विद्रोह किया था। यह अनुमान लगाना युक्तियुक्त है कि युवा पति-पत्नी के बीच का सम्बन्ध कटु मनमुटाव के कारण दूषित हो गया और वह स्पष्ट और निरन्तर विद्वेष के वातावरण वाले घर में रहने लगी।

6. विवाह के दस मास पश्चात् 9 अगस्त, 1980 को गुरिन्दर कौर को, जिसकी उम्र 22 वर्ष थी, स्नान घर में मिट्टी के तेल की आग से जलने के उत्पीड़न से मृत पाया गया था। करतार सिंह के कुटुम्ब के अनुसार, कुटुम्ब के सभी सदस्य प्रातःकाल गुरुद्वारा बंगला साहिब चले गए थे और वापस लौटने पर उस लड़की ने कुटुम्ब के आठ सदस्यों के लिए कलेवा (जलपान) तैयार किया था। बाद में उसने और उसके पति ने जलपान किया था और यह कहा जाता है कि लगभग साढ़े दस बजे पूर्वाह्न पति अपने कार्य पर चला गया। इसके पश्चात् एक घण्टे के भीतर उस लड़की को स्नान घर में मृत पाया गया था। इस दुःखद घटना से सर्वत्र दुःख का वातावरण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

छा गया और समाचार-पत्रों द्वारा दिए गए वृतान्त पर प्रेस में अनेक पत्र आने लगे थे जिनमें दहेज प्रथा की भर्त्सना की गई थी और तत्काल विधायी और सामाजिक उपाय द्वारा सुधार करने की मांग की गई थी। यह प्रतीत होता है कि पुलिस प्राधिकारी को यह विश्वास करना पड़ा कि मामला आत्म-हत्या का था, किन्तु श्री भगवंत सिंह को इस बात का विश्वास है कि हत्या से प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता।

7. हमारे लिए इस मामले में इस प्रश्न पर विचार करना संभव नहीं है और न ही हमारे लिए ऐसा करना सही होगा कि गुरिन्दर कौर ने आत्म-हत्या की थी या उसकी हत्या कर दी गई थी। यह ऐसा विषय है जो कि अधिकारिता वाले किसी न्यायालय द्वारा किसी दाण्डिक आरोप के विचारण में समुचित रूप से अन्तर्वलित है। यहां हमारा सम्बन्ध केवल इस प्रश्न की परीक्षा करने से है कि क्या गुरिन्दर कौर की मृत्यु की सूचना देने के पश्चात् पुलिस प्राधिकारियों ने स्वयं वैसे ही संचालन किया जैसा कि उनसे विधि और न्याय द्वारा अपेक्षित है। श्री पी० एस० भिण्डर, पुलिस आयुक्त, दिल्ली के अक्तूबर, 1981 के प्रतिशपथ-पत्र में यह उल्लेख किया गया है कि गुरिन्दर कौर को 9 अगस्त, 1980 को पूर्वाह्न 12-15 बजे राम मनोहर लोहिया अस्पताल में उसके ससुर करतार सिंह साहनी द्वारा दाखिल किया गया था उसके शरीर पर "सौ प्रतिशत जलने के घाव" थे और सूचना मिलने पर पुलिस उपनिरीक्षक ने अस्पताल में निरीक्षण किया और 3-10 बजे अपराह्न उस डाक्टर द्वारा जो उस समय ड्यूटी पर था यह बताया गया था कि गुरिन्दर कौर 'कथन' करने योग्य नहीं थी। उसकी जांच से उसे यह विश्वास करना पड़ा था कि गुरिन्दर कौर ने आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया था। उसने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं० 87 से तारीख 9 अगस्त, 1980 के रूप में मामला दर्ज किया था और अन्वेषण प्रारम्भ किया। उसी दिन रात को 8-15 पर गुरिन्दर कौर की मृत्यु हो गई। पुलिस के अन्वेषण से यह बात प्रकाश में आई कि गुरिन्दर कौर को मकान के प्रथम तल के स्नान घर में लगभग 11 बजे पूर्वाह्न 9 अगस्त, 1980 को जलते हुए पाया गया था। पुलिस ने यह बताया है कि स्नान घर अन्दर से बन्द पाया गया था और इसे श्रीमती सतिन्दर कौर, ज्येष्ठ सास की सहायता से सेवक रामू द्वारा तोड़कर खोला गया था। जब आग बुझा दी गई थी तो गुरिन्दर कौर को अस्पताल लाया गया था। यह कहा गया है कि मिट्टी के तेल का 5 लिटर का टिन, 2 माचिस और एक आइना पाया गया था जिसके तल पर साबुन की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

टिकिया से "किसी को उत्तरदायी न ठहराया जाए पिंकी" शब्द लिखा पाया गया था। इस प्रयोजन के लिए सेन्ट्रल फोरेन्सिक साइन्स लेबोरेटरी के बुलाए गए विशेषज्ञों की यह राय थी कि आइने पर का लेख गुरिन्दर कौर का था। यह भी बताया गया था कि स्नान घर का दरवाजा बाहर से तोड़कर खोला गया होगा।

8. जब श्री भगवन्त सिंह ने उस रीति के बारे में परिवाद किया जिसमें पुलिस द्वारा अन्वेषण किया जा रहा था और उसने उन परिस्थितियों के सम्बन्ध में संदेह व्यक्त किया जिनमें उसकी पुत्री की मृत्यु हुई थी, तब पुलिस ने 29 नवम्बर, 1980 को उस आरोप में दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 4 जोड़ दी। तत्पश्चात् 15 मई, 1981 को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 306 के प्रति निर्देश भी सम्मिलित कर लिया गया। पुलिस ने 21 अगस्त, 1981 तक अपना अन्वेषण चालू रखा और अन्वेषण से उन्होंने यह अनुमान लगाया कि यह आत्म-हत्या का मामला था। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राज्य मंत्री द्वारा उसे केन्द्रीय जांच ब्यूरो के सुपुर्द किया गया था और वह फाइल दस सितम्बर, 1981 को उसके निदेशक को भेज दी गई थी। इस कारण यह कहा जाता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (2) के अधीन रिपोर्ट फाइल करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

9. श्री भगवन्त सिंह ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि इस मामले में अन्वेषक अभिकरण (इन्वेस्टीगेटिंग ऐजेन्सी) ने सद्भाविक रूप में अपने उस कानूनी कर्त्तव्यों को पूरा नहीं किया और जानबूझकर पुलिस रिपोर्ट फाइल नहीं की और यह सुनिश्चित करने के लिए, कि इस मामले में अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई थी अन्वेषण की प्रगति में विलम्ब किया। उसने पुलिस के उस वृत्तांत का विवाद किया कि अस्पताल में ड्यूटी पर तैनात डाक्टर से यह कहा गया था कि गुरिन्दर कौर कथन करने के योग्य नहीं थी और यह कि उसकी मृत्यु के पूर्व उसके कथन अभिप्राप्त करना पुलिस के लिए संभव नहीं था। उसने लड़की के ससुर श्री करतार सिंह साहनी के कथन के प्रति संदेह किया जो कि 13 नवम्बर, 1980 को किया गया था जिसमें उन्होंने यह प्रकट किया था कि श्री भगवन्त सिंह अस्पताल आये थे और उन्होंने यह पाया था कि उनकी पुत्री यदा-कदा बातचीत कर रही थी और यह कि 2-30 पूर्वाह्न से 8-30 पूर्वाह्न की अवधि के दौरान श्री भगवन्त सिंह, उसकी पत्नी, उसकी भतीजी, जो कि डाक्टर थी और उसके बड़े भाई बलवन्त सिंह तथा उसकी पत्नी और दो पुत्र, लड़की से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बात-चीत कर रहे थे। भगवन्त सिंह ने अपने शपथ-पत्र में 9 अगस्त, 1980 को पुलिस द्वारा अभिलिखित श्रीमती सतिन्दर कौर के कथन की ओर भी संकेत किया जहां उसने यह कथन किया था कि उस दुःखद घटना के समय वह ऊपर (मंजिल की ओर दौड़ी) और बेहोश हो गई और जब वह होश में आई तब उसके ससुर, सास, बहनोई, रमन दीप सिंह सहित, जो कि दूसरे तल पर रहता था, अनेक व्यक्ति उपस्थित थे। यह बताया गया है कि यदि यह कथन सही है तो श्री करतार सिंह के कुटुम्ब द्वारा किया गया यह वृत्तांत स्वीकार करना संभव नहीं है कि सेवक रामू और श्रीमती सतविन्दर कौर की सहायता से स्नान-घर के दरवाजे को तोड़कर खोलना पड़ा क्योंकि वह अन्दर से बन्द था। यह भी बताया गया कि सेवक रामू और श्रीमती सतविन्दर कौर अभिकथित रूप से उस समय उस मकान के प्रथम तल पर थे, जब मकान के प्रथम तल पर स्नान घर में आग लग गई थी। जहां उसकी सास गुरुबचन कौर उपस्थित थी। गुरुबचन कौर उसके कथन के अनुसार उस समय मकान के प्रथम तल पर स्नान घर से कुछ गज दूर कपड़ों पर इस्तरी कर रही थी और इस दुःखद घटना को साक्षयित करने वाली प्रथम व्यक्ति रही होगी और फिर भी, उसे प्रश्नगत किया गया है, उसके लिए कोई कारण नहीं है कि दरवाजे को तोड़कर खोलने में सेवक रामू की सर्वप्रथम सहायता उसके द्वारा क्यों नहीं की गई यदि वस्तुतः दरवाजा तोड़कर खोला जाना था। यह भी अभिकथन किया गया है कि पुलिस ने स्नान घर में साबुन की उस टिकिया को भी कब्जे में लेने का प्रयत्न नहीं किया जिसके बारे में यह अनुमान किया गया है कि मृतक ने आइने पर लिखा था, उन्होंने उस कम्बल को भी कब्जे में नहीं लिया था जो, श्री करतार सिंह साहनी के कथन के अनुसार आग को बुझाने में काम में लाया गया था। अपने शपथ-पत्र में श्री भगवन्त सिंह द्वारा अनेक संदेहजनक परिस्थितियों का वर्णन किया गया था और सेन्ट्रल फोरेन्सिक साइंस लेबोरेटरी के विशेषज्ञों की राय का इस आधार पर प्रतिवाद किया गया था कि इसे आइने की परीक्षा करने के बाद एक मास से अधिक के पश्चात् परिदत्त किया गया था। उन्होंने पुलिस के प्रकथन का खण्डन करने का भी प्रयत्न किया कि उन्होंने प्रारम्भ में ही अन्वेषण नहीं किया और यह कि उन्होंने मूलतः यह बताया था कि उन्हें इसमें किसी प्रकार की बेईमानी का संदेह नहीं होता। इसके विपरीत वह इस निमित्त उच्चतम न्यायालय में जाकर अपनी पुत्री की मृत्यु के हेतुक के बारे में प्रभावी रूप से अन्वेषण सुनिश्चित कराने के लिए किए गए निरन्तर प्रयत्नों पर विस्तृत रूप से विचार किए गए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

10. जब यह मामला इस न्यायालय के समक्ष आया तो अन्वेषण के सम्बन्ध में पुलिस द्वारा की गई अनेक कार्यवाहियों की पूर्ण विशिष्टियां उपवर्णित करते हुए पुलिस आयुक्त द्वारा ब्यौरेवार शपथपत्र फाइल करने का निदेश देने के लिए एक आदेश दिया गया था। पुलिस आयुक्त श्री पी० एस० भिन्डर द्वारा एक और प्रतिशपथ पत्र फाइल किया गया था। उस प्रतिशपथ-पत्र में यह उल्लेख किया गया है कि अन्वेषक अधिकारी अन्य मामलों का अन्वेषण करने में तथा विधि और व्यवस्था बनाए रखने में व्यस्त रहा और यह विशेष मामला उप-निरीक्षक अमृतलाल के पास था जिसके पास उस समय 9 अगस्त, 1980 से 11 अगस्त, 1980 तक 12 मामले थे और इसके पश्चात् उसे उप-निरीक्षक श्री राम के सुपुर्द किया गया जिसके पास उस समय 12 अगस्त, 1980 से 13 नवम्बर, 1980 तक 29 मामले थे और तत्पश्चात् उसे निरीक्षक चरण दास के सुपुर्द किया गया जिसके पास 13 नवम्बर, 1980 से 28 मई, 1981 तक केवल एक मामला था, यह उल्लेख किया गया है कि ये पुलिस अधिकारी "पूरे समय इस मामले का अन्वेषण नहीं कर सकते" क्योंकि उन्हें उन मामलों के अतिरिक्त जो उनके हाथों में थे, पुलिस थाने के दिन-प्रति-दिन के कार्यों की भी देख-भाल करनी पड़ती थी। यह भी कहा जाता है कि उस अवधि के दौरान जब वह मामला निरीक्षक चरण दास के अन्वेषणाधीन था तो वह फाइल और आगे अन्वेषण के लिए स्थानीय पुलिस का मार्ग-दर्शन कराने को दृष्टि में रखते हुए छान-बीन के लिए दिल्ली की अपराध शाखा के सुपुर्द पड़ी रही। अन्ततः वह मामला अपराध शाखा के निरीक्षक आर० पी० कोचर के सुपुर्द किया गया जिनके पास चार मामले थे और उन्होंने 28 मई, 1981 से 18 सितम्बर, 1981 तक इस मामले पर विचार किया। यह संकेत किया गया कि उस समय निरीक्षक, कोचर के सुपुर्द ऐसे अनेक मामलों के अन्वेषण का कार्य भी किया गया था जिसमें अनेक कुख्यात डाकू तथा संवेदनात्मक हत्याएं सम्मिलित थीं। प्रतिशपथ-पत्र में इस बात को दोहराया गया है कि गुरिन्दर कौर का कथन पुलिस द्वारा अभिलिखित नहीं किया जा सका क्योंकि उस डाक्टर ने, जो उस समय ड्यूटी पर तैनात था, उसे कथन करने के अयोग्य घोषित किया था। यह स्वीकार किया गया है कि वह कम्बल जिससे आग बुझाई गई थी पुलिस के कब्जे में नहीं लिया गया था किन्तु यह प्रख्यान किया गया है कि साबुन की टिकिया को 9 अगस्त, 1980 को कब्जे में लिया गया था यह भी प्रख्यान किया गया है कि 10 अगस्त, 1980 को उप-निरीक्षक अमृतलाल द्वारा घटनास्थल पर सी० एफ० एस० एल० के विशेषज्ञों का एक दल लाया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया था और आइने का एक फोटो लिया गया था। यह अभिकथन किया गया है कि यद्यपि श्री भगवन्त सिंह के कथन को अभिलिखित करने का प्रत्येक प्रयत्न किया गया था तथापि उसने कोई भी कथन करने से इन्कार किया। मात्र 21 अप्रैल, 1981 को उसने कथन किया। यह स्वीकार किया गया है कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 306(4) के प्रति निर्देश को मात्र 15 मई, 1981 को शामिल किया गया था इसलिए पूर्वतर कथन करने के लोप को भूल के रूप में स्पष्ट किया गया है। पुलिस आयुक्त ने अन्वेषण में हुए विलम्ब का कारण यह बताया है कि श्री भगवन्त सिंह ने तारीख 21 अप्रैल, 1981 को ही अपना कथन अभिलिखित होने दिया इसके पूर्व नहीं।

11. हम यह समझते है कि उसका स्पष्ट उल्लेख किया जा सकता है कि पुलिस ने उतनी शीघ्रता और दक्षता से कार्य नहीं किया जितनी शीघ्रता और दक्षता से मामले में अन्वेषण अपेक्षित था। ऐसी अनेक बातें हैं जिन पर टिप्पणी करने की आवश्यकता है। पुलिस केस डायरी की प्रविष्टियों से यह प्रतीत होता है कि उप-निरीक्षक ने 9 अगस्त, 1980 को घटनास्थल का निरीक्षण किया था और अनेक वस्तुएं अभिगृहीत कीं किन्तु यह स्वीकार किया गया है कि उसने वह कम्बल कब्जे में नहीं लिया जिससे आग बुझाई गई थी, जैसा कि कहा गया है। दूसरे दिन सेन्ट्रल फॉरेन्सिक साइंस लेबोरेटरी के विशेषज्ञों ने उस स्थान का निरीक्षण किया और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने निशान की संभावना के लिए परीक्षा की। उन्होंने आइने का भी फोटो लिया। और फिर भी 5 सप्ताह बीत जाने के पश्चात् ही पुलिस उनसे रिपोर्ट प्राप्त करने में समर्थ हुई। विचित्र बात है, यद्यपि वह आइना घटनास्थल से हटा दिया गया था और निशान की संभावना के लिए परीक्षा की गई थी फिर भी कोई "अभिज्ञेय निशान" उभारा नहीं जा सका। इस मामले जैसे मामले में, सार यह है कि घटना की सूचना पर तुरन्त घटनास्थल का निरीक्षण करने पर उस आइने को पुलिस द्वारा अपने कब्जे में लिया जाना चाहिए था और निशानों के अस्तित्व तथा पहचान के सम्बन्ध में तत्काल रिपोर्ट के लिए उसे तुरन्त सेन्ट्रल फॉरेन्सिक साइंस लेबोरेटरी के विशेषज्ञों के सुपुर्द किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में विलम्ब एक महत्वपूर्ण बात है और प्राय: उसके परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण सुराग मिट सकता है। उस बात से मामूली सान्त्वना मिलती है कि तारीख 23 सितम्बर, 1980 की प्रविष्टि सी० डी० सं० 7 के अनुसार पुलिस उपायुक्त ने हस्तलेख की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्काल परीक्षा कराने के लिए सेन्ट्रल फॉरेन्सिक साइंस लेबोरेटरी के निदेशक को स्मरण-पत्र लिखा था।

12. एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि क्या स्नान-घर की सिटकनी अन्दर से लगाई गई थी और उसे तोड़कर खोलना पड़ा था या वस्तुतः बाहर से (सिटकनी) लगवाई गई थी। श्री करतार सिंह के कुटुम्ब के अनुसार वह दरवाजा सेवक रामू की सहायता से तोड़कर खोला गया था। केस डायरी में तारीख 9 अगस्त, 1980 की प्रविष्टि सी० डी० सं० 1 से यह दर्शित नहीं होता कि उस दिन रामू का कथन पुलिस द्वारा अभिलिखित किया गया था यद्यपि इससे यह दर्शित होता है कि अन्य व्यक्तियों के कथन अभिलिखित किए गए थे। राज्य के विद्वान काउन्सेल की ओर से यह सुझाव दिया गया है कि रामू का कथन भी उसी दिन अभिलिखित किया गया था किन्तु उसे हमारे समक्ष फाइल किए गए केस डायरी के उद्धरण में दर्शित नहीं किया गया है। उस तारीख की प्रविष्टि सी० डी० सं० 13 के अनुसार काफी विलम्बन से अर्थात् 25 जनवरी, 1981 को स्टेशन हाउस आफिसर द्वारा उस सेवक की परीक्षा की गई थी। जैसा कि पुलिस केस डायरी की प्रविष्टि से प्रतीत होता है रामू एक महत्वपूर्ण साक्षी था और यह आश्चर्य है कि इसके पूर्व कि उसकी पुलिस द्वारा पूर्णतः परीक्षा की जाए उसे शहर छोड़ने और अपने गांव जाने की अनुमति दी गई थी। इस बारे में कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि पुलिस ने घटना की तारीख के तुरन्त या उसके कुछ देर पश्चात् या कम-से-कम श्री करतार सिंह के कुटुम्ब द्वारा रामू को अपने ग्राम के लिए शहर छोड़ने की इजाजत देने के पूर्व उसकी पूर्णतः परीक्षा कराने की कोई चिन्ता व्यक्त नहीं की थी।

13. पुलिस के समक्ष कथन करने की श्री भगवंत सिंह की अनिच्छा के बारे में उनके द्वारा (पुलिस द्वारा) बहुत कुछ कहा गया है। भारत सरकार के अधिक वरिष्ठ प्रास्थिति के उत्तरदायी अधिकारी से यह प्रत्याशा करना स्वाभाविक होता कि वे प्रारम्भ में ही अपना कथन अभिलिखित करने के लिए आगे आये होते और पुलिस की सहायता किए होते, विशेषरूप से इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए कि वह अपनी ही पुत्री की मृत्यु के बारे में सत्य का पता लगाने के लिए विशेष रूप से इच्छुक रहे होंगे। वस्तुतः यह विश्वास करना कठिन है कि उन्होंने अन्वेषण में पुलिस के साथ सहयोग नहीं किया या 21 अप्रैल, 1981 तक अपना कथन करने से इनकार किया। किन्तु यदि उन्होंने ऐसा किया तो ऐसा मात्र विश्वास के अभाव के कारण था जिस रूप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में पुलिस अन्वेषण किया जा रहा था।

14. अत्यधिक महत्वपूर्ण साक्ष्य स्वयं गुरिन्दर कौर का रहा होता और फिर भी उस मुद्दे पर इस प्रश्न के बारे में परिसाक्ष्य का झगड़ा है कि क्या वह अपराह्न 3-10 बजे कथन करने की स्थिति में थी जब उप-निरीक्षक उस प्रयोजन से डाक्टर के पास गया। दूसरी ओर 13 नवम्बर, 1980 को स्वयं उसके ससुर श्री करतार सिंह द्वारा पुलिस को किए गए कथन के अनुसार जब उसके पिता श्री भगवंत सिंह अस्पताल में आए और उस कमरे में प्रविष्ट हुए तो वह लड़की यदा-कदा बात-चीत कर रही थी और अपराह्न 2-30 बजे से रात्रि 8-30 बजे की अवधि के दौरान श्री भगवंत सिंह उनकी पत्नी, उनकी भतीजी, जो कि एक डाक्टर थी, और उसके कुटुम्ब के अन्य सदस्य लड़की से बातचीत कर रहे थे। डा० राजेन्द्र पाल कौर के कथन के अनुसार श्री भगवंत सिंह की भतीजी, गुरिन्दर कौर उस समय चेतनावस्था में थी और जब डा० कौर ने पुलिस अधिकारियों में से एक को, जो कि उपस्थित थे, लड़की के कथन को अभिलिखित करने के लिए सुझाव दिया तो उसने (पुलिस अधिकारी ने) ऐसा करने से इन्कार कर दिया। यह खेदजनक बात है कि इस प्रश्न के बारे में झगड़ा है कि क्या वह लड़की पुलिस के समक्ष कथन करने के योग्य थी अथवा नहीं और हम यह संकेत करने के लिए विवश हैं कि वह झगड़ा इस मामले के महत्वपूर्ण भाग पर केन्द्रित है।

15. इस मामले की अन्य विशेषताएं हैं जिसमें अभागी बालिका चाचा द्वारा आराम देह चीज के रूप में श्री करतार सिंह के कुटुम्ब को टेलीवीजन का सेट अन्तरित करने का प्रश्न भी सम्मिलित है किन्तु हम उस बारे में विचार करना अनावश्यक समझते हैं। यह संकेत करना पर्याप्त है कि पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण से विश्वास उत्पन्न नहीं होता। वस्तुतः इसे स्वयं अपराध शाखा द्वारा तात्विक रूप से अपर्याप्त विचारगत किया गया है। क्योंकि 12 मई, 1981 को यह संकेत करते हुए अपराध शाखा द्वारा दिल्ली पुलिस उपायुक्त को एक ज्ञापन भेजा गया था कि फाइल से यह दर्शित होता है कि महत्वपूर्ण व्यक्तियों के कथन अभिलिखित नहीं किए गए थे। हम इस तथ्य के बारे में यह भी प्राख्यान कर सकते है कि यद्यपि लड़की को टैक्सी में अस्पताल में ले जाया गया था तथापि ऐसा प्रतीत है कि पुलिस ने टैक्सी चालक के कथन को अभिलिखित करने की बाबत कोई महत्व नहीं दिया है कि हमारे समक्ष श्री जगजीत सिंह नामक व्यक्ति का भी शपथपत्र है जिससे यह प्रतीत होता है कि वह एक ऐसा व्यक्ति था जो सर्वप्रथम उस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मकान में पहुचा था जब वह घटना हुई थी और यह कि उसी ने यह सुझाव दिया था कि उस लड़की को जो भागत: स्नान घर में और भागत: वरण्डा में जली पड़ी थी, तुरन्त अस्पताल ले जाया जाना चाहिए और उन्होंने यह कथन किया है कि उन्हीं की प्रेरणा से वे उसे टैक्सी में ले गए थे। श्री जगजीत सिंह एक महत्वपूर्ण साक्षी थे और यद्यपि वे पड़ोस में थे तथापि, शीघ्रता से उनके कथन को अभिलिखित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था।

16. हमारे समक्ष की सामग्री से दो अनुमान निकलते हैं—प्रथम यह है कि घटना के बाद पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण अनियमित और निरुत्साह था और इससे यह दर्शित होता है कि मामले की सच्चाई का पता लगाने की आकस्मिक आवश्यकता की चिंता नहीं की गई थी। श्री भगवंत सिंह के विद्वान काउंसेल द्वारा एक सशक्त सुझाव दिया गया है कि पुलिस श्री करतार सिंह और उसके कुटुम्ब को परेशान करना नहीं चाहती थी और जैसा यह था, वस्तुत: अन्वेषण को जोरदार रूप से आगे बढ़ाने के बजाए उन्होंने उसे दूसरे रूप में लिया हो। कारण चाहे जो भी हो इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि मामले के अन्वेषण में लापरवाही रही है और यह तीक्षणता के अभाव से और अयुक्तियुक्त विलम्बकारिता से ग्रस्त रहा है और यह अत्यधिक प्रभावी रूप से उस रीति द्वारा अभिदर्शित होता है जिसमें यह मामला एक पुलिस अधिकारी से होकर दूसरे पुलिस अधिकारी को हस्तांतरित हुआ है, और जितनी सफलतापूर्वक उन उपनिरीक्षकों और निरीक्षकों के सुपुर्द किया गया है, जिनके पास ही अनेक अन्य मामले थे जिनका अन्वेषण किया जाना था। यह बात स्वीकार की गई है कि पुलिस अधिकारियों के हाथ में अनेक अन्य मामले पहले से ही थे और वे ऐसे अधिकारी थे जिनसे पुलिस स्टेशन के दिन-प्रति-दिन के कार्यों को भी देख रेख करने की अपेक्षा थी। श्री भगवंत सिंह के बार-बार और आग्रहपूर्ण पिटीशन करने पर ही जब यह मामला अपराध शाखा के नियंत्रण में भेजा गया था तब अन्वेषण में कुछ गति का संकेत दर्शित हुआ।

17. अन्य अनुमान जिससे हमें बाधा होती है यह है कि पुलिस केस डायरी में की गई प्रविष्टि (अभिलेख पर प्रतिशपथ-पत्र के उपाबंध में वर्णित) से यह प्रतीत नहीं होता है कि यह पूर्णतया उतनी ईमानदारी से और दक्षतापूर्वक दर्ज किया गया है जितनी ऐसी दस्तावेज की बाबत विधि में अपेक्षित है। उस प्रास्थिति के किसी दस्तावेज के बनाए रखने का संयोग मात्र न केवल इसे बनाए रखने वालों उन उत्तरदायी व्यक्तियों को न केवल कोई ख्याति नहीं प्रदान करता है बल्कि उस प्रयोजन को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ही विफल करता है जिसके लिए इसका बनाए रखा जाना अपेक्षित है । हम इसे अत्यधिक महत्वपूर्ण समझते हैं कि पुलिस केस डायरी में प्रविष्टियां शीघ्रता से पूर्ण ब्यौरे सहित, सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख करते हुए सावधानीपूर्वक कालानुक्रमिक और पूर्ण विषय-निष्ठता सहित की जानी चाहिए ।

18. हम समझते हैं कि इस प्रक्रम पर कतिपय और मत व्यक्त करना समुचित होगा । इस निष्कर्ष से बचना असंभव है कि वर्तमान मामले जैसे मामले में युवा पत्नी की मृत्यु या तो अवश्य ही कोई अपराध करने के लिए है या इस तथ्य के लिए माना जाना चाहिए कि अपने आसपास दम घुटने वाली परिस्थितियों से मानसिक रूप से व्यथित होकर उसने आत्म-हत्या की थी । शिक्षित, चतुर और चरित्रवाली युवा महिला तब तक मृत्यु को गले लगाने के लिए स्वयं आग नहीं लगाती जब तक कि अपनी असह्य दुर्दशा द्वारा ऐसा भयंकर कदम उठाने के लिए उसे उत्तेजित नहीं किया जाता या उसे उकसाया नहीं जाता । यह उल्लेखनीय है कि ऐसे मामलों में हमारी सामाजिक व्यवस्था का पुरानी रोग दर्शित होता है । दहेज की लिप्सा और वस्तुतः संस्था के रूप में दहेज प्रणाली की तीव्रता से भर्त्सना करने की आवश्यकता है । यह प्रकट है कि विधायी उपाय जैसे कि दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1861 द्वारा वह सफलता नहीं मिली जिसके लिए उसे अधिनियमित किया गया था । संभवतः स्वतः विधान इस बुराई को मिटाने में सफल नहीं हो सकता और इसका समाधान सामाजिक समुदाय के अन्तःकरण में और उसकी पसन्द में और विधिक और संवैधानिक प्रणाली के माध्यम से उसके सक्रिय अभिव्यक्ति में ही पाया जा सकता है ।

19. इसके अतिरिक्त संकेत करने के लिए जो कुछ महत्वपूर्ण है वह यह है कि जहां ऐसे मामलों में मृत्यु अपराध के कारण होती है वहां अपराध-कर्ता विधि के दण्ड से प्रायः निकल जाते हैं क्योंकि पुलिस द्वारा किया गया अन्वेषण पर्याप्त नहीं होता । इससे महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त होगी यदि ऐसे मामलों में शीघ्रता से अन्वेषण करने के लिए समुचित रूप से उच्च प्राथमिकता दी जाए, यदि ऐसी घटनाओं की शीघ्रता से अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए विशेष मजिस्टेरियल मशीनरी सृजित की जाए, और ऐसे मामलों के विचित्र लक्षणों पर विचार करते हुए, अन्वेषण सम्बन्धी दक्ष तकनीक और प्रक्रिया अपनाई जाए । अन्य सुझावों के अतिरिक्त हम इस बात की सिफारिश करेंगे कि पुलिस बल में पर्याप्त रैंक और हैसियत वाली एक महिला पुलिस अधिकारी प्रारम्भ में ही अन्वेषण के लिए सहयोजित की जानी चाहिए । ये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऐसे फायदे हैं जो अपने आप में प्रकट हैं। ऐसे मामलों में जहां अपने पति के घर में कोई पत्नी संदेहजनक परिस्थिति में मर जाती है वहां वास्तविक परिस्थितियों को अभिनिश्चित करना अनिवार्यतः अत्यधिक कठिन विषय है जिसमें वह घटना होती है। चूंकि ऐसी घटना पति के घर में होती है इसलिए महत्वपूर्ण साक्षी प्रायः पति और उसके माता-पिता या पति के साथ रहने वाले उसके अन्य नातेदार होते हैं। चाहे वह रसोई घर में स्टोव पर खाना बनाया जा रहा था, जिसके कारण घटना हुई थी या घर में निवास करने वालों के अनुसार, आत्म-हत्या के लिए अबोध्य तर्क दिया गया हो, या चाहे वस्तुतः युवा पत्नी हत्या की शिकार हुई हो, यह ऐसे विषय हैं जिसमें किसी महिला के दैनिक अस्तित्व की निकट जानकारी बहुत अधिक अन्तर्वलित हैं।

20. यदि वह घटना पति या उसके कुटुम्ब द्वारा किए गए किसी अपराध का परिणाम है तो उसकी सच्चाई को अभिनिश्चित करने की समस्या गोपनीयता के कारण और भी जटिल हो जाती है जिसमें घटना हुई थी। ऐसी परिस्थितियों में जहां आहत् व्यक्ति का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करना संभव है, वहां हमारे मतानुसार, सच्चाई सुनिश्चित करना अधिक निश्चायक होगा, यदि आहत व्यक्ति ने किसी महिला पुलिस अधिकारी की उपस्थिति में कथन किया है जिससे आहत व्यक्ति में विश्वास जागृति करने की प्रत्याशा की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक तथ्य अपनी भूमिका अदा करते हैं और उसके कार्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। युवा पत्नी परिवर्ती मनोवैज्ञानिक दबाव के अधीन हो सकती है और चूंकि ऐसी बात है इसलिए नारी सुलभ मनोवृति का सुक्ष्म अन्तर अन्वेषण बल के भाग के रूप में महिला पुलिस को सम्मिलित करने का समर्थन करता है। यह मत व्यक्त करते हुए हम इस बात पर बल देते हैं कि हम पुलिस के पुरुष सदस्यों की ईमांदारी या दक्षता पर कलंक लगाना नहीं चाहते जो ऐसे मामलों के अन्वेषण में अन्तर्वलित हैं।

21. अन्य सुझाव जिसका हम समर्थन करते हैं वह ऐसे नगरों के अतिरिक्त जहां यह पहले से ही लागू है अन्य नगरों में कोरोनर अधिनियम, 1971 (1971 का 4) का (लागू किया जाना) विस्तारित करने की आवश्यकता है। कोरोनर अधिनियम के लागू किए जाने से आहत व्यक्ति के मृत्यु के बारे में तुरन्त जांच करना संभव होगा भले ही मृत्यु दुर्घटना द्वारा, मानव वध द्वारा या अज्ञात साधनों (तरिकों) द्वारा अचानक कारित हुई है। इसमें ऐसे उपबन्ध अन्तर्विष्ट हैं जो कि ऐसी जांच के प्रयोजन के लिए पूर्णरूपेण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लाभप्रद है और इसमें हमें तनिक भी संदेह नहीं है कि इस प्रकार के मामले में जो हमारे समक्ष हैं, ऐसी अधिनियमिति के अधीन जांच अधिक अर्थपूर्ण और प्रभावी और पूर्ण होगी। हम इस बात से अवगत हैं कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 174 और 175 में ऐसी सूचना के अनुसरण में पुलिस जांच के लिए उपबन्ध अन्तर्विष्ट है कि किसी व्यक्ति ने आत्म-हत्या कर ली है, अथवा कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति द्वारा या जीव-जन्तु द्वारा या किसी यंत्र द्वारा या दुर्घटना द्वारा मारा गया है अथवा कोई व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में मरा है जिससे समुचित रूप से यह संदेह होता है कि किसी अन्य व्यक्ति ने कोई अपराध किया है। ऐसे मामले में पुलिस अधिकारी अन्वेषण करता है और जिला मजिस्ट्रेट या उप-खण्ड मजिस्ट्रेट को इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है और इसके पश्चात् जिला मजिस्ट्रेट या उप-खण्ड मजिस्ट्रेट या इस निमित्त सशक्त अन्य कार्यपालिक मजिस्ट्रेट से मृत्यु समीक्षा करने की अपेक्षा की गई है। अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों को अन्वेषण के प्रयोजन से और किसी अन्य ऐसे व्यक्ति को जो मामले के तथ्यों से परिचित प्रतीत होता है, हाजिर होने के लिए और उन प्रश्नों के सिवाय, जिनके उत्तरों की प्रवृत्ति उसे आपराधिक आरोप या जांच या समपहरण की आशंका में डालने की है, सब प्रश्नों का सही सही उत्तर देने से लिए समन करने के लिए हकदार है। हम यह समझते हैं कि ऐसे मामलों में जो हमारे मस्तिष्क में हैं, अधिक समुचित और प्रभावी प्रक्रिया वह होगी जो कोरोनर अधिनियम धारा अनुध्यात है जिसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि मृत्यु के बारे में जाच स्वतन्त्र स्थिति वाले और ऐसे मामलों की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रास्थिति और प्रधिकारिता के साथ न्यायिक शक्तियों का उपभोग करने वाले व्यक्ति द्वारा और समुचित मशीनरी की सहायता से की जाती है।

22. हमने इस मामले के कतिपय महत्वपूर्ण लक्षणों के प्रति निर्देश किया है। हमने ऐसा यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए नहीं किया है कि उस लड़की की हत्या की गई थी या उसने आत्म-हत्या की थी, बल्कि एक मात्र उस रीति के बारे में ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से किया है जिसमें मामले का अन्वेषण किया गया था। उन व्यक्तियों को निराश करते हुए जैसा कि उन व्यक्तियों को प्रतीत हो सकता है, जिन्होंने इस आधार पर दाण्डिक कार्यवाही करने की इच्छा व्यक्त की है कि अपराध किया गया है, हम यह नहीं समझते हैं कि हम अपने समक्ष की सामग्री के आधार पर उस सीमा तक जा सकते हैं। हम यह समझते हैं कि पिटीशनर के निवेदन पर मामले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का अन्वेषण दिल्ली पुलिस प्रशासन से केन्द्रीय जांच ब्यूरो को अंतरित कर दिया गया था। हम आशा करते हैं और हमारा यह विश्वास है कि अन्वेषण पूरा हो गया होगा। यदि पूरा नहीं हुआ है तो केन्द्रीय जांच ब्यौरो से आज से तीन मास के भीतर अन्वेषण पूरा करने का तथा ऐसी कार्रवाई करने का निवेदन करते हैं, जैसा कि अन्वेषण के परिणाम द्वारा आवश्यक हो।

23. तदनुसार पिटीशन का निपटारा किया जाता है।

पिटीशन उपर्युक्त रूप से निपटाया गया।

प्र/भू०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आर० विश्वन और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

(R. Viswan and Others

v.

Union of India and Others)

और

श्रीमती निर्मल छिब्बर और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

(Mrs. Nirmal Chhibbar and Others

v.

Union of India and Others)

(6 मई, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी, वी० बालकृष्ण एराडी और आर० बी० मिश्र)

सेना अधिनियम, 1950 (1950 का 46)—धारा 21—सांविधानिक विधिमान्यता—यद्यपि अनुच्छेद 19(1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन मूल अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित करने के लिए धारा 21 के अधीन केन्द्रीय सरकार को प्रदत्त शक्ति व्यापक दृष्टि से ऐसी अनियंत्रित और अनिर्बन्धित शक्ति है जो संवैधानिक परिसीमा का अतिक्रमण करती है, तथापि धारा 21 इस आधार पर अविधिमान्य नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सेना अधिनियम, 1950 (1950 का 46)—धारा 4 (1), (4), 21, 102 (4) और 191—धारा 4 (1) में "केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार के अधीन भारत में समुत्थापित और बनाये रखा गया बल" पद का अर्थ और उसकी परिधि—केन्द्रीय सरकार जनरल रिज़र्व इंजीनियरिंग फोर्स के सदस्यों के बारे में सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के कतिपय उपबंधों को लागू करते हुए धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी कर सकती है—अतः जनरल रिज़र्व इंजीनियरिंग फोर्स के सदस्य संविधान के अनुच्छेद 33 के अधीन सशस्त्र बल के सदस्य हैं।

सेना अधिनियम, 1950 (1950 का 46)—धारा 4 (1), (4)—अधिसूचना के अधीन अनुशासन के प्रयोजनों के लिए जनरल रिज़र्व इंजीनियरिंग फोर्स के सदस्यों को सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के उपबन्धों को लागू करने से संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता है।

1960 के आस-पास यह अनुभव किया गया था कि उत्तर और उत्तर-पूर्व सीमावर्ती क्षेत्रों के आर्थिक विकास में अल्प या अपर्याप्त संचार व्यवस्था के कारण अत्यधिक बाधा पड़ रही है और इन क्षेत्रों की सुरक्षा की दृष्टि से भी सशस्त्र बलों के प्रभावी संचालन और उनको नियोजित करने के लिए अनेक सड़कों का होना आवश्यक है। इस कारण यह और भी आवश्यक हो गया था क्योंकि भारत का अपने पड़ोसियों के साथ संबंध सम्भावित झगड़े की स्थिति में था और भारत के राज्यक्षेत्र का किञ्चित् भाग विदेश के अधीन था और ऐसे विद्रोही भी थे जो कतिपय वर्ग के लोगों को संबंध-विच्छेद का आंदोलन करने के लिए उकसा रहे थे। इसलिए, भारत सरकार ने देश की सुरक्षा की तैयारी में सुधार करने के लिए सीमावर्ती क्षेत्रों में विद्यमान सड़कों में सुधार करने और नयी सड़कों का निर्माण करने के लिए परिकल्पित परियोजनाओं के लिए समन्वय और शीघ्रता से निष्पादन सुनिश्चित बनाने की दृष्टि से संकर्म महानिदेशालय (डायरेक्टोरेट जनरल ऑफ वर्क्स) में अनेक पद सर्जित किए और सेना मुख्यालय में सीमावर्ती सड़कों के विकास से सम्बन्धित कार्यों के लिए भी पद सर्जित किए गए। महानिदेशक, सीमा सड़क को इस नये संगठन का भारसाधक बनाया गया था जो मूलतः डायरेक्टर जनरल ऑफ वर्क्स, आर्मी हेडक्वार्टर्स के भाग के रूप में प्रारम्भ हुआ। किन्तु इसके पश्चात् उच्च नीति के कारण यह विनिश्चय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया गया था कि इस संगठन को डायरेक्टर जनरल ऑफ वर्क्स, आर्मी हेडक्वार्टर्स के भाग के रूप में बना नहीं रहना चाहिए बल्कि उपाध्यक्ष के रूप में रक्षामंत्री, वित्तीय सलाहकार के रूप में वित्तीय सलाहकार (रक्षा) और प्रधान मंत्री द्वारा नामनिर्दिष्ट कतिपय सदस्यों सहित प्रधान मंत्री की अध्यक्षता के अधीन पृथक् रूप से आत्मनिर्भर प्राधिकरण के रूप में भारत सरकार द्वारा स्थापित बार्डर रोड्स डेवलपमेंट बोर्ड के अधीन होना चाहिए। इसका बजट जहाजरानी और परिवहन मंत्रालय के बजट का भाग है किन्तु वह वित्तीय नियंत्रण वित्त मंत्रालय (रक्षा) में निहित था। भारत सरकार ने बार्डर रोड्स डिवेलपमेंट के सचिव द्वारा सीमा सड़क (बार्डर रोड्स) के महानिदेशक को भेजे गए तारीख 16 जून, 1960 के पत्र द्वारा "सीमावर्ती क्षेत्रों में सड़क के निर्माण के लिए तथा ऐसे अन्य कार्यों को करने के लिए जैसा कि इसे बार्डर रोड्स डिवेलपमेंट बोर्ड द्वारा सौंपा जा सकता है, जनरल रिज़र्व इंजीनियरिंग फोर्स समुत्थापित करने और उसे बनाए रखने के लिए" राष्ट्रपति की मंजूरी के बारे में संसूचित किया तब से इसका महानिदेशक सीमा सड़क सदैव मेजर जनरल की पंक्ति का सैनिक अधिकारी रहा है और वह बार्डर रोड्स डेवलपमेंट बोर्ड के निदेशों के अधीन कार्य करता है। जहां तक जी० आर० ई० एफ० के कार्मिक का सम्बन्ध है वे भागतः सेना से लिए जाते हैं और भागतः सीधी भर्ती द्वारा। सभी रिट पिटीशनों में सारवान तथ्य समान हैं। रिट पिटीशन सं० 815 के पिटीशनरों की सं० 24 है और ये सभी तात्त्विक समय में जी० आर० ई० एफ० के सदस्य थे। पिटीशनर सं० 1 से 24 का सेवा से अधित्याग किया गया था और सेना अधिनियम, 1950 के उपबंधों के अधीन उन्हें गिरफ्तार करने के लिए वारण्ट जारी किया गया था, किन्तु पुलिस प्राधिकारी उन्हें नहीं पकड़ सके। जहां तक पिटीशनर सं० 2 से 23 का संबंध है, उन पर सेना अधिनियम, 1950 की धारा 63 के अधीन अपराध के लिए कोर्ट मार्शल के समक्ष इसलिए आरोप लगाया गया था कि वे जी० आर० ई० एफ० के कतिपय अन्य कार्मिकों के साथ हेडक्वार्टर्स चीफ इन्जीनियर (प्रॉजेक्ट) वर्तक के समक्ष एकत्रित हुए और उन्होंने नारे लगाए तथा हिरासत में रखे गए कार्मिकों को निर्मुक्त करने के लिए हेडक्वार्टर चीफ इन्जीनियर (प्रॉजेक्ट) वर्तक से मांग और उनकी पेटी (बेल्ट) छीन ली गई, और सी० एस० आफिस के निकट मैदान में फेंक दिए, उन्होंने काले झण्डों का प्रदर्शन किया और पंक्ति में खड़े नहीं हुए, यद्यपि उन्हें ब्रिगेडियर द्वारा ऐसा करने का आदेश दिया गया था और वे स्वयं "आल इण्डिया बार्डर रोड्स एम्पलाईज एसोसिएशन" के नाम से ज्ञात संघ में अवैध रूप से सम्मिलित हुए थे। इन 22 पिटीशनों पर सेना अधिनियम, 1950 और सेना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियम, 1954 द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसरण में कोर्ट मार्शल द्वारा विचार किया गया था, जैसा कि यह जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू होता है, और सिद्धदोष ठहराये जाने पर उन्हें सेवा से पदच्युत किया गया था। इसके विरुद्ध 1980 के पिटीशन सं० 815 में आक्षेप किया गया क्योंकि इन अधिसूचनाओं का प्रभाव जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के उपबंधों को लागू करना तथा उनके मूल अधिकारों को निर्बन्धित करना था। रिट पिटीशनों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—वे अधिकार जिन्हें निर्बन्धित किया जाना अनुज्ञात है अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन संवैधानिक स्कीम के अधीन मूल अधिकारों के भाग हैं, इसलिए वे अधिकार कार्यपालिका संबंधी ऐसी कार्यवाही द्वारा निर्बन्धित नहीं किए जा सकते जिसे विधि का समर्थन प्राप्त नहीं है। यदि कोई निर्बन्धन अधिरोपित किए जाने हैं तो वह मात्र विधि द्वारा ही किया जा सकता है और तदनुसार अनुच्छेद 19 के खण्ड (2), (3) या (4) की अपेक्षाओं का समाधान उस विधि द्वारा किया जाना आवश्यक है क्योंकि निर्बन्धित अधिकार अनुच्छेद 19 (1) के खंड (क), (ख) और (ग) के भीतर आता है। अधिरोपित निर्बन्धनों का युक्तियुक्त होना आवश्यक है और अनुच्छेद 19 (1) के खंड (क) के अधीन अधिकार की दशा में उसे भारत की प्रभुता और अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हित में अथवा न्यायालय अवमान, मानहानि या अपराध उद्दीपन के सम्बन्ध में होना आवश्यक है, जैसा कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (11) में उपबन्धित है, अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (ख) के अधीन किसी अधिकार की दशा में "उसका भारत की प्रभुता और अखण्डता या लोक व्यवस्था या सदाचार के हित में होना आवश्यक है जैसा कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (4) में उपबन्धित है। वे तभी विधिमान्य होंगे। अन्यथा वे असांविधानिक होंगे और उन्हें अधिरोपित करने वाली विधि शून्य होगी। स्वयं धारा 21 तीन प्रकार के अधिकारों पर सारतः कोई निर्बन्धन अधिरोपित नहीं करती। यदि स्वतः धारा 21 द्वारा कोई निर्बन्धन अधिरोपित किया गया था तो इस बात की परीक्षा करना आवश्यक हो गया होता कि क्या ऐसा निर्बन्धन अनुच्छेद 19 के खण्ड (2), (3) या (4) के अधीन न्यायोचित है, जैसे कि वह लागू हो सकता है। किन्तु धारा 21 में ऐसा कोई मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए बिना या ऐसी कोई सीमा उपदर्शित किए बिना उन तीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकार के अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार पर छोड़ दिया गया है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिरोपित निर्बंधन अनुच्छेद 19 के खण्ड (2), (3) या (4) के अनुरूप हैं, इनमें से जो भी लागू हो। इसके द्वारा यह उपबन्ध करके केन्द्रीय सरकार को अति व्यापक शक्ति प्रदत्त की गई है कि वह उस सीमा तक और उस रीति में, जैसी कि आवश्यक हो, तीन प्रकार के अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित कर सकती है। केन्द्रीय सरकार को इस बात के लिए एकमात्र निर्णायक बनाया गया कि वह किस प्रकार का निर्बन्धन अधिरोपित करना आवश्यक समझती है और केन्द्रीय सरकार अपनी प्रदत्त शक्तियों के अनुसरण में निर्बन्धन अधिरोपित कर सकती है, यदि वह आवश्यक समझे, भले ही यह अनुच्छेद 19 के खण्ड (2), (3) और (4) के अधीन अनुज्ञेय न हो। इन तीन प्रकार के अधिकारों पर निर्बंधन अधिरोपित करने की केन्द्रीय सरकार को प्रदत्त की गई शक्तियां जो अनुच्छेद 19 (1) के खंड (क), (ख) और (ग) के अधीन मूल अधिकारों के भाग हैं, इस प्रकार असरणीबद्ध और अनिर्बन्धित व्यापक शक्ति है जिसके द्वारा सांविधानिक परिसीमा का अतिक्रमण होता है। फिर भी धारा 21 की इस आधार पर अविधिमान्य होने के कारण भर्त्सना नहीं की जा सकती क्योंकि इसे अनुच्छेद 33 द्वारा व्यावृत्ति प्रदान की गई है, जिसमें ऐसे किसी उपबन्ध का अधिनियमित किया जाना अनुज्ञात है। अनुच्छेद 33 में, जहां तक सशस्त्र बल के तथा लोक व्यवस्था बनाए रखने के भार साधन करने वाले बल के सदस्यों से सम्बन्धित मूल अधिकारों के लागू होने का सम्बन्ध है, अपवाद का उपबन्ध किया गया है। यह प्राथमिक बात है कि अत्यधिक अनुशासनिक और दक्षता प्राप्त सशस्त्र बल देश की सुरक्षा के लिए पूर्णतः आवश्यक है। वस्तुतः सुरक्षा की जरूरत आक्रमण के विरुद्ध एकमात्र निश्चित गारण्टी है, इस लिए ऐसी दृढ़ और शक्तिशाली सेना का गठन करने का प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिए जो देश की सीमाओं की रक्षा करने के लिए तथा आक्रमण से संरक्षण करने के लिए समर्थ हो। स्पष्टतः कोई भी सेना किसी आकस्मिकता का मुकाबला करने के लिए अपनी तरह की स्थिति को लगातार बनाए नहीं रख सकती और सफलतापूर्वक किसी आक्रमण का मुकाबला नहीं कर सकती तथा तब तक देश की प्रभुता और अकिंचनता का संरक्षण नहीं कर सकती जब तक उसमें सदैव उच्च नैतिकता और दृढ़ अनुशासन समाविष्ट न हो। वस्तुतः सदाचार और अनुशासन सेना की आत्मा है किन्तु कोई अन्य विचारणा चाहे वह कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हो, सशस्त्र बल के सदाचार में वृद्धि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने और अनुशासन बनाए रखने की आवश्यकता से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकती। नैतिकता, सदाचार और अनुशासन के विषय में किसी भी प्रकार की छूट अनर्थकारी हो सकती है, इससे दुर्व्यवस्था फैल सकती है और विनाश हो सकता है जिससे उनके कल्याण पर प्रभाव पड़ सकता है और देश के सम्पूर्ण लोगों के मानवीय अधिकार जोखिम में पड़ सकते हैं। इसलिए, संविधान निर्माताओं ने अनुशासन की आवश्यकता को मूल अधिकारों से ऊपर रखा है, जहां तक लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए सशस्त्र बल और उसका भारसाधन करने वाले बल के सदस्यों का सम्बन्ध है और अनुच्छेद 33 में यह उपबन्ध किया गया है कि संसद् विधि द्वारा यह अवधारण कर सकेगी कि इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में किसी का सशस्त्र बलों या लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को लागू होना, किस परिमाण तक निर्बन्धित या निराकृत किया जाए ताकि उनके कर्तव्यों का उचित पालन और उनमें अनुशासन बनाए रखना सुनिश्चित हो सके। अनुच्छेद 33 के साधारण व्याकरणिक अर्थान्वयन द्वारा उसकी भाषा में यह अपेक्षा नहीं की गई है कि स्वयं संसद् को विधि द्वारा उस अनुच्छेद को लागू करने के लिए किसी मूल अधिकार को अवश्य निर्बन्धित या निराकृत करना चाहिए। इसमें मात्र यही कहा गया है, अर्थात् संसद् विधि द्वारा वह अनुज्ञेय सीमा विहित कर सकती है जिस सीमा तक किसी मूल अधिकार के सशस्त्र बलों या लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को लागू होने में किस मूल परिणाम तक निर्बन्धित या निराकृत किया जा सकता है। वस्तुतः, स्वयं संसद् विधि विरचित करके लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को, लागू होने वाले मूल अधिकारों में से किसी अधिकार को निर्बन्धित या निराकृत कर सकती है। सेना अधिनियम, 1950 को अधिनियमित करके ऐसा किया गया है, जिससे उपबन्धों को अनुच्छेद 33 द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया है, भले ही इससे एक या एक से अधिक मूल अधिकारों पर प्रभाव पड़ता हो। संसद् अनुच्छेद 33 के अधीन अपनी शक्ति के अन्तर्गत सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 अधिनियमित करने के लिए सशक्त थी जिसमें यह अधिकथित है कि किस सीमा तक केन्द्रीय सरकार सेना अधिनियम के अधीन रहते हुए, अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित कर सकती है, जब ऐसा प्रत्येक व्यक्ति स्पष्टतः स्वशस्त्र बल का सदस्य है वह सीमा जिस तक अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन मूल अधिकार पर निर्बन्धन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिरोपित किए जा सकते हैं, सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 के खण्ड (क), (ख) और (ग) में स्वतः उपदर्शित है और केन्द्रीय सरकार को उन मूल अधिकारों पर सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 के खण्ड (क), (ख) और (ग) उपवर्णित अधिकारों पर्यन्त ही निर्बन्धन अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत किया गया है। निर्बन्धन का अनुज्ञेय परिमाण जो अनुच्छेद 1 के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन मूल अधिकारों पर अधिरोपित किया जा सकता है, सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 के खण्ड (क), (ख) और (ग) में अधिकथित है, इसलिए केन्द्रीय सरकार को "उस परिमाण तक और उसी रीति में जैसा कि आवश्यक हो" अनुज्ञेय सीमा के भीतर निर्बन्धन अधिरोपित करने के लिए सशक्त किया गया है। यह अवधारण करने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत कि कौन से निर्बन्धन संसद् द्वारा अवधारित अनुज्ञेय सीमा के भीतर केन्द्रीय सरकार द्वारा आवश्यक विचारगत किया जाना चाहिए स्वतः अनुच्छेद 33 में उपबंधित है अर्थात् निर्बन्धन ऐसे होने चाहिएं जैसे कि सशस्त्र सेना सदस्यों द्वारा अपने कर्तव्यों का समुचित निर्वहन सुनिश्चित बनाने के लिए तथा उनके बीच अनुशासन बनाए रखने के लिए आवश्यक हों। केन्द्रीय सरकार को धारा 21 के अधीन निर्बन्धन अधिरोपित करने की शक्ति का प्रयोग करने में इस मार्गदर्शक सिद्धांत को ध्यान में रखना चाहिए, यद्यपि यह संकेत किया जा सकता है कि जब एक बार केन्द्रीय सरकार ने इस शक्ति का प्रयोग करके इन निर्बन्धनों को अधिरोपित कर दिया है तो न्यायालय साधारणतया केन्द्रीय सरकार के इस विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं करेगा कि ऐसे निर्बन्धन इसलिए आवश्यक हैं क्योंकि यह एक ऐसा विषय है जिसे संसद् ने पूर्णतः उस पर छोड़ दिया है कि (केन्द्रीय सरकार) यह जानने के लिए सर्वोत्तम स्थिति में है कि इन परिस्थितियों में क्या आवश्यक है। इन परिस्थितियों में धारा 21 को निश्चित रूप से संवैधानिकतः विधिमान्य ठहराया जाना चाहिए क्योंकि यह अनुच्छेद 33 के अधीन प्रदत्त शक्ति के भीतर है। (पैरा 7)

यह बात भी महत्वपूर्ण है, कि ऐसे बल के रूप में जी० आर० ई० एफ० के विशेष स्वरूप पर बल देती है, जो सेना को उसकी संक्रिया योजनाओं और अपेक्षाओं की सहायता का उपाबन्ध करने के लिए आशयित है, कि सेना कार्मिकों को सावधानीपूर्वक नियोजित सैनिक रखने की नीति के अनुसार जी० आर० ई० एफ० में तैनात किया गया है जिससे जी० आर० ई० एफ० यूनिट्स युद्ध या मुठभेड़ के समय सेना को कारगर/युद्धक्षम समर्थन का उपबन्ध करने में समर्थ हो सकें। जी० आर० ई० एफ० यूनिट में सेना कार्मिकों की पदावधि रेजिमेंट सम्बन्धी साधारण ड्यूटि के रूप में समझी जाती है और यह पदोन्नति वृत्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

योजना आदि के प्रयोजन के लिए सेना में उसी प्रकार की नियुक्तियों के अनुरूप है। जी० आर० ई० एफ० में सीधे भर्ती किए गए कार्मिक को भी, उनके तैनात किए जाने से पूर्व, प्रशिक्षण दिया जाता है और यह प्रशिक्षण तीन सैन्य विषयों में दिया जाता है। इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह सर्वथा स्पष्ट है कि जी० आर० ई० एफ० सशस्त्र बल का अभिन्न अंग है और जी० आर० ई० एफ० के सदस्य विधिसम्मत रूप से अनुच्छेद 33 के अर्थान्तर्गत सशस्त्र बल के सदस्य कहे जा सकते हैं। (पैरा 9)

निस्संदेह, यह सही है, जैसा कि रक्षा मंत्रालय द्वारा उल्लेख किया गया है, कि जी० आर० ई० एफ० सिविल सन्निर्माण बल है और जी० आर० ई० एफ० के सदस्य बार्डर रोड्स डिवेलपमेंट बोर्ड के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन सिविल कर्मचारी हैं और यह कि उनके बीच के इंजीनियर, अधिकारी जी० आर० ई० एफ० के भीतर "केन्द्रीय सिविल सेवा" के रूप में अभिहित किए जा सकते हैं, किन्तु इससे यह अभिप्रेत नहीं है कि वे इसी बीच सशक्त बल के अभिन्न अंग नहीं हो सकते। यह प्रश्न कि क्या "जी० आर० ई० एफ० के सदस्य अनुच्छेद 33 लागू करने के प्रयोजन के लिए सशस्त्र बल के सदस्य कहे जा सकते हैं, अनिवार्यतः जी० आर० ई० एफ० के स्वरूप, इसकी संगठनात्मक स्थापना उसके कृत्य, वह कार्य जो सशस्त्र बल के सम्बन्ध में उससे करने की आवश्यकता है और इसके सम्बन्ध की गंभीरता और गहनता से तथा सशस्त्र बल के साथ इसके एकीकरण के विस्तार पर अवश्यमेव निर्भर होना चाहिए और यदि इस कसौटी पर विचार किया जाए, तो वे सशस्त्र बल के सदस्य माने जाएंगे, इसलिए मात्र इस तथ्य से कि वे ऐसे गैर-समाघात" (नान कम्बेटेंट) सिविलयन हैं, जिन्हें सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 लागू होता है, कोई अन्तर नहीं पड़ता। यह निर्विवाद है कि जी० आर० ई० एफ० के कृत्य और कर्तव्य सशक्त बल की संक्रियात्मक योजनाओं और अपेक्षाओं के साथ अनिवार्यतः जुड़े हुए हैं और जी० आर० ई० एफ० के सदस्य, न्यायाधिपति सरकारिया के शब्दों में "सशक्त बल के अभिन्न अंग हैं"। इस बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि जी० आर० ई० एफ० के दक्ष और अनुशासित संक्रियात्मक कार्य के बिना शांति के दौरान तथा युद्ध के दौरान सीमावर्ती क्षेत्रों में सैन्य संक्रिया पर गम्भीर प्रभाव पड़ेगा और सशस्त्र बल की संक्रिया सम्बन्धी योजनाओं की सहायता के लिए तथा ऐसी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए अधिक अनुशासित जी० आर० ई० एफ० पूर्णतः आवश्यक है। जी० आर० ई० एफ० के सदस्य अनुच्छेद 33 के अर्थान्तर्गत "सशस्त्र बल के सदस्य" के परिवर्णन के अनुरूप हैं और परिणामतः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जी० आर० ई० एफ० के सदस्य को सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 का लागू होना उस अनुच्छेद द्वारा संरक्षित समझा जाना आवश्यक है और जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों के मूल अधिकार को सेना नियम, 1954 के नियम 19 और 21 के साथ पठित धारा 21 द्वारा विधिमान्यत: निर्बन्धित समझा जाना चाहिए। पिटीशनर नियम 19 से 21 के अभिकथित अतिक्रमण के लिए सेना अधिनियम, 1950 की धारा 63 के अधीन आरोप लगाए जाने के दायित्वाधीन थे और कोर्ट मार्शल द्वारा उनकी दोषसिद्धि तथा तत्पश्चात् उनका पदच्युत किया जाना निश्चित रूप से विधिमान्य ठहराया जाना चाहिए। (पैरा 10)

संविधान के अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण का प्रश्न उठाया गया था जिसमें यह दलील दी गई थी कि जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को अनुशासन के विषय में सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 और सेना अधिनियम, 1950 के तथा सेना नियम, 1954 के उपबन्ध दोनों ही लागू थे और इसलिए जब कभी जी० आर० ई० एफ० के किसी सदस्य पर अवचार सम्बन्धी कोई आरोप लगाया जाता है, जो सेना अधिनियम, 1950 के अधीन अपराध की कोटि में आता है तो इसे प्राधिकारियों के इस अनियंत्रित विवेकाधिकार पर छोड़ दिया गया है कि वे चाहें तो उस कर्मचारी के विरुद्ध सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 के अधीन या सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के अधीन कार्रवाई कर सकते हैं। अनुशासन के प्रयोजन के लिए जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों के बारे में सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के उपबन्धों को लागू करने पर एस० आर० ओ० 329 और एस० आर० ओ० 330 अनुच्छेद 14 के अतिक्रामक और विभेदपूर्ण हैं। इस दलील में कोई सार नहीं है। प्रथम प्रक्रम पर कार्यवाहियों का वह स्वरूप जिसे भ्रान्त कर्मचारियों के विरुद्ध सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन; कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1963 के अधीन की जा सकती है, उन कार्यवाहियों की प्रकृति से भिन्न है जिन्हें सेना नियम, 1954 के साथ पठित सेना अधिनियम, 1950 के उपबन्धों के अधीन उसके विरुद्ध की जा सकती है क्योंकि पूर्ववर्ती कार्यवाही प्रशासनिक प्रकृति की है जबकि पश्चात्वर्ती कार्यवाही स्पष्टत: दाण्डिक है।

सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के उपबन्धों और जैसे कि वे जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू होते हैं, अनुच्छेद 14

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अतिक्रमण के आधार पर अविधिमान्यकरण के विरुद्ध अनुच्छेद 33 द्वारा संरक्षण प्राप्त हैं। इसलिए पिटीशनर की ओर से दी गई वर्तमान दलील भी अवश्य असफल होनी चाहिए। (पैरा 13)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1976]	[1976]4 उम० नि० प० 32=[1976]2 एस० सी० आर० 769 : ओस कुटीलिंगल अच्यदन नायर और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (Ous Kutilingal Achydan Nair and Others *v*. Union of India and Others);	10
[1974]	[1974]2 उम० नि० प० 952=(1974)2 एस० सी० सी० 402 : मगन लाल छगन लाल बनाम म्युनिसिपल कार्पोरेशन, ग्रेटर मुम्बई (Maganlal Chhaganlal *v*. Municipal Corporation, Greater Bombay).	13

निर्दिष्ट निर्णय

[1967]	[1967] एस० सी० आर० 399 : नार्दर्न इण्डिया केटरर्स लिमिटेड बनाम पंजाब राज्य (Northern India Caterers Limited *v*. State of Punjab);	13
[1964]	[1964] 5 एस० सी० आर० 931 : राम स्वरूप बनाम भारत संघ (Ram Swaroop *v*. Union of India).	7

आरम्भिक (रिट) अधिकारिता : **1980 का रिट पिटीशन (दाण्डिक) सं० 815, 843, 632, 1981 का 844 5116, 1980 का 1301-04, 1383, 3460, 4510, 4511, 4512, 4551 और 1981 का 3861, 3848, 1981 का 8317 और 1982 की 59.**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1980 का विशेष इजाजत पिटीशन (दाण्डिक) संख्या 2061-65 को भी सुना गया ।]

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशन ।

पिटीशनरों की ओर से

(रिट पिटीशन सं० 815/80 में)	श्री के० के० वेनूगोपाल और कुमारी मृदुला राय
(रिट पिटीशन सं० 815/80 और 5116/81 में)	श्री डी० पी० मुखर्जी
(रिट पिटीशन सं० 815, 5116, 843, 844 और 8317 में)	सर्वश्री ए० के० गांगुली और जी० एस० चटर्जी
(रिट पिटीशन सं० 3460, 1383 4510, 4551, 1301-4, 4511 और एस० एल० पी० सं० 2061-65 में)	सर्वश्री एम० के० राममूर्ति, जनार्दन शर्मा, पी० गौड़
(रिट पिटीशन सं० 3861 में)	कुमारी कैलाश मेहता
(रिट पिटीशन सं० 3848 में)	श्री एम० एम० एल० श्रीवास्तव
(रिट पिटीशन सं० 632 में)	स्वयं पिटीशनर श्री चन्द्रमोली
(रिट पिटीशन सं० 59 में)	कोई नहीं
(1980 के रिट पिटीशन सं० 4512 में)	श्री आर० के० मेहता
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री एल० एन० सिन्हा, महान्यायवादी (अटर्नी जनरल); श्री एम० के० बनर्जी, अपर महासालिसिटर, श्री के० एम० अब्दुल कादर, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री गिरीश चन्द्र और कुमारी ए० सुभाषिणी

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति पी० एन० भगवती ने दिया ।

न्यायाधिपति भगवती—

इन रिट पिटीशनों में संक्षिप्त किन्तु विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत हुए हैं जो कि संविधान के अनुच्छेद 33 के निर्वचन से सम्बन्धित हैं । प्रश्न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह है कि क्या सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 सपठित सेना नियम, 1954 का अध्याय 4 अनुच्छेद 33 की परिधि और व्याप्ति के भीतर आती है और यदि ऐसा है तो क्या तारीख 23 सितम्बर, 1960 की केन्द्रीय सरकार की अधिसूचना सं० एस० आर० ओ० 329 और 330 जिसके द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 और सेना नियम, 1954 के अध्याय 4 को जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स की बाबत लागू किया गया है, उस अनुच्छेद के अधिकारातीत हैं क्योंकि जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स न तो सशस्त्र बल है और न ही लोक व्यवस्था को बनाए रखने का भार साधन करने वाला कोई बल है। यह कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न हैं क्योंकि यह ऐसे अनेक व्यक्तियों के मूल अधिकारों पर प्रभाव डालता है जो जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स के व्यक्ति हैं और इस प्रश्न का सही विनिश्चय करने के लिए जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स की सही प्रकृति और स्वरूप पर सर्वप्रथम विचार करना आवश्यक है।

2. 1960 में या लगभग उसके आस-पास यह अनुभव किया गया था कि उत्तर और उत्तर पूर्व सीमावर्ती क्षेत्रों के आर्थिक विकास में अल्प या अपर्याप्त संचार-व्यवस्था के कारण अत्यधिक बाधा हो रही थी और इन क्षेत्रों की सुरक्षा की दृष्टि से भी सशस्त्र बलों के प्रभावी संचालन और नियोजन करने के लिए अनेक सड़कों का होना भी आवश्यक था। इसके कारण यह और भी आवश्यक हो गया था क्योंकि भारत का अपने पड़ोसियों के साथ सम्बन्ध सम्भावित झगड़े की स्थिति वाला था और भारत के राज्य क्षेत्र का एक भाग विदेश के अधीन था और ऐसे विद्रोही भी थे जो लोगों के कतिपय वर्ग को सम्बन्ध-विच्छेद का आन्दोलन करने के लिए उकसा रहे थे। इसलिए भारत सरकार ने देश की सुरक्षा की तैयारी में सुधार करने के लिए सीमावर्ती क्षेत्रों में विद्यमान सड़कों में सुधार करने के लिए और नयी सड़कों का सन्निर्माण करने के लिए परिकल्पित परियोजनाओं के लिए समन्वय और शीघ्रता से निष्पादन सुनिश्चित करने को दृष्टि में रखते हुए संकर्म निदेशालय (डायरेक्टोरेट जनरल आफ वर्क्स) में अनेक पद सृजित किए गए और सेना मुख्यालय में सीमावर्ती सड़कों के विकास से सम्बन्धित कार्यों के लिए पद सृजित किए गए जैसा कि अवर सचिव भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय द्वारा थल सेनाध्यक्ष को भेजे गए तारीख 9 अप्रैल, 1960 के पत्र द्वारा प्रकट है। 18 अप्रैल, 1960 को, इसके कुछ दिन पश्चात् भारत सरकार ने संकर्म महानिदेशालय (डायरेक्टोरेट जनरल आफ वर्क्स) सेना मुख्यालय में मेजर जनरल के रैंक पर डायरेक्टर जनरल, बोर्डर रोड्स का पद मंजूर किया गया,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के अवर सचिव द्वारा थल सेनाध्यक्ष को भेजे गए तारीख 18 अप्रैल, 1960 का पत्र देखिए। महानिदेशक, सीमा सड़क (डायरेक्टर जनरल बोर्डर रोड्स) को इस नये संगठन का भारसाधक बनाया गया था जो मूलत: डायरेक्टर जनरल आफ वर्क्स, आर्मी हेडक्वार्टर्स के भाग के रूप में प्रारंभ हुआ। किन्तु इसके पश्चात् उच्च नीति के कारण यह विनिश्चय किया गया था कि इस संगठन को डायरेक्टर जनरल आफ वर्क्स आर्मी हेडक्वार्टर्स के भाग के रूप में बना नहीं रहना चाहिए बल्कि उपाध्यक्ष के रूप में रक्षा मंत्री, वित्तीय सलाहकार के रूप में वित्तीय सलाहकार (रक्षा) और प्रधान मंत्री द्वारा नामनिर्दिष्ट कतिपय अन्य सदस्यों सहित प्रधानमंत्री की अध्यक्षता के अधीन पृथक् रूप से आत्मनिर्भर प्राधिकरण के रूप में भारत सरकार द्वारा स्थापित बार्डर रोड्स डेवलपमेंट बोर्ड के अधीन होना चाहिए। बार्डर रोड डेवलपमेंट बोर्ड का बजट जहाजरानी और परिवहन मंत्रालय के बजट का भाग है, किन्तु वित्तीय नियंत्रण वित्त मंत्रालय (रक्षा) में निहित था। भारत सरकार ने बोर्डर रोड्स डेवलपमेंट के सचिव द्वारा बोर्डर रोड्स के महानिदेशक को भेजे गए तारीख 16 जून, 1960 के पत्र द्वारा "सीमावर्ती क्षेत्रों में मार्ग के सन्निर्माण के लिए तथा ऐसे अन्य कार्यों को करने के लिए जैसा कि उसे बार्डर रोड्स डेवलपमेंट बोर्ड द्वारा सौंपा जा सकता है, जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स समुत्थापित करने और उसे बनाए रखने के लिए", राष्ट्रपति की मंजूरी के बारे में संसूचित किया। यह निदेश दिया गया था कि जनरल रिजर्व इंजीनियरी फोर्स "डायरेक्टर जनरल बोर्डर रोड्स के पूर्ण समावेश के अधीन होगा जिसके अधीन रीजनल चीफ इंजीनियर (क्षेत्रीय मुख्य अभियन्ता) / इनडिपेंडेंट डिप्टी चीफ इंजीनियर (स्वतंत्र उप-मुख्य अभियन्ता) होंगे जो अपने नियंत्रणाधीन रखे गए बल की यूनिटों पर समादेश/कमान प्रयोग करेंगे।" इस प्रकार जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स (जिसे इसमें इसके पश्चात् जी० आर० ई० एफ० कहा गया है) भारत सरकार के प्राधिकार के अधीन समुत्थापित किया गया था और इसे महानिदेशक सीमावर्ती मार्ग डायरेक्टर जनरल बोर्डर रोड्स) के पूर्ण समादेश (कमांड) के अधीन रखा गया था। तब से महानिदेशक बोर्डर रोड्स सदैव मेजर जनरल के पद का सैनिक अधिकारी रहा है वह बार्डर रोड्स डेवलपमेंट बोर्ड के निदेशों के अधीन कार्य करता है।

3. जनरल रिजर्व इन्जीनियरिंग फोर्स (जी० आर० ई० एफ०) विभिन्न बिल्लों सहित और सेना में यूनिटों और सब-यूनिटों और ऐसी रैंक में जो कि सेना में के रैंक के समतुल्य है, सेना की पद्धति में संगठित किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है । जी० आर० ई० एफ० के अधिकारियों और अन्य कार्मिकों से चतुर्थ वर्ग से वर्ग एक तक के कार्मिकों के वर्दी में रहने की अपेक्षा की गई है। यद्यपि जी० आर० ई० एफ० निस्संदेह विभागीय निर्माण अभिकरण है तथापि इसे सेना संक्रिया/आपरेशनल अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए भारत सरकार द्वारा कायम रखा जाता है और जिनकी संक्रिया योजना संक्रिया प्रयोजनों के लिए जी० आर० ई० एफ० के यूनिटों की उपलब्धि पर आधारित है। वस्तुतः जी० आर० ई० एफ० ने 1962 के भारत-चीन युद्ध के दौरान और 1965 और 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान सेना को सहायता पहुंचाई तथा 1966 में मिजोरम में और 1980-81 में असम में हुई अशांति के दौरान लोक व्यवस्था बनाए रखने में सेना को सहायता भी पहुंचाई। जी० आर० ई० एफ० के कार्मिक मुख्यतः दो स्रोतों से लिये जाते हैं और इसमें (1) सेना के अधिकारी और व्यक्ति सम्मिलित हैं और (2) अधिकारियों की दशा में संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से भर्ती किए गए अधिकारी और व्यक्ति और अन्य रैंकों की दशा में विभागीय रूप से भर्ती किये गये व्यक्ति सम्मिलित हैं। 10 प्रतिशत कोटा भूतपूर्व सैनिकों की भर्ती के लिए आरक्षित रखा गया है। जी० आर० ई० एफ० में सेना के अधिकारियों और व्यक्तियों को तदर्थ आधार पर नियुक्त नहीं किया जाता बल्कि सदैव तथा प्रत्येक स्तर पर सेना की संक्रियात्मक अपेक्षा को पूरा करने के लिए परिकल्पित बल के रूप में जी० आर० ई० एफ० के विशेष स्वरूप को कायम रखने के प्रयोजन के लिए भारत सरकार द्वारा अधिकथित, सुविचारित सैनिक तैनात करने की नीति (मैनिंग पालिसी) के अनुसरण में किया जाता है। अधिकारियों के बारे में भारत सरकार द्वारा अधिकथित सैनिक तैनात करने की नीति निम्न प्रकार है—

पद	सेना	जी० आर० ई० एफ०
ब्रिगेडियर/कर्नल/मुख्य इन्जीनियर ग्रेड 1 और 2	75%	25%
लेफ्टीनेंट कर्नल/अधीक्षण इन्जीनियर	50%	50%
मेजर/कार्यपालक इन्जीनियर	42%	58%
कैप्टेन/सहायक कार्यपालक इन्जीनियर	20%	80%
सहायक इन्जीनियर	—	100%

जहां तक संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से या विभाग के माध्यम से नियुक्त किए गए अधिकारियों और व्यक्तियों का सम्बन्ध है, उन सभी को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भर्ती के तुरन्त पश्चात् जी० आर० ई० एफ० केन्द्र में प्रशिक्षण दिया जाता है। जी० आर० ई० एफ० केन्द्र का उसी आधार पर गठन किया गया है जैसा कि सेना रेजीमेंटल सेन्टर का किया गया है और यह उसी रूप में कार्य करता है। यह इन्जीनियर रेजीमेंटल सेन्टर के निकट एक स्थान पर स्थित है, आरम्भ में रुड़की, और अब पुणे में स्थित है, जिससे कि यदि आवश्यक हो तो यह इन्जीनियर रेजीमेंटल सेन्टर के स्रोत को काम में ला सकता है। नए रंगरूट निम्नलिखित तीन सैन्य विषयों में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं—

(क) ऐसे विषय (अनुशासन) जिनमें ड्रिल, (कवायद) मार्च और सैल्यूट (सलामी) सम्मिलित हैं।

(ख) समाघात (कम्बाट) प्रशिक्षण जिसमें शारीरिक प्रशिक्षण सम्मिलित है, अर्थात् स्टैंण्डिग एक्सरसाईज, बीम एक्सरसाईज, रस्साकस्सी, रूट मार्च इत्यादि, हारबर डिप्लाइमेंट ड्रिल्स, छावनी संरक्षण इत्यादि।

(ग) समाघात कम्बाट इन्जीनियरिंग प्रशिक्षण जिसमें फील्ड इन्जीनियरिंग विस्फोटक पदार्थों का इस्तेमाल कैमोफलेग, समाघात उपकरण, पुल बनाना, फील्ड किलाबन्दी, वायर आब्सटेकिल्स इत्यादि सम्मिलित हैं।

जी० आर० ई० एफ० के कार्मिक को आयुद्धों का प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षण नहीं दिया जाता क्योंकि जी० आर० ई० एफ० द्वारा किए जाने वाला कार्य ऐसा कार्य है जिसमें कि उनके कार्मिकों से आयुधों का प्रयोग अपेक्षित नहीं है और उन्हें मात्र स्थायी संरक्षण के लिए ही आयुद्धों की आवश्यकता होती है और आपातकाल के दौरान प्रयोग के लिए। इसलिए जी० आर० ई० एफ० में आयुद्धों को जारी किया जाना प्रोवेस्ट यूनिट्स (जी० आर० ई० एफ०) पुलिस जैसी कतिपय यूनिटों के अतिरिक्त सेना कार्मिक और भूतपूर्व सैनिकों तक ही निर्बन्धित किया गया है जिन्हें उनके कार्यों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अनिवार्यतः सशस्त्र किया जाता है।

4. वह कार्य जो जी०आर०ई०एफ० द्वारा करना होता है, उसमें न केवल सामरिक महत्व के मार्ग को बनाए रखना सम्मिलित है बल्कि आर्मी इंजीनियर रेजीमेंट्स के स्थान पर सेना की संक्रिया योजनाओं के लिए समर्थन देना भी सम्मिलित है। वर्तमान में हम जी० आर० ई० एफ० के लिए सही स्वरूप को प्रकाश में लाने के लिए इन कार्यों को विस्तार से उल्लेख करेंगे किन्तु उससे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्व कि हम ऐसा करें हम यह संकेत कर सकते है कि जी० आर० ई० एफ० यूनिटों के कार्य और संगठन में सेना मुख्यालय (आर्मी हेडक्वार्टर्स) के परामर्श से समय-समय पर पुनर्विलोकन किया गया है और 1971 के भारत पाकिस्तान युद्ध के पश्चात् किए गए बड़े पैमाने पर पुनर्विलोकन के परिणामस्वरूप सेना मुख्यालय ने तारीख 24 जनवरी, 1973 के गुप्त दस्तावेज में जी० आर० ई० एफ० यूनिटों के कार्यों और संगठन को परिभाषित किया है। उस दस्तावेज में यह स्पष्ट है कि सेना मुख्यालय के अनुसार कम से कम 17 बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज और 34 पायनिर कम्पनीज से सेना को स्थायी तौर से इन्जीनियर-सहायता की व्यवस्था करने की अपेक्षा की गई है। पूरा वर्ष यह न्यूनतम अपेक्षा पूरी की गयी है और 17 बार्डर रोड्स टास्क फार्सिज और 34 पायनिर कम्पनीज को स्थायी बनाया गया है। इन 17 बार्डर रोड्स टास्क फार्सिज और 34 पाइनियर कम्पनीज को सेना की संक्रियात्मक अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए जी० आर० ई० एफ० की अनिवार्य यूनिटों के रूप में कायम रखना होगा, भले ही किसी नियत समय में सीमावर्ती क्षेत्रों में पर्याप्त कार्यभार उपलब्ध न हो। वस्तुतः इस समय 21 बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज 34 पाइनियर कम्पनीज हैं अर्थात् 4 बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज सेना प्राधिकारियों द्वारा न्यूनतम अपेक्षा से अधिक, इन चार अतिरिक्त बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज की अध्यपेक्षा में कार्य के भार पर निर्भर रहते हुए समय-समय पर पुनर्विलोकन किया गया है। बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज का गठन कैसे होना चाहिए यह बात 24 जनवरी, 1973 के दस्तावेज में अधिकथित है और इस दस्तावेज में बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज द्वारा किए जाने वाले कार्यों को भी उपवर्णित किया गया है जिन्हें संक्षेप में निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है—

(क) बार्डर रोड्स द्वारा निर्मित सड़कों और सी० पी० डब्ल्यू० डी० और स्टेट पी० डब्ल्यू० डी० और एम० ई० एस० द्वारा बनाए रखी गई सड़कों सहित युद्ध क्षेत्र के पिछले क्षेत्रों में संचार की व्यवस्था बनाए रखना।

(ख) समाघात (कम्बैट) इंजीनीयरों द्वारा निर्मित संक्रिया सड़क और पथ का सुधार और उसे बनाए रखना।

(ग) ए० आई० सी० एस० और हेलीपड (हेलीपैड) का सन्निर्माण और उसे बनाए रखना।

(घ) हवाई अड्डों का सुधार और मरम्मत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ङ) संक्रिया कायम रखने के लिए अपेक्षितक्षेत्रों के रख-रखाव के लिए आवास का सन्निर्माण और संबद्ध सुविधाओं की व्यवस्था करना।

(च) रक्षा सम्बन्धी कार्यों तथा बाधाओं का निर्माण करना, और

(छ) दुर्गम भूभागों और मरुभूमियों में जल प्रदाय करना।

सेना को उसकी संक्रियात्मक योजनाओं के लिए इन्जीनियरी सम्बन्धी सहायता की व्यवस्था करने को दृष्टि में रखते हुए संक्रिया के दौरान बार्डर रोड टास्क फोर्सिज द्वारा इन कार्यों को करने की अपेक्षा की गई है। बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज को इन कार्यों को सीमावर्ती क्षेत्रों तक न केवल देश के भीतर पूरा करना होता है बल्कि शत्रु के राज्य क्षेत्र के भीतर आगे बढ़कर सीमावर्ती क्षेत्र में भी पूरा करना होता है। शांति के दौरान भी बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज को संक्रिया के संभाव्य क्षेत्र में समुचित रूप से तैनात करना होता है जिससे कि शत्रु से युद्ध की दशा में उन्हें शीघ्रता से उनकी संक्रिया सम्बन्धी कार्यों में नियोजित किया जा सके। पायनिर कम्पनियों सहित बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज को भी जो उससे संलग्न हैं, सेना की सैन्य विरचना में सम्मिलित किया गया है जिससे कि इन यूनिटों का समर्थन सेना को गारंटीकृत की जाए और किसी भी समय इनकी अपेक्षा तलब की जा सकती है। जी० आर० ई० एफ० की इन यूनिटों को निम्न सैन्य विरचना में पुनः उपआबंटित किया गया है, जैसे कम्मांड, कोर और डिवीजन और उन विरचनाओं के सैन्य विन्यास पर देखे जा सकते हैं। इनका मुख्य कार्य संक्रिया-सम्बन्धी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए जनरल स्टाफ, आर्मी हेडक्वार्टर्स द्वारा तैयार किए गए कार्यों को करना होता है और इन कार्यों में अन्य बातों के साथ-साथ मार्ग का, संक्रिया संबंधी पटरियों का, विमान क्षेत्रों का, खाई और बान्ध का, (सीमावर्ती क्षेत्र में जल बाधा) और बंकर, फायर खाईयों और पील बाक्स जैसे फील्ड किलाबंदी का सन्निर्माण और उन्हें बनाए रखना सम्मिलित है। यदि जनरल स्टाफ, आर्मी हेडक्वार्टर्स की अपेक्षाओं को पूरा करने के पश्चात् जी० आर० ई० एफ० की इन यूनिटों को अतिरिक्त क्षमता उपलब्ध है तो ये अन्य मंत्रालयों या विभागों की ओर से सन्निर्माण संबंधी कार्य का जिम्मा हाथ में लेते हैं यद्यपि वहां की; संवेदनशील सीमावर्ती क्षेत्र में सामाजिक महत्व के और अन्य सड़कों को अधिमान दिया जाता है। सीमा सड़क संगठन (बार्डर रोड्स आर्गनाईजेशन) के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आबंटित निधि गैर-योजना निधि है जो अनन्यतः जनरल स्टाफ, आर्मी हेडक्वार्टर्स की अपेक्षाओं को पूरा करने का संकेत करती है और उनका इस्तेमाल अन्य मंत्रालयों या विभागों के शेष कार्यों को करने के लिए नहीं किया जा सकता। अब अन्य मंत्रालय या विभागों की ओर से जी० आर० ई० एफ० यूनिटों द्वारा संकर्म का जिम्मा लिया जाता है तो उन्हें एजेंसी के आधार पर संकर्म के रूप में समझा जाता है और जहां यह लागू होता है वहां एजेंसी प्रभार उन मंत्रालयों या विभागों से बार्डर रोड्स आर्गनाईजेशन द्वारा संगृहीत किए जाते हैं जिनके कार्य उनके द्वारा किए जाते हैं। जी० आर० ई० एफ० यूनिट यथासंभव केवल उन कार्यों को करने का जिम्मा लेता है जो प्रकृति से उन कार्यों के समान प्रकृति के कार्य हैं जिनके लिए सेना की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए उन्हें मुख्यतः परिकल्पित किया गया है। यह बात लेफ्टीनेंट कर्नल एस० एस० चीमा के इस अतिरिक्त शपथपत्र से प्रकट है कि जी० आर० ई० एफ० यूनिटों द्वारा कार्यान्वित किए गए कार्यों के अधिकांश भाग में जनरल स्टाफ, आर्मी हेडक्वार्टर्स द्वारा सौंपे गए कार्य सम्मिलित हैं और अन्य मंत्रालयों या विभागों की ओर से एजेंसी के आधार पर किए गए कार्य तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम मूल्य वाले कार्य हैं। वस्तुतः 1966 तक जी० आर० ई० एफ० यूनिटों द्वारा एजेंसी के आधार पर किसी कार्य का जिम्मा नहीं लिया गया था और 1967 से 1970 की अवधि के दौरान जी०आर० ई०एफ० यूनिटों द्वारा कुल कार्य के 2 प्रतिशत से कम कार्य अन्य मंत्रालयों या विभागों के लिए किया गया था। 1970-71 से 1980-81 के दौरान भी अन्य मंत्रियों या विभागों की ओर से जी० आर० ई० एफ० यूनिटों द्वारा किए गए कार्यों का प्रतिशत औसतन कुल कार्य का 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हुआ। 1980-81 के आंकड़ों से भी यही पद्धति प्रकट होती है। 1981-82 के दौरान जनरल स्टाफ आर्मी हेडक्वार्टर्स के लिए जी० आर० ई० एफ० यूनिटों द्वारा किए गए कार्यों में बार्डर रोड्स आर्गनाईजेशन की निधियों में से 12865 किलोमीटर सड़क का सन्निर्माण और उसे बनाए रखना तथा रक्षा-मंत्रालय द्वारा दी गई निधियों में से 310 किलोमीटर खाई और बन्ध का सन्निर्माण और इन्हें बनाए रखना सम्मिलित है जब कि सीमावर्ती क्षेत्रों में जहाजरानी और परिवहन मंत्रालय द्वारा न्यस्त किए गए एजेंसी कार्य सामरिक महत्व के 519 किलोमीटर संवेदनशील सीमावर्ती क्षेत्र के 216 किलोमीटर से और 376 किलोमीटर राष्ट्रीय राज्य मार्ग से अधिक के मार्ग सम्मिलित नहीं है और अन्य मंत्रालयों द्वारा न्यस्त किए गए एजेंसी कार्य केवल 702 किलोमीटर मार्ग तक ही सीमित थे। इस प्रकार यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्रष्टव्य है कि जी० आर० ई० एफ० यूनिटों द्वारा किए गए कार्य के अधिकांश भाग में जनरल स्टाफ आर्मी हेडक्वार्टर्स द्वारा न्यस्त किए गए कार्य सम्मिलित हैं और कार्य का केवल मामूली अंश अन्य मंत्रालयों या विभागों की ओर से किया जाता है जब कि अतिरिक्त क्षमता उपलब्ध होती है।

5. जहां तक जी० आर० ई० एफ० के कार्मिक का सम्बन्ध है वे भागतः सेना से लिए जाते हैं और भागतः सीधी भर्ती द्वारा लिए जाते हैं। सेना के कार्मिक को जी० आर० ई० एफ० में उनकी संक्रिया संबंधी अपेक्षाओं में सेना के समर्थन के लिए आशयित बल के रूप में जी० आर० ई० एफ० के विशेष स्वरूप को सुनिश्चित करने को दृष्टि में रखते हुए विकसित विमर्शपूर्वक और सावधानीपूर्वक योजनाबद्ध सैनिक तैनात करने की नीति (मैनिंग पालिसी) के अनुसार तैनात किए जाते हैं। जी० आर० ई० एफ० यूनिटों में सेना के कार्मिकों की तैनाती वस्तुतः सामान्य रेजीमेंट सम्बन्धी तैनाती के रूप में समझी जाती है और ऐसे तैनात किए गए सेना के कार्मिक किसी प्रतिनियुक्ति के लिए या अन्य भत्ते के लिए हकदार नहीं होते और इसे प्रोन्नति, भविष्य योजना इत्यादि के प्रयोजन के लिए सेना में उसी प्रकार की तैनाती के रूप में समझी जाती हैं। जी० आर० ई० एफ० यूनिटों में तैनात किए गए सेना कार्मिकों की सेवा की अवधि को सामान्य रेजीमेंटल ड्यूटी के रूप में समझा जाता है और सेना के ऐसे कार्मिक, सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के उपबंधों के अधीन बने रहते हैं जब तक वे जी० आर० ई० एफ० में रहते हैं। किन्तु ऐसे सेना के कार्मिक के अतिरिक्त जो जी० आर० ई० एफ० के महत्वपूर्ण भाग हैं, सीधे भर्ती किए गए ऐसे कार्मिक भी जो सेना से नहीं लिए गए हैं, जी० आर० ई० एफ० के विशेष स्वरूप को ध्यान में रखते हुए, सेना के कठोर अनुशासन के अधीन रखे जाते हैं और अपनी संक्रिया सम्बन्धी अपेक्षाओं के लिए उसकी (सेना की) सहायता में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की उनसे अपेक्षा की गई है। चूंकि युद्ध होने की दशा में जी० आर० ई० एफ० यूनिटों की क्षमता और दक्षता उनकी सदैव विद्यमान क्षमता और दक्षता पर निर्भर करती है, इसलिए शांति के दौरान भी उन्हें कठोर अनुशासन के अधीन रहना होता है क्योंकि यह प्राथमिक बात है कि अवसर आने पर उनसे एकाएक उठकर खड़ा होने की और सैन्य संक्रिया के दौरान सेना को आवश्यक समर्थन देने की तब तक प्रत्याशा नहीं की जा सकती जब तक कि वे समुचित रूप से अनुशासित न हों, तथा प्रत्येक समय सही दशा में न हों जिससे कि वे किसी भी संभाव्यता के लिए तैयार हो सकें। भारत सरकार ने सेना अधिनियम, 1950 की धारा 4 की उपधारा (1) और (4) द्वारा प्रदत्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपनी शक्ति के प्रयोग में तारीख 23 सितम्बर, 1960 की अधिसूचना एस० आर० ओ० 329 जारी की जिसके द्वारा अनुसूची 'ख' में उपवर्णित उपांतरणों के अधीन रहते हुए अनुसूची 'क' में दर्शित अपवादों सहित उस अधिनियम के सभी उपबंध जी० आर० ई० एफ० को लागू किए गए और उसमें भी यह निदेश दिया गया कि अनुसूची 'ग' के प्रथम स्तम्भ में वर्णित अधिकारी अनुसूची के द्वितीय काम में विनिर्दिष्ट उस अधिनियम के प्रवर्तन के प्रसंग में अपने कमान के अधीन उक्त बल के सदस्यों के बारे में अधिकारिता शक्ति और कर्तव्यों का प्रयोग या पालन करेगा। इस अधिसूचना द्वारा सेना अधिनियम, 1950 के विभिन्न उपबंध जी० आर० ई० एफ० को लागू किए गए और उनमें से धारा 21 है जो निम्न प्रकार है—

> 21. नियमित सेना या उसकी किसी शाखा से सम्बन्धित किसी भी तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के अध्यधीन के किसी व्यक्ति के उस अधिकार को जो उसका—
>
> (क) किसी व्यवसाय संघ या श्रमिक संघ के अपना व्यवसाय या श्रमिक संघों के किसी वर्ग के, अथवा किसी सोसायटी, संस्था या संगम के अथवा सोसाइटियों, संस्थाओं या संगमों के किसी वर्ग के, सदस्य होने या उससे किसी भी रूप में सहयुक्त होने का है,
>
> (ख) व्यक्तियों के किसी निकाय द्वारा किसी राजनीतिक या अन्य प्रयोजनों के लिए संगठित किसी सभा में हाजिर होने या उसे सम्बोधित करने अथवा संगठित किसी प्रदर्शन में भाग लेने का है,
>
> (ग) प्रेस से कोई सम्पर्क करने या कोई पुस्तक, पत्र या अन्य दस्तावेज प्रकाशित करने या प्रकाशित कराने का है।

इस विस्तार तक तथा ऐसी रीति से, जो आवश्यक हो, निर्बन्धित करने वाले नियम, अधिसूचना द्वारा बना सकेगी। अन्य धाराएं जो लागू की गई हैं, विशेष विशेषाधिकारों, अपराधों दण्डों, शास्ति सम्बन्धी कटौतियों, गिरफ्तारी और विचारण से पूर्व कार्यवाहियों और कोर्ट मार्शल और अन्य आनुषंगिक विषयों के बारे में है। धाराएं जो लागू की गई हैं उनसे प्रत्यक्षतः जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों पर कठोर अनुशासन अधिरोपित करना आशयित है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसी प्रकार का अनुशासन जैसा नियमित सेना कार्मिक द्वारा पालन किया जाना अपेक्षित है। भारत सरकार ने भी सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21, धारा 102 की उपधारा (4) और धारा 191 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में उसी दिन अर्थात् 23 सितम्बर, 1960 को एक अन्य अधिसूचना एस० आर० ओ० 330 जारी की जिसमें यह निदेश दिया गया कि समय-समय पर यथासंशोधित सेना नियम, 1954 सिवाय नियम 7 से 18, 168, 172 से 176, 190 और 191 के सेना अधिनियम, 1950 के अधीन विरचित नियम समझा जाएगा जैसा कि जी० आर० ई० एफ० को लागू होता है। सेना नियम, 1954 के नियम 19, 20 और 21 वर्तमान रिट पिटीशनों के प्रयोजन के लिए महत्वपूर्ण हैं और इनमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित उपबंध किया गया है—

19. अप्राधिकृत संगठन—अधिनियम के अधीन व्यक्ति केन्द्रीय सरकार की अभिव्यक्त मंजूरी के बिना—

(i) किसी ऐसी सोसायटी, संस्था या संगठन का, जो संघ में सशस्त्र बलों के भाग के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है, तब तक शासकीय संज्ञान नहीं करेगा या उसकी सहायता नहीं करेगा या उनमें सक्रिय भाग नहीं लेगा जब तक कि वह आमोद-प्रमोद या धार्मिक प्रकृति का न हो और न ही और ऐसी दशा में वरिष्ठ आफिसर की पूर्व मंजूरी अभिप्राप्त की जाएगी।

(ii) किसी व्यापार संघ या श्रमिक संघ का, या व्यापार या श्रमिक संघ के किसी वर्ग का सदस्य नहीं होगा या उनके साथ किसी प्रकार सहयुक्त नहीं होगा।

20. राजनैतिक और असैनिक कार्यकलाप—

(1) अधिनियम के अधीन व्यक्ति, किसी दल या राजनैतिक प्रयोजनों के लिए आयोजित किसी अधिवेशन या प्रदर्शन में उपस्थित नहीं होगा, उसे सम्बोधित नहीं करेगा या उसमें भाग नहीं लेगा, या किसी राजनैतिक संगम या आंदोलन का सदस्य नहीं होगा या उसमें शामिल नहीं होगा, या उसकी सहायतार्थ चंदा नहीं देगा।

(2) अधिनियम के अधीन व्यक्ति निर्वाचकों को सम्बोधित नहीं करेगा या किसी अन्य रीति में संसद् किसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राज्य के विधानमंडल या किसी स्थानीय प्राधिकरण, या किसी अन्य लोक निकाय के निर्वाचन के लिए स्वयं को अभ्यर्थी या भावी अभ्यर्थी के रूप में सार्वजनिक रूप में घोषित नहीं करेगा या सार्वजनिक रूप से घोषित किए जाने की अनुमति नहीं देगा या किसी अभ्यर्थी की निर्वाचन समिति के सदस्य के रूप में कार्य नहीं करेगा, या किसी अभ्यर्थी के हितों का किसी भी ढंग से सक्रिय रूप से अभिवर्द्धन नहीं करेगा या अग्रसर नहीं करेगा ।

21. प्रेस को संसूचनाएं, व्याख्यान, आदि—अधिनियम के अधीन कोई व्यक्ति—

(i) ऐसी कोई सामग्री जिसमें राजनैतिक प्रश्न संबंधी कोई विषय या सेवा विषय या सेवा संबंधी जानकारी है, किसी भी रूप में प्रकाशित नहीं करेगा या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रेस को संसूचित नहीं करेगा । या ऐसे विषय या मामले पर केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट किसी आफिसर की पूर्व मंजूरी के बिना ऐसी सूचना से युक्त किसी अन्य पुस्तक या पत्र या लेख या दस्तावेज को ऐसे प्रश्न या विषय पर प्रकाशित नहीं करेगा या प्रकाशित नहीं कराएगा; या

(ii) राजनैतिक प्रश्न संबंधी किसी विषय या सेना विषय पर या सेवा सम्बन्धी जानकारी पर विचारों से युक्त कोई व्याख्यान या बेतार संयोजन, केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट किसी आफिसर की पूर्व मंजूरी के बिना, नहीं देगा ।

स्पष्टतया इन नियमों के कारण धारा 21 की उत्पत्ति हुई है और ये जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों के मूल अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित करते हैं । चूंकि सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम 1954 तारीख 23 सितम्बर, 1960 के एस० आर० ओ० 329 और 330 के कारण लागू किए गए हैं इसलिए जब जी० आर० ई० एफ० के कार्मिकों की नियुक्ति की जाती है तो उनसे नियुक्ति के कतिपय निबंधनों और शर्तों को स्वीकार करने की अपेक्षा की गई है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सम्मिलित हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"5(iv) आपको समय-समय पर यथासंशोधित सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 के उपबंध लागू होंगे। उपर्युक्त बातों के होते हुए भी, आप अनुशासन के प्रयोजन के लिए सेना अधिनियम, 1950 तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों के, जैसा कि 1960 के एस० आर० ओ० 329 और 330 में अधिकथित है, कतिपय और उपबंधों के अधीन होंगे। सेना अधिनियम, 1950 के अधीन समुचित अनुशासनिक प्राधिकारी को, जहां कहीं वह ऐसा करना समीचीन और आवश्यक समझता इसके उपबंधों के अधीन अग्रसर होने का अधिकार होगा।

5(v) आपसे भारत में या भारत के बाहर कहीं भी सेवा करने की अपेक्षा की जाएगी और जब सरकार या नियत प्राधिकारी या वरिष्ठ अधिकारी द्वारा ऐसा करने को कहा जाए तब आप फील्ड सेवा पर अग्रसर होंगे।

5(vi) यदि अपेक्षित हो तो आप किसी रक्षा सेवा में या भारत की रक्षा से सम्बन्धित किसी पद पर सेवा करने के लिए दायी होंगे।

5(vii) नियुक्ति हो जाने पर आपसे जब आप ड्यूटी पर हों, विहित वर्दी धारण करने की, ऐसे और अनुशासन, ड्यूटी पर तैनाती (टर्न आउट) आपसे सम्बन्धित आपके वरिष्ठ अधिकारी द्वारा जारी किए गए ऐसे नियमों और अनुदेशों का पालन करना अपेक्षित होगा, ऐसे प्रशिक्षण के लिए जाना होगा और ऐसी विभागीय परीक्षा देनी आवश्यक होगा जैसाकि सरकार विहित कर सकती है।"

इसका परिणाम यह है कि जी० आर० ई० एफ० के उन कार्मिकों को जिनकी सीधे नियुक्ति की गई है उन्हें समय-समय पर यथासंशोधित सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 के उपबंध लागू होते हैं किन्तु अनुशासन के प्रयोजनों के लिए वे सेना अधिनियम, 1950 के कतिपय उपबन्धों तथा तारीख 23 सितम्बर, 1960 के एस० आर० ओ० 329 और 330 में यथाअधिकथित कतिपय उपबंधों के अधीन हैं।

6. सभी रिट पिटीशनों में सारवान तथ्य जिनका निपटारा इस निर्णय द्वारा किया जा रहा है, एक से हैं और इस प्रकार प्रत्येक रिट पिटीशन के तथ्यों को पृथक्तः उपवर्णित करना आवश्यक नहीं है। 1980 के रिट पिटीशन सं० 815 के तथ्यों का वर्णन करना पर्याप्त होगा जिस पर मुख्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रिट पिटीशन के रूप में विचार किया गया था और इस रिट पिटीशन के तथ्यों के सम्बन्ध में हम जो कुछ कहते हैं वह अन्य रिट पिटीशन के सम्बन्ध में भी उसी प्रकार लागू होना चाहिए। 1980 के रिट पिटीशन सं० 815 के पिटीशनरों की संख्या चौबीस है और सभी सारवान समय में ही जी० आर० ई० एफ० के सदस्य थे। उनमें से पिटीशनर सं० 1 और 24 का सेवा से अभित्याग किया गया था और सेना अधिनियम, 1950 के उपबंधों के अधीन उन्हें गिरफ्तार करने के लिए वारण्ट जारी किया गया था किन्तु पुलिस प्राधिकारी उन्हें पकड़ने में समर्थ नहीं हुए। जहां तक पिटीशनर सं० 2 से 23 का सम्बन्ध है, उन्हें सेना अधिनियम, 1950 की धारा 63 के अधीन अपराध के लिए कोर्ट मार्शल के समक्ष इसलिए आरोपित किया गया था कि वे जी० आर० ई० एफ० के कतिपय अन्य कार्मिकों के साथ हेडक्वार्टर्स चीफ इंजीनियर (प्रोजेक्ट) वरतक के समक्ष एकत्रित हुए थे और नारे लगाए तथा गिरफ्ताराधीन रखें गए कार्मिकों को निर्मुक्त करने के लिए हेडक्वार्टर चीफ इंजीनियर (प्रोजेक्ट), वरतक से मांग किए और उनकी पेटी (बेल्ट) निकाल लिए तथा ओ० सी० एस० आफिस के निकट मैदान में फेंक दिए, काले झण्डे का प्रदर्शन किया था और पंक्ति में खड़े होने में असफल रहे, यद्यपि उन्हें ब्रिगेडियर गोसेन, चीफ इंजीनियर प्रोजेक्ट, वरतक द्वारा ऐसा करने के लिए आदेश दिया गया था और स्वयं वे "ऑल इण्डिया बार्डर रोड्स एम्पलाईज एसोसिएशन" के नाम से ज्ञात संघ में अवैध रूप से सम्मिलित हुए थे। इन 22 पिटीशनों पर सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 विहित प्रक्रिया के अनुसरण में कोर्ट मार्शल द्वारा विचार किया गया था, जैसा कि यह जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू होता है और सिद्धदोष ठहराए जाने पर उन्हें सेवा से पदच्युत किया गया था। इसके उपरांत पिटीशनरों ने तारीख 23 सितम्बर, 1960 के एस० आर० ओ० 329 तथा 330 की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए 1980 का रिट पिटीशन सं० 815 फाइल किया क्योंकि इन अधिसूचनाओं का प्रभाव जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम 1954 के उपबन्धों को लागू करना था तथा उनके मूल अधिकारों को निर्बन्धित करना था। पिटीशनरों ने यह दलील दी कि जी० आर० ई० एफ० केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार के अधीन समुत्थापित और बनाए रखा गया बल नहीं था और तारीख 23 सितम्बर, 1960 का एस० आर० ओ० 329 और 330 सेना अधिनियम, 1950 की धारा 4 की उपधारा (1) और (4) के अधीन केन्द्रीय सरकार की शक्ति के अधिकारातीत था। पिटीशनरों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने यह भी अनुरोध किया था कि किसी भी दशा में सेना नियम, 1954 के नियम 19 से 21 के साथ पठित सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 का जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू होना असंवैधानिक था क्योंकि जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों के मूल अधिकार ऐसी रीति में निर्बन्धित किए गए थे जो संविधान द्वारा अनुज्ञात नहीं है और मूल अधिकारों पर ऐसा निर्बंधन अनुच्छेद 33 द्वारा संरक्षित नहीं था क्योंकि जी० आर० ई० एफ० के सदस्य उस अनुच्छेद के अर्थान्तर्गत "सशस्त्र बल के या लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बल के सदस्य" नहीं थे। पिटीशनरों की ओर से एक अन्य दलील भी दी गई थी, जो यदि सुआधारित पाई जाती है तो इस बात की परीक्षा करना आवश्यक हो जाएगा कि क्या जी० आर० ई० एफ० केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार के अधीन समुत्थापित और बनाए रखा गया बल था और जी० आर० ई० एफ० के सदस्य सशस्त्र बल के सदस्य थे या लोक व्यवस्था बनाए रखने का भार साधन करने वाले बल के सदस्य थे और दलील जो दी गई यह थी कि सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 किसी भी दशा में अनुच्छेद 33 के निबंधनों के अनुसरण में न्यायोचित नहीं थी क्योंकि उस अनुच्छेद के अधीन एक मात्र संसद् को ही यह अवधारित करने की शक्ति दी गई थी कि किस परिमाण तक मूल अधिकार में से कोई अधिकार सशस्त्र बल के सदस्यों को या लोक व्यवस्था बनाए रखने का भार साधन करने वाले बल के सदस्यों को लागू होने में निर्बन्धित या निराकृत किया जाए जिससे कि उनके कर्तव्यों का उचित पालन और उनमें अनुशासन बनाए रहना सुनिश्चित रहे और संसद् ऐसे निर्बन्धन या निराकरण का परिमाण अवधारित करने के लिए इसे केन्द्रीय सरकार पर नहीं छोड़ सकती, जैसा कि धारा 21 के अधीन करने की ईप्सा की गई थी। इसलिए पिटीशनरों के अनुसार धारा 21 असंवैधानिक और शून्य थी तथा धारा 21 सहित सेना नियम, 1954 के नियम 19 से 21 को अवश्य असफल होना चाहिए। पिटीशनरों ने यह दलील दी कि इन परिस्थितियों में वे सेना नियम 19 से 21 के किसी नियम द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन के बिना अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन अपने मूल अधिकारों का प्रयोग करने के लिए हकदार थे और यदि ऐसा है तो उनके विरुद्ध अभिकथित तथ्यों पर सेना अधिनियम, 1950 की धारा 63 के अधीन उन पर आरोप नहीं लगाए जा सकते और कोर्ट मार्शल द्वारा उन्हें दोषसिद्ध ठहराया जाना अवैध और शून्य था और परिणामतः वे जी० आर० ई० एफ० की सेवा में निरंतर बने रहे। अन्य पिटीशनों में पिटीशनरों की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ओर से स्वयं इसी प्रकार की दलीलें दुहराई गई थीं। प्रत्यर्थियों ने इन दलीलों की विधिमान्यता के बारे में विवाद किया और यह निवेदन किया कि जी० आर० ई० एफ० केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार के अधीन समुत्थापित और बनाए रखा गया बल था और जी० आर० ई० एफ० के विशेष स्वरूप को तथा उस कार्य को दृष्टि में रखते हुए जो सेना की संक्रिया के समर्थन में पालन किया जाना अपेक्षित था जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को अनुच्छेद 33 के अर्थान्तर्गत सशस्त्र बल के सदस्यों के विधिसम्मत रूप से समझा जा सकता है और इसलिए केन्द्रीय सरकार सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के उपबन्धों को तथा विशेष रूप से धारा 21 और नियम 19 से 21 को जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू करते हुए तारीख 23 सितम्बर, 1960 के एस० आर० ओ० 329 और 330 जारी करने के लिए हकदार थी। प्रत्यर्थियों ने धारा 21 की विधिमान्यता का प्रतिवाद किया और यह दलील दी कि यह अवधारित करते हुए संसद् द्वारा अनुच्छेद 33 के अधीन शक्ति का समुचित रूप से प्रयोग किया गया था कि किस सीमा तक मूल अधिकारों को जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों सहित सशस्त्र बल के सदस्यों को लागू करने में, निर्बन्धित या निराकृत किया जा सकता है और यह उस अनुच्छेद द्वारा संसद् को प्रदत्त की गई शक्ति के बाहर नहीं था, और नियम 19 से 21 के साथ पढ़ने पर इसके द्वारा जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों के मूल अधिकारों को विधिमान्यतः निर्बन्धित किया गया था। प्रत्यर्थियों ने यह निवेदन किया है कि इन परिस्थितियों में पिटीशनरों पर सेना अधिनियम, 1950 की धारा 63 के अधीन सही ही आरोप लगाया गया था तथा कोर्ट मार्शल द्वारा उनकी दोषसिद्धि तथा तत्पश्चात् उनका पदच्युत किया जाना विधिमान्य था। इस प्रकार प्रत्यर्थियों ने पिटीशनरों के विरुद्ध प्राधिकारियों द्वारा की गई कार्रवाई की विधिमान्यता को कायम रखने की ईप्सा की थी।

7. अब परस्पर विरोधी दलील के आधार पर विचारार्थ प्रश्न जो उद्भूत होता है वह धारा 21 की संवैधानिक विधिमान्यता है। उस धारा में केन्द्रीय सरकार को "इतने विस्तार तक और ऐसी रीति से जो आवश्यक हो" निर्बन्धित करने वाले नियम अधिसूचना द्वारा विरचित करने के लिए सशक्त किया गया है जिसमें, सेना अधिनियम, 1950 के अधीन रहते हुए किसी व्यक्ति के अधिकारों के 3 प्रवर्ग "उतने विस्तार तक और ऐसी रीति से जो आवश्यक हो" निर्बन्धित करने वाले नियम अधिसूचना द्वारा विरचित करने के लिए सशक्त किया गया है, अर्थात् (क) किसी व्यवसाय संघ या श्रमिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संघ के अपना व्यवसाय या श्रमिक संघों के किसी वर्ग के, अथवा किसी सोसाइटी, संस्था या संगम के अथवा सोसाइटियों, संस्थाओं या संगमों के किसी वर्ग के, सदस्य होने या उससे किसी भी रूप में सहयुक्त होने का है; (ख) व्यक्तियों के किसी निकाय द्वारा किन्हीं राजनीतिक या अन्य प्रयोजनों के लिए संगठित किसी सभा में हाजिर होने या उसे सम्बोधित करने अथवा संगठित किसी प्रदर्शन में भाग लेने का है; (ग) प्रेस से कोई सम्पर्क करने या कोई पुस्तक, पत्र अन्य दस्तावेज प्रकाशित करने का या प्रकाशित कराने का है। वे अधिकार जिन्हें निर्बन्धित किया जाना अनुज्ञात है वे अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन संवैधानिक स्कीम के अधीन मूल अधिकारों के भाग हैं इसलिए वे अधिकारी कार्यपालिका संबंधी ऐसी कार्यवाही द्वारा निर्बन्धित नहीं किए जा सकते जिन्हें विधि का समर्थन प्राप्त नहीं है। यदि कोई निर्बन्धन अधिरोपित किया जाना है तो वह मात्र विधि द्वारा ही किया जा सकता है और तद्नुसार अनुच्छेद 19 के खण्ड (2), (3) या (4) की उपेक्षाओं का समाधान उस विधि द्वारा किया जाना आवश्यक है क्योंकि निर्बन्धित अधिकार अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के भीतर आते हैं। अधिरोपित निर्बन्धन का युक्तियुक्त होना आवश्यक है और अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क) के अधीन अधिकार की दशा में उसे भारत की प्रभुता और अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हित में अथवा न्यायालय अवमान, मानहानि या अपराध उद्दीपन के सम्बन्ध में होना आवश्यक है जैसा कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (11) में उपबन्धित है अनुच्छेद, 19 (1) के खण्ड (ख) के अधीन किसी अधिकार की दशा में "उसे भारत की प्रभुता और अखण्डता या लोक व्यवस्था के हित में होना" आवश्यक है जैसा कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (3) में उपबन्धित तथा अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (ग) के अधीन अधिकार की दशा में उसे "भारत की प्रभुता और अखण्डता या लोक व्यवस्था या सदाचार के हित में" होना आवश्यक है जैसा कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (4) में उपबन्धित है। तभी वे विधिमान्य हो सकते हैं अन्यथा वे असंवैधानिक हो जाएंगे और उन्हें अधिरोपित करने वाली विधि शून्य होगी। अब हमें यहां यह प्रतीत होता है कि स्वयं धारा 21 तीन प्रकार के अधिकारों पर सारतः कोई निर्बन्धन अधिरोपित नहीं करती। यदि स्वतः धारा 21 द्वारा कोई निर्बन्धन अधिरोपित किया गया था तो इस बात की परीक्षा करना आवश्यक हो गया होता कि क्या ऐसा निर्बन्धन अनुच्छेद 19 के खण्ड (2), (3) या (4) के अधीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायोचित है, जैसा कि वे लागू हो सकता है। किन्तु धारा 21 में ऐसा कोई मार्ग दर्शक सिद्धांत अधिकथित किए बिना या ऐसी कोई सीमा उपदर्शित किए बिना इन तीन प्रकार के अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार पर छोड़ दिया गया है, जिससे यह सुनिश्चित होता कि केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन अनुच्छेद 19 के खण्ड (2), (3) या (4) के अनुरूप हैं, इनमें से जो भी लागू हो। इसके द्वारा यह उपबन्ध करके केन्द्रीय सरकार को बहुत व्यापक शक्ति प्रदत्त की गई है कि वह (केन्द्रीय सरकार) उस सीमा तक और उस रीति में, जैसा कि आवश्यक हो, तीन प्रकार के अधिकार पर निर्बन्धन अधिरोपित कर सकती है। केन्द्रीय सरकार को इस बात के लिए एकमात्र न्यायाधीश बनाया गया है कि वह किसी प्रकार का निर्बन्धन अधिरोपित करना आवश्यक समझती है और केन्द्रीय सरकार अपनी प्रदत्त शक्तियों के अनुसरण में निर्बन्धन अधिरोपित कर सकती है, यदि वह आवश्यक समझे भले ही यह अनुच्छेद 19 के खण्ड (2), (3) और (4) के अधीन अनुज्ञेय न हों। इन तीन प्रकार के अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित केन्द्रीय सरकार को प्रदत्त की गई शक्तियां जो अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन मूल अधिकारों के भाग हैं, व्यापक असारणीबद्ध और अनिर्बन्धित ऐसी व्यापक शक्ति है जिसके द्वारा संवैधानिक परिसीमा का अतिक्रमण होता है। किन्तु फिर भी धारा 21 का इस आधार पर अविधिमान्य होने के कारण उसकी भर्त्सना नहीं की जा सकती क्योंकि इसे अनुच्छेद 33 द्वारा व्यावृति प्रदान की गई है, जिसमें ऐसे किसी उबपन्ध का अधिनियमित किया जाना अनुज्ञात है। अनुच्छेद 33 में, जहां तक सशस्त्र बल के तथा लोक व्यवस्था बनाए रखने के भारसाधन करने वाले बल के सदस्यों के सम्बन्धित मूल अधिकारों के लागू होने का सम्बन्ध है, अपवाद का उपबन्ध किया गया है। यह प्राथमिक बात है कि अत्यधिक अनुशासनिक और दक्षता प्राप्त सशस्त्र बल देश की सुरक्षा के लिए पूर्णतः आवश्यक है। वस्तुतः सुरक्षा की जरूरत आक्रमण के विरुद्ध एकमात्र निश्चित गारण्टी है। इसलिए ऐसी दृढ़ और शक्तिशाली सेना का गठन करने का प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिए जो देश की सीमाओं की रक्षा करने के लिए तथा आक्रमण से संरक्षण प्रदान करने के लिए समर्थ हो। स्पष्टतः कोई भी सेना किसी आकस्मिकता का मुकाबला करने के लिए अपनी तरह की स्थिति को लगातार बनाए नहीं रख सकती और सफलतापूर्वक किसी आक्रमण का मुकाबला नहीं कर सकती तथा तब तक देश की प्रभुता और अकिंचनता का संरक्षण नहीं कर सकती जब तक कि उसमें सदैव उच्च नैतिकता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और दृढ़ अनुशासन समाविष्ट न हो। वस्तुतः सदाचार और अनुशासन सेना की आत्मा हैं और बहरहाल कोई अन्य विचारणा, चाहे वह कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हो, सशस्त्र बल के सदाचार में वृद्धि करने और उनमें अनुशासन बनाए रखने की आवश्यकता से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकती। नैतिकता, सदाचार और अनुशासन के विषय में किसी प्रकार की छूट अनर्थकारी हो सकती है, इससे दुर्व्यवस्था और विनाश हो सकता है जिससे उनके कल्याण पर प्रभाव पड़ सकता है और देश के सम्पूर्ण लोगों का मानवीय अधिकार जोखिम में पड़ सकता है। इसलिए संविधान निर्माताओं की अनुशासन की आवश्यकता को मूल अधिकारों से ऊपर रखा, जहां तक लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए सशस्त्र सेना और उसका भारसाधन करने वाले बल के सदस्यों का सम्बन्ध है, और अनुच्छेद 33 में यह उपबन्ध किया गया है कि संसद् विधि द्वारा अवधारण कर सकेगी कि इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में किस को सशस्त्र बलों या लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को लागू होना, किस परिमाण तक निर्बन्धित या निराकृत किया जाए ताकि उनके कर्तव्यों का उचित पालन और उनमें अनुशासन बनाए रखना सुनिश्चित हो सके। अनुच्छेद 33 के साधारण व्याकरणिक अर्थान्वयन द्वारा उसकी भाषा में यह अपेक्षा नहीं की गई है कि स्वयं संसद् को विधि द्वारा उस अनुच्छेद को लागू करने के लिए किसी मूल अधिकार को अवश्य निर्बन्धित या निराकृत करना चाहिए। इसलिए इसमें मात्र यही कहा गया है कुछ और नहीं, अर्थात् संसद् विधि द्वारा वह अनुज्ञेय सीमा विहित कर सकती है जिस सीमा तक किसी मूल अधिकार के सशस्त्र बलों या लोक व्यस्था बनाए रखने का भारसाधन वाले बलों के सदस्यों को लागू होने में किस परिमाण तक निर्बन्धित या निराकृत किया जा सकता है। वस्तुतः स्वयं संसद् विधि विरचित करके लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को लागू होने वाले (में) मूल अधिकारों में से किसी अधिकार को निर्बन्धित या निराकृत कर सकती है। वस्तुतः ऐसे सेना अधिनियम, 1950 को अधिनियमित करके किया गया है, जिसके उपबन्धों को **राम स्वरूप** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय के अनुसार अनुच्छेद 33 द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया है भले ही यह इससे एक या एक से अधिक मूल अधिकारों पर प्रभाव पड़ता हो। किन्तु सेना अनुशासन की परिवर्ती अपेक्षाओं को तथा संवेदनशील क्षेत्रों में उसकी नमनीयता को

---

[1] ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 247 : (1964) 5 एस० सी० आर० 93

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दृष्टि में रखते हुए इस बात के लिए प्रेरित करना असमीचीन होगा कि स्वयं संसद् को इस बात का अवधारण करना चाहिए कि सशस्त्र बलों के या लोक व्यवस्था बनाए रखने का भार साधन करने वाले बलों के सदस्यों द्वारा अपने कर्तव्य के समुचित पालन करने में और उनके बीच अनुशासन बनाए रखने के हित में कौन-से विशेष प्रकार के निर्बन्धन और किस मूल अधिकार पर अधिरोपित किए जाने चाहिएं। सशस्त्र बल अथवा लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को लागू होने में मूल अधिकारों में से किसी अधिकार पर अधिरोपित किए जाने वाले आवश्यक निर्बन्धन की सीमा का परिमाण अनिवार्यत: किसी निश्चित समय में विद्यमान स्थिति पर निर्भर करता है और इसे कठोर कानूनी सूत्र का आवरण चढ़ाना अनुचित होगा। संविधान निर्माता स्पष्टतः इस बात के लिए इच्छुक थे कि सशस्त्र बलों या लोक व्यवस्था बनाए रखने वाले भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों के मूल अधिकार पर उससे अधिक निर्बन्धन नहीं अधिरोपित किया जाना चाहिए जितना कि उनके कर्तव्यों का समुचित पालन करना और उनके बीच अनुशासन बनाए रखा जाना सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत आवश्यक हो और इसलिए संविधान निर्माताओं ने ऐसे निर्बन्धन के अधिरोपण में कुछ परिमाण तथा नमनीयता पुरःस्थापित करने का विनिश्चय किया और अनुच्छेद 33 द्वारा संसद् को नियमावली 35 द्वारा यह अवधारण करने के लिए कि इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को सशस्त्र बलों या लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को लागू होने में, किस परिमाण तक निर्बन्धित या निराकृत किया जाए ताकि उनके कर्तव्यों का उचित पालन और उनमें अनुशासन बनाए रखना सुनिश्चित रहे। इसलिए संसद् अनुच्छेद 33 के अधीन अपनी शक्ति के भीतर सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 अधिनियमित करने के लिए सशक्त थी जिसमें यह अधिकथित किया गया है कि किस सीमा तक केन्द्रीय सरकार सेना अधिनियम के अधीन रहते हुए, अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित कर सकती है जब ऐसा प्रत्येक व्यक्ति स्पष्टतः सशस्त्र बल का सदस्य है। वह सीमा जिस तक अनुच्छेद 19 (1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन मूल अधिकार पर निर्बन्धन अधिरोपित किए जा सकते हैं सेना-अधिनियम, 1950 की धारा 21 के खण्ड (क), (ख) और (ग) में स्वतः उपदर्शित है और केन्द्रीय सरकार को उन मूल अधिकारों पर सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 के खण्ड (क), (ख) और (ग) में उपवर्णित अधिकारों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की सीमा तक ही निर्बन्धन अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत किया गया है और इससे अधिक नहीं। निर्बन्धन का अनुज्ञेय परिमाण जो अनुच्छेद 1 के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन मूल अधिकारों पर अधिरोपित किया जा सकता है सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 के खण्ड (क), (ख) और (ग) में अधिकथित किया गया है इसलिए केन्द्रीय सरकार को "उस परिमाण तक और उस रीति में जैसा कि आवश्यक हो सकता है" अनुज्ञेय सीमा के भीतर निर्बन्धन अधिरोपित करने के लिए सशक्त किया गया है। यह अवधारण करने के लिए मार्ग दर्शक सिद्धांत कि कौन-से निर्बन्धन संसद् द्वारा अवधारित अनुज्ञेय सीमा के भीतर केन्द्रीय सरकार द्वारा आवश्यक विचारगत किये जाने चाहियें स्वतः अनुच्छेद 33 में उपबन्धित है, अर्थात् निर्बन्धन ऐसे होने चाहिएं जैसा कि सशस्त्र सेना के सदस्यों द्वारा अपने कर्तव्यों का समुचित निर्वहन सुनिश्चित करने के लिये तथा उनके बीच अनुशासन बनाए रखने के लिए आवश्यक हों। केन्द्रीय सरकार को धारा 21 के अधीन निर्बन्धन अधिरोपित करने की शक्ति का प्रयोग करने में अपने समक्ष इस मार्गदर्शक सिद्धांत को ध्यान में रखना चाहिए, यद्यपि यह संकेत किया जा सकता है कि जब एक बार केन्द्रीय सरकार ने इस शक्ति का प्रयोग करके इन निर्बन्धनों को अधिरोपित कर दिया है तो न्यायालय साधारणतया केन्द्रीय सरकार के इस विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं करेगा कि ऐसे निर्बन्धन इसलिए आवश्यक हैं क्योंकि यह एक ऐसा विषय है जिसे संसद् ने पूर्णतः उस पर छोड़ दिया है जो कि (केन्द्रीय सरकार) यह जानने के लिए सब से अच्छी स्थिति में है कि इन परिस्थितियों में क्या आवश्यक है। इन परिस्थितियों में धारा 21 को अवश्य ही संवैधानिकतः विधिमान्य ठहराया जाना चाहिए क्योंकि यह अनुच्छेद 33 के अधीन प्रदत्त शक्ति के भीतर है।

8. अब हम दूसरे प्रश्न पर विचार करने के लिए अग्रसर होते हैं कि यह प्रश्न कि क्या केन्द्रीय सरकार सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के कतिपय उपबन्धों को जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू करते हुए एस० आर० ओ० 229 और एस० आर० ओ० 330 जारी करने के लिए हकदार थी अथवा नहीं। हम सर्वप्रथम एस० आर० ओ० 329 की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार करेंगे क्योंकि यदि वह अधिसूचना विधिमान्यतः जारी की गई है और यदि सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21, धारा 102 की उपधारा (4) और धारा 191 के उपबन्ध जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू किए गए हैं तो सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21, धारा, 102 की उपधारा (4) और धारा 191 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में जी०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आर० ई० एफ० के सदस्यों को सेना नियम, 1954 के कतिपय उपबन्धों को लागू करने वाला एस० आर० ओ० 330 सुतराम रूप से विधिमान्य होगा। अब एस० आर० ओ० 329 सेना अधिनियम, 1950 की धारा 4 की उपधारा (1) और (4) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किया गया है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित उपबन्ध किया गया है—

> "4(1) केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा उस अधिनियम के सभी उपबन्धों को या उनमें से किसी को उपांतरण के सहित या उसके बिना, किसी ऐसे बल को, जो भारत में उस सरकार के प्राधिकार के अधीन समुत्थापित किया और बनाए रखा गया है, लागू कर सकेगी और उक्त बल को तत्समय लागू किसी अन्य अधिनियमिति का प्रवर्तन निलम्बित कर सकेगी।
>
> (2) × × ×
>
> (3) × × ×
>
> (4) जब तक इस अधिनियम के कोई भी उपबन्ध उक्त बल को लागू रहें, तब तक केन्द्रीय सरकार यह निदेश अधिसूचना द्वारा दे सकेगी कि इन उपबन्धों के प्रवर्तन से आनुषंगिक किसी अधिकारिता, शक्तियों या कर्त्तव्यों का उक्त बल के बारे में प्रयोग या पालन किसी प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा।"

केंन्द्रीय सरकार धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन सेना अधिनियम, 1950 के किसी उपबन्ध को सरकार के प्राधिकार के अधीन भारत में समुत्थापित या बनाए रखे गए किसी बल को लागू करने के लिए सशक्त है और जब कभी सेना अधिनियम, 1950 के ऐसे कोई उपबन्ध उपधारा (1) के अधीन उस बल को लागू होते हैं तब केन्द्रीय सरकार उपधारा (4) के अधीन जारी की गई अधिसूचना द्वारा यह निदेश दे सकती है कि इन उपबन्धों के प्रवर्तन से आनुषंगिक किसी अधिकारिता, शक्तियों या कर्त्तव्यों का उक्त बल के बारे में प्रयोग या पालन किस प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा। जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों के बारे में सेना अधिनियम, 1950 के कतिपय उपबन्धों को लागू करने पर और यह निदेश देने पर कि किस प्राधिकार द्वारा, उन उपबन्धों के प्रवर्तन के आनुषंगिक अधिकारिता, शक्ति और कर्त्तव्यों का प्रयोग और पालन किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ज एगा, तब एस० आर० ओ० 329, धारा 4 की उपधारा (1) और (4) के अधीन केन्द्रीय सरकार की शक्ति के भीतर होगा यदि जी० आर० ई० एफ० को केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार के अधीन भारत में समुत्थापित और बनाए रखा गया बल के रूप में कहा जा सकता। अब प्रश्न यह है : 'भारत में केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार के अधीन समुत्थापित और बनाए रखा गया कोई बल "पद का सही अर्थ और उसकी परिधि क्या है" "बल" शब्द सेना अधिनियम, 1950 में कहीं भी परिभाषित नहीं है। धारा 3(xi) में "बल" पद की परिभाषा दी गई है किन्तु इससे कोई सहायता नहीं मिलती, क्योंकि वह पद जिसका अर्थान्वयन हमें करना है "बल" है जो कि "बलों" से भिन्न है। बहरहाल धारा 4 की उपधारा (2) में एक संकेत दिया गया है जिससे उस अर्थ पर कतिपय प्रकाश पड़ता है जिसमें "बल" शब्द का प्रयोग धारा 4 की उपधारा (1) में प्रयोग किया गया है। धारा 4 की उपधारा (2) में यह स्पष्टतः अनुध्यात है कि धारा 4 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट "बल" अवश्य उसी आधार पर गठित बल होना चाहिए जैसा कि सेना में रैंक की संरचना की गई है। जहां तक जी० आर० ई० एफ० का सम्बन्ध है इस बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि यह यूनिट सब-यूनिट और पद/रैंक संरचना सहित सेना पद्धति पर गठित बल है। इसके अतिरिक्त जैसा कि सचिव, बार्डर रोड्स डेवलपमेंट बोर्ड द्वारा महानिदेशक जनरल बार्डर रोड्स को भेजे गए तारीख 16 जून, 1960 के पत्र से स्पष्ट है, जी० आर० ई० एफ० केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार के अधीन समुत्थापित और बनाए रखा गया बल है। इसलिए सेना अधिनियम, 1950 के कतिपय उपबन्धों को जी० आर० ई० एफ० को लागू करते हुए धारा 4 की उपधारा (1) और (4) के अधीन एस० आर० ओ० 329 जारी करने की और यह निदेश देने की शक्ति केन्द्रीय सरकार को प्राप्त थी कि उन उपबन्धों के प्रवर्तन से आनुषंगिक अधिकारिता शक्तियों या कर्त्तव्यों का क्रमशः प्रयोग या पालन जी० आर० ई० एफ० के बारे में किस प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा। किन्तु प्रश्न यह है और वह अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिस पर स्वयं हमें विचार व्यक्त करना है कि भले ही जी० आर० ई० एफ० केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार के अधीन समुत्थापित और बनाए रखा गया बल था, फिर भी क्या केन्द्रीय सरकार धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में धारा 21 को जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों की बाबत विधिमान्यतः लागू कर सकती है। धारा 21 में उपधारा के खण्ड (क), (ख) और (ग) में उपवर्णित अधिकारों को "उतने विस्तार तक तथा ऐसी रीति से जो आवश्यक हो" निर्बन्धित करते हुए नियम विरचित करने के लिए केन्द्रीय सरकार को सशक्त किया गया है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और इस शक्ति के प्रयोग में केन्द्रीय सरकार के नियम 19 से 21 विरचित किया है जिसके प्रति हम पहले ही निर्देश कर चुके हैं। अब जैसा कि पहले ही संकेत किया जा चुका है, धारा 21 को अनुच्छेद 33 द्वारा अविधिमान्यकरण के विरुद्ध संरक्षण दिया गया है क्योंकि इसके द्वारा खण्ड (क), (ख) और (ग) में उस संभाव्य विस्तार को अधिकथित किया गया है जिसकी बाबत किसी व्यक्ति के मूल अधिकार सेना अधिनियम, 1950 के अधीन रहते हुए निर्बन्धित किए जा सकते हैं और प्रत्येक व्यक्ति सेना अधिनियम, 1950 के अधीन रहते हुए स्पष्टतः और असंदिग्ध रूप से अनुच्छेद 33 के अर्थान्तर्गत सशक्त बल का सदस्य होगा। किन्तु यदि धारा 21 ऐसे व्यक्तियों को लागू थी जो कि सशक्त बल के या लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्य हैं तो अनुच्छेद 33 से धारा 21 को वहां तक कोई संरक्षण प्राप्त नहीं होगा जहां तक यह ऐसे व्यक्तियों को लागू होती है तथा धारा 21 का ऐसे व्यक्तियों को लागू होना स्वाभाविक होगा। इसलिए हमें यह अवश्य विचार करना चाहिए था कि क्या जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को अनुच्छेद 33 के अर्थान्तर्गत सशस्त्र बल का सदस्य कहा जा सकता है, यदि वे सशक्त बल के सदस्य के रूप में नहीं कहे जा सकते तो उन पर धारा 21 के लागू करने पर अनुच्छेद 33 का संरक्षण प्राप्त नहीं होगा और यह स्पष्टतः शून्य होगा।

9. जी० आर० ई० एफ० का इतिहास उसकी संरचना, प्रशासन, संगठन और उसके ऐसे कार्यों से जिन्हें हमने तथ्यों का वर्णन करते हुए ऊपर विहित किया है स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि जी० आर० ई० एफ० सशक्त सेना का अनिवार्य अंग है। निस्संदेह यह विभागीय संन्निर्माण अभिकरण है जैसा कि पिटीशनरों की ओर से दलील दी गई है किन्तु यह अन्य सन्निर्माण अभिकरणों से भिन्न है, अर्थात् केन्द्रीय लोक संकर्म विभाग (सेन्ट्रल पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट) इत्यादि से इस अर्थ में कि यह ऐसा बल है जो मुख्यतः सेना की उसकी संक्रियात्मक अपेक्षाओं की सहायता के लिए है। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि बार्डर रोड्स आर्गेनाईजेशन जो कि जी० आर० ई० एफ० के पूर्ण नियंत्रण में है मूलतः सेना मुख्यालय (आर्मी हेडक्वार्टर्स) के भाग के रूप में सृजित किया गया था और मात्र इसके पश्चात् उच्च नीति के कारण इसे आर्मी हेडक्वार्टर्स से पृथक् किया गया था और बार्डर रोड्स डेवलपमेंट बोर्ड के अधीन रखा गया था। यद्यपि बार्डर रोड्स आरगनाईजेशन का बजट जहाजरानी और परिवहन मंत्रालय का बजट का भाग है, तथापि विधायी नियंत्रण वित्त मंत्रालय (रक्षा) में निहित है। जी०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आर० ई० एफ० की सम्पूर्ण अधो-संरचना (इन्फ्रा-स्ट्रक्चर) सेना की पद्धति पर तैयार की गई है और इन्हें यूनिटों और सब-यूनिटों में गठित किया गया है और इसकी कमान और नियंत्रण प्रणाली सेना के समान है। जी० आर० ई० एफ० के वर्ग चार से वर्ग एक के कार्मिकों को विभिन्न बैंक बिलों के सहित वर्दी में रहना पड़ता है और इनकी रैंक संरचना सेना की, रैंक संरचना के समान है। जी० आर० ई० एफ० मुख्यतः रक्षा और अन्य ऐसे संकर्मों को करने के लिए आशयित है जिनकी परियोजना जनरल स्टाफ आर्मी हेडक्वार्टर्स द्वारा बनाई जाती है और केवल वहां जहां अतिरिक्त क्षमता उपलब्ध है जी० आर० ई० एफ० अभिकरण-आधार/एजेंसी बेसिस पर अन्य मंत्रालयों या विभागों का कार्य का जिम्मा अपने ऊपर लेता है और वहां भी संवेदनशील क्षेत्र में सामरिक महत्व के और अन्य सड़कों को अधिमान दिया जाता है। वे निधि या जिनकी व्यवस्था बार्डर रोड्स आर्गेनाईजेशन के लिए की गई हैं, अनन्यतः जनरल स्टाफ, आर्मी हेडक्वार्टर्स द्वारा न्यस्त किए गए कार्यों को कार्यान्वित करने के लिए हैं और जहां तक अभिकरण आधार पर अन्य मंत्रालयों या विभागों के लिए किए गए कार्यों/संकर्मों का सम्बन्ध है, बार्डर रोड्स आरगनाईजेशन की निधियों का उन कार्यों को कार्यान्वित करने के लिए करना अनुज्ञात नहीं है और उनका संदाय सम्बन्वित मंत्रालयों या विभागों द्वारा करना होता है और जहां लागू हो, उन कार्यों को कार्यान्वित करने का अभिकरण प्रभार्य भी संगृहीत किया जाता है। निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में दिए गए आंकड़ों से यह दर्शित होता है कि जी० आर० ई० एफ० यूनिटों द्वारा निष्पादित कार्य के अधिकांश भाग में जनरल स्टाफ आर्मी हेडक्वार्टर्स द्वारा न्यस्त किए गए कार्य सम्मिलित हैं और कार्य का थोड़ा प्रतिशत अन्य मंत्रालयों या विभागों की ओर से किया जा रहा है। जी० आर० ई० एफ० यूनिट्स अनिवार्यतः उन कार्यों को करता है जो कार्य अन्यथा आर्मी इंजीनियरिंग रेजीमेंट द्वारा किए जाते हैं और वे सेना को शांति के दौरान तथा आक्रमण के दौरान दोनों ही अवस्थाओं में इंजीनियरी सम्बन्धी समर्थन की व्यवस्था करते हैं। 1971 के पश्चात् आर्मी हेडक्वार्टर्स द्वारा किए गए मुख्य पुनरीक्षण के परिणामस्वरूप यह आवश्यक समझा गया कि कम से कम 17 बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज और 34 पायनियर कंपनीज सेना को इंजीनियरी सम्बन्धी सहायता की व्यवस्था करने के लिए स्थायी रूप से आवश्यक है और तदनुसार 17 बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज और 34 पायनियर कंपनीज को स्थायी बनाया गया था और उनकी संरचना को आर्मी हेडक्वार्टर्स की सिफारिशों के अनुसरन में मान्यता दी गई है। इन 17 बार्डर रोड्स टास्क

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

फोर्सिज और 34 पायनियर कंपनीज को सेना की संक्रियात्मक अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए जी० आर० ई० एफ० की अनिवार्य यूनिटों के रूप में बनाए रखा जा रहा है, भले ही किसी निश्चित समय में उनके लिए पर्याप्त कार्य उपलब्ध न हो। सेना की संक्रियात्मक योजना वस्तुत: इन 17 बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज और 34 पायनियर कंपनीज की उपलब्धता पर आधारित है और संक्रिया के दौरान उन्हें उन कार्यों को करना होता है जो कार्य अन्यथा उतने ही संख्या के आर्मी इंजीनियर रेजीमेंट द्वारा किया गया होता। यह संकेत किया जा सकता है कि 17 बार्डर रोड्स टास्क और 34 पायनियर कंपनी को सेना में आर्मी इंजीनियरिंग रेजीमैंट और पायनियर कंपनीज की तत्स्थानी संख्या द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज द्वारा किए जाने वाले अपेक्षित कार्यों को तथ्यों का वर्णन करते हुए निर्णय के प्रारम्भिक भाग में कतिपय ब्योरों सहित पहले ही विहित किया जा चुका है और हम उन्हें पुन: दोहराना आवश्यक नहीं समझते। यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि ये कार्य सेना द्वारा उनकी संक्रियात्मक योजनाओं के लिए इंजीनियरी सम्बन्धी समर्थन की व्यवस्था करने को दृष्टि में रखते हुए संक्रिया के दौरान बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज द्वारा किया जाना अपेक्षित है। बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज द्वारा इन कार्यों को पूरा करने की अपेक्षा की गई है और न केवल बार्डर तक सेना की सहायता के लिए इंजीनियरी संबंधी व्यवस्था करनी है बल्कि शत्रु के सीमावर्ती क्षेत्रों में भी सीमा से परे इन सब चीजों की व्यवस्था करनी है। शांति की दशा में भी बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज को अपनी संक्रियात्मक अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए जनरल स्टाफ, आर्मी हेडक्वार्टर्स द्वारा बनाई गई परियोजना कार्यों का जिम्मा अपने ऊपर लेना होता है और इन कार्यों में सड़कों, संक्रिया पथ, खाई और बांध (सीमा पर जल बाधा) फील्ड किलाबन्दी जैसे बर्कर्स, फायर खाई, पिलबाक्स, हेलीपैंड और हवाई मैदान का सन्निर्माण और उन्हें बनाए रखना सम्मिलित है। यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि इनसे संलग्न बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज और पायनियर कंपनीज को सेना की सैन्य विन्यास में सम्मिलित किया गया है जिससे यह विवक्षित होता है कि सेना को इन यूनिटों की सहायता गारण्टीकृत प्राप्त है और इनकी किसी भी समय अध्यपेक्षा की जा सकती है। बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज को निम्नतर सेना बिरचना में भी आबंटित किया गया है और इन विरचनाओं के सैन्य विन्यास में ये प्रतीत होते हैं। बार्डर रोड्स टास्क फोर्सिज और पायनियर कंपनी से मिलकर बने जी० आर० ई० एफ० यूनिटों को आपात के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दौरान सेना के प्रत्यक्ष नियंत्रणाधीन रखा गया है जब इस बल का सम्पूर्ण नियंत्रण थल सेनाध्यक्ष के सुपुर्द किया जाता है। शांति के दौरान भी थल सेनाध्यक्ष सेना अधिनियम, 1950 के उपबन्धों को लागू करने के माध्यम से जी० आर० ई० एफ० के यूनिटों के सदस्यों पर अनुशासनिक नियंत्रण रखता है। बार्डर रोड्स का महानिदेशक जिसका जी० आर० ई० एफ० की यूनिटों पर सम्पूर्ण नियंत्रण है, सदैव मेजर जनरल के रैंक की पंक्ति का सेना अधिकारी होता है और उसकी गोपनीय रिपोर्ट थल सेनाध्यक्ष द्वारा लिखी जाती है। जी०आर०ई०एफ० की संसूचना संकेत न केवल संक्रिया के दौरान बल्कि शांति के दौरान भी स्थापित सेना संसूचना से जोड़ा जाता है। यह बात भी महत्वपूर्ण है, जो ऐसे बल के रूप में जी० आर० ई० एफ० के विशेष स्वरूप पर बल देती है, जो सेना को उसकी संक्रिया योजनाओं और इन अपेक्षाओं की सहायता का उपाबन्ध करने के लिए आशयित है, कि सेना कार्मिकों को सावधानीपूर्वक नियोजित सैनिक रखने की नीति के अनुसार जी० आर० ई० एफ० में तैनात किया गया है जिससे जी० आर० ई० एफ० यूनिट्स युद्ध या मुठभेड़ के समय सेना का कारगर समर्थन का उपबन्ध करने में समर्थ हो सकें। जी० आर० ई० एफ० यूनिट में सेना कार्मिकों की पदावधि सामान्य रेजीमेंट सम्बन्धी ड्यूटी के रूप में समझी जाती है और यह पदोन्नति वृत्ति योजना आदि के प्रयोजन के लिए सेना में उसी प्रकार की नियुक्तियों के अनुरूप है। जी० आर० ई० एफ० में सीधे भर्ती किए गए कार्मिक को भी उनके तैनात किए जाने से पूर्व प्रशिक्षण दिया जाता है और यह प्रशिक्षण तीन अनुशासनशीलताओं में दिया जाता है जिसे हम निर्णय के प्रारम्भिक भाग में ब्यौरेवार विहित कर कर चुके हैं। इस प्रशिक्षण में न केवल कवायद (ड्रिल) मार्च और सैल्यूट करना सम्मिलित है बल्कि शारीरिक प्रशिक्षण, समाघात प्रशिक्षण भी सम्मिलित है, अर्थात् स्टैंडिंग एक्सरसाईज, बीम एक्सरसाईज, रोप वर्क, रूट मार्च इत्यादि और फील्ड इंजीनियरिंग, विस्फोटक पदार्थों का इस्तेमाल, छद्मावरण, समाघात उपकरण, ब्रिजिंग/पाटना, फील्ड किलाबंदी, तार रुकावट, आदि सहित कम्बैट इंजीनियरिंग प्रशिक्षण भी सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त सीधी भर्ती किए गए कार्मिक को उनके द्वारा नियोजन के निबन्धनों और उन शर्तों को स्वेच्छया स्वीकार कर लिए जाने के पश्चात् ही लिया जाता है, जिससे अन्य बातों के साथ-साथ शर्त 5 (iv), 5(v), 5(vi) और 5(xi) सम्मिलित हैं जो जिन्हें तथ्यों का विवरण देते हुए पूर्णतया उद्धृत किया गया है। इन शर्तों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सीधे भर्ती किए गए कार्मिकों से भारत में और भारत के बाहर कहीं भी सेवा करने की अपेक्षा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की जा सकती है और जब निदेश दिया जाए तब उन्हें फील्ड सेवा के लिए अग्रसर होना होगा और यदि अपेक्षित हो तो वे किसी रक्षा सेवा में या भारत की रक्षा से सम्बन्धित किसी पद पर सेवा करने के लिए भी दायी होंगे। इन शर्तों में यह भी अनुबन्धित किया गया है कि अपनी नियुक्ति के उपरान्त सीधे भर्ती किए गए कार्मिकों को ड्यूटी के दौरान विहित वर्दी धारण करनी होगी और यह कि वे सेना अधिनियम, 1950 तथा सेना नियम, 1954 के उपबन्धों के अधीन होंगे, जैसा कि अनुशासन के प्रयोजन के लिए एस० आर० ओ० 329 और 330 में अधिकथित किया गया है। इन तथ्यों और परिस्थितियों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जी० आर० ई० एफ० सशस्त्र बल का अभिन्न अंग है और जी०आर०ई०एफ० के सदस्य विधिसम्मत रूप से अनुच्छेद 33 के अर्थान्तर्गत सशस्त्र बल के सदस्य कहे जा सकते हैं।

10. बहरहाल, पिटीशनरों ने यह संकेत करते हुए इस निष्कर्ष का विरोध करने का प्रयत्न किया है कि बार्डर रोड्स इन्जीनियरिंग सर्विस ग्रुप-ए रूल्स, 1977 और बार्डर रोड्स इन्जीनियरिंग सर्विस ग्रुप-बी रूल्स, 1977 के अधीन गठित सेवा, जो दोनों ही अनुच्छेद 309 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में राष्ट्रपति द्वारा विरचित किए गए थे और 20 सितम्बर, 1977 को प्रवृत्त किए गए थे अभिव्यक्ततः केन्द्रीय सिविल सेवा के रूप में पदाभिहित किए गए थे और यह कि अतारंकित प्रश्न सं० 1100 के उत्तर में रक्षा मंत्री ने 18 जून, 1980 को यह उल्लेख किया कि "जी० आर० ई० एफ० जिस रूप में आज गठित है, एक सिविल सन्निर्माण बल है" और इसी प्रकार अतारंकित प्रश्न सं० 6002 के उत्तर में रक्षा मन्त्री ने 1 अप्रैल, 1981 को यह मत व्यक्त किया है कि "बार्डर रोड्स आरगनाईजेशन और जी० आर० ई० एफ० में सेवा करने वाले सिविल कर्मचारी रक्षा मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन नहीं हैं बल्कि बार्डर रोड्स डेवलपमेंट बोर्ड के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन हैं" और इसी प्रकार अतारंकित प्रश्न सं० 938 के उत्तर में 25 फरवरी, 1983 को रक्षा मंत्री ने यह उल्लेख किया कि "बार्डर रोड्स आरगनाईजेशन के जनरल रिजर्व इंजीनियरिंग फोर्स के सदस्य केन्द्रीय सरकार के सिविल कर्मचारी हैं।" पिटीशनरों ने इन कथनों के आधार पर यह दलील दी है कि जी० आर० ई० एफ० सशक्त बल नहीं था बल्कि सिविल सन्निर्माण अभिकरण (सिविल कंस्ट्रक्शन एजेंसी) था और जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को संभवतः सशस्त्र बल के सदस्य के रूप में नहीं माना जा सकता जिससे कि वह अनुच्छेद 33 की परिधि और व्याप्ति के भीतर आ सके। यह दलील, यद्यपि प्रथमदृष्टया आकर्षक हो सकती है तथापि हमारे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मतानुसार सुआधारित नहीं है और अवश्य अस्वीकार की जानी चाहिए। निस्संदेह यह सही है जैसा कि रक्षा मंत्रालय द्वारा उल्लेख किया गया है, जी० आर०ई०एफ० सिविल सन्निर्माण बल है और जी०ग्रार०ई०एफ० के सदस्य बार्डर रोड्स डेवलपमेंट बोर्ड के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन सिविल कर्मचारी हैं और यह कि उनके बीच के इन्जीनियर, अधिकारी जी० आर० ई० एफ० के भीतर "केन्द्रीय सिविल सेवा" के रूप में अभिहित किए जा सकते हैं किन्तु इससे यह अभिप्रेत नहीं है कि वे इसी बीच सशक्त बल के अभिन्न अंग नहीं हो सकते। यह तथ्य कि वे सिविल कर्मचारी के रूप में विहित किए गए हैं ग्रौर उनकी नियुक्ति का अपना विशेष नियम है और उन पर सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन) कन्ट्रोल एण्ड अपील रूल्स, 1965 लागू होता है, इस प्रश्न का निश्चायक नहीं है कि वे सशक्त बल के सदस्य हैं अथवा नहीं। यह उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय सरकार, युद्ध विभाग, तारीख 29 जून, 1946 की अधिसूचना सं० 1584 के अधीन गठित सिविल जनरल ट्रांसपोर्ट कंपनी के सदस्य भी और इनडिपेंडेंट ट्रांसपोर्ट प्लांट्स के सदस्यों को भी तारीख 22 जुलाई, 1960 के एस० आर० ओ० 122 द्वारा ग्रौर 17 अगस्त, 1960 के एस० आर० ग्रो० 282 द्वारा सेना अधिनियम, 1950 के उपबन्धों को लागू करने के प्रयोजन के लिए सशक्त बल के सदस्यों के रूप में समझा गया है। इसलिए भी जब मिलिट्री इन्जीनियरिंग सर्विस के कार्मिक को सेना के ग्रधीन संक्रिया क्षेत्रों में कार्य करना होता है तब उन्हें भी अनुशासन के प्रयोजन के लिए सेना अधिनियम, 1950 के उपबन्धों के अधीन रहना होता है। यह प्रश्न कि क्या "जी०आर०ई०एफ० के सदस्य अनुच्छेद 33 लागू करने के प्रयोजन के लिए सशक्त बल के सदस्य कहे जा सकते हैं, अनिवार्यतः जी०ग्रार०ई०एफ० के स्वरूप, इसकी संगठनात्मक स्थापना कृत्य उसके/इसका वह कार्य जो सशस्त्र बल के सम्बन्ध में उससे करने की आवश्यकता है और उसके सम्बन्ध की गम्भीरता और गहनता से तथा सशस्त्र बल के साथ इसके एकीकरण के विस्तार पर अवश्य निर्भर होना चाहिए और यदि इस कसौटी पर विचार किया जाए तो वे सशस्त्र बल के सदस्य माने जाएगे इसलिए मात्र इस तथ्य से कि वे ऐसे गैर-समाघात" (नॉन कमबाटेंट) सिविलियन हैं, जिन्हें सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 लागू होता है, कोई ग्रन्तर नहीं होता। यह दृष्टिकोण जो हम इस सिद्धांत पर अपना रहें हैं उसका थौस कुटीलिंग अच्यदन नायर और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय से पर्याप्त समर्थन

[1] [1976] 4 उम० नि० प० 32=[1976] 2 एस० सी० ग्रार० 769.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मिलता है, जहां यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या रक्षा स्थापन के कतिपय कर्मचारी अर्थात् रसोइये, चौकीदार, लसकर, नाई, बढ़ई, मैकेनिक, मोची, (जूता बनाने वाले) दर्जी इत्यादि जोकि गैर-योद्धी सिविलियन हैं जिन्हें अनुशासन, अवकाश, वेतन इत्यादि के प्रयोजनों के लिए सिविल सेवा विनियमन लागू होता है और वे सशक्त बल के सदस्यों की तरह 60 वर्ष की आयु तक सेवा करने के लिए पात्र थे, अनुच्छेद 33 के अन्तर्गत विधिमान्यत: सशक्त बल के सदस्य कहे जा सकते हैं क्योंकि ऐसा तभी संभव था यदि वे उस अनुच्छेद के अर्थान्तर्गत सशक्त बल के रूप में सदस्य होते जिससे कि संगम विरचित करने के उनके अधिकार पर अधिरोपित निर्बन्धन बनाए रखे जा सकते। इस न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए न्यायाधिपति सरकारिया ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत कर्मचारी सशक्त बल के सदस्य थे और अपने दृष्टिकोण के समर्थन में निम्नलिखित कारण दिए हैं—

> "संघ (यूनियन) के सदस्य जिनका प्रतिनिधित्व अपीलार्थियों ने किया है, इस प्रवर्ग के भीतर आते हैं। सक्रिय सेवा में या छावनी या मार्च पर सशक्त बल के कार्मिकों का अनुसरण करना या उनके साथ होना उनका कर्त्तव्य है। यद्यपि वे गैर-योद्धा हैं और कतिपय विषयों में उन पर सिविल सेवा लागू होती है तथापि वे सशक्त बल के अभिन्न अंग हैं। वे अनुच्छेद 33 के अर्थान्तर्गत 'सशक्त बल के सदस्य' परिवर्णन के अनुरूप हैं।"

ऊपर वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों पर भी यह निर्विवाद है कि जी० आर० ई० एफ० के कृत्य और कर्तव्य सशक्त बल की संक्रियात्मक योजनाओं और अपेक्षाओं के साथ अनिवार्यत: जुड़े से हैं और जी० आर० ई० एफ. के सदस्य, न्यायाधिपति सरकारिया के शब्दों में, "सशक्त बल के अभिन्न अंग हैं।" इस बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि जी०आर०ई०एफ० के दक्ष और अनुशासित संक्रियात्मक कार्य के बिना शांति के दौरान तथा युद्ध के दौरान सीमावर्ती क्षेत्रों में सैन्य संक्रिया पर गम्भीर प्रभाव पड़ेगा। और सशस्त्र बल की संक्रिया संबंधी योजनाओं की सहायता के लिए तथा संक्रिया संबंधी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए अधिक अनुशासित और दक्ष जी० आर० ई० एफ० पूर्णत: आवश्यक है। इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाना आवश्यक है कि जी० आर० ई० एफ० के सदस्य अनुच्छेद 33 के अर्थान्तर्गत "सशक्त बल के सदस्य" के परिवर्णन के अनुरूप हैं और परिणामत: जी० आर० ई० एफ० के सदस्य को सेना अधिनियम, 1950 की धारा 21 का लागू होना उस अनुच्छेद द्वारा संरक्षित समझा जाना आवश्यक है और जी० आर० ई० एफ०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के सदस्यों के मूल अधिकार को सेना नियम 1954 के नियम 19 से 21 के साथ पठित धारा 21 द्वारा विधिमान्यत: निर्बन्धित समझा जाना आवश्यक है। यदि ऐसा है तो पिटीशनर नियम 19 से 21 के अभिकथित अतिक्रमण के लिए सेना अधिनियम, 1950 की धारा 63 के अधीन आरोपित किए जाने के दायित्वाधीन थे और कोर्ट मार्शल द्वारा उनकी दोषसिद्धि तथा तत्पश्चात् उनका पदच्युत किया जाना अवश्य ही विधिमान्य ठहराया जाना चाहिए।

11. इसके पूर्व कि हम इस मुद्दे से अलग हों, हम यह संकेत कर सकते हैं कि पिटीशनरों की ओर से हमारे समक्ष व्यथायुक्त परिवाद किया गया था कि जी० आर० ई० एफ० की यूनिट में तैनात किए गए सेना कर्मकारों के तथा जी० आर० ई० एफ० के अन्य अधिकारियों और व्यक्तियों के बीच अधिक विषमता थी जहां तक सेवा के निबंधनों और शर्तों, अर्थात् वेतन, महंगाई भत्ते और राशन का सम्बन्ध है। यह विचार करना हमारे लिए आवश्यक नहीं है कि क्या यह परिवाद न्यायोचित है अथवा नहीं। यह संभव है कि यह पूर्णतः न्यायोचित नहीं हो किन्तु हम यह संकेत कर सकते हैं कि किसी भी दशा में यह पूर्णतः इस प्रश्न के बारे में नहीं है कि जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को सशस्त्र बल के सदस्यों के रूप में समझा जा सकता है अथवा नहीं। चूंकि जी० आर० ई० एफ० के सदस्य विभिन्न स्रोतों से लिए जाते हैं इसलिए यह संभव है कि दो स्रोतों से आने वाले कार्मिकों की सेवा के निबंधन और शर्तें भिन्न हों। जी० आर० ई० एफ० यूनिट में तैनात किए गए सेना कार्मिकों की सेवा के निबन्धन और शर्तें अलग ही होती हैं जबकि जी० आर० ई० एफ० के अन्य अधिकारियों और व्यक्तियों को भिन्न निबन्धन और शर्तें लागू होते हैं। इस बात को समझना कठिन है कि दो भिन्न स्रोतों से आने वाले जी० आर० ई० एफ० के कार्मिकों के बीच सेवा के निबन्धन और शर्तों में अन्तर का किस प्रकार सशस्त्र बलों के अभिन्न बल के रूप में जी० आर० ई० एफ० के स्वरूप पर प्रभाव पड़ सकता है। यह अवधारण करने के प्रयोजनों के लिए यह अतात्विक है कि जी० आर० ई० एफ० के सदस्य सशस्त्र बल के सदस्य हैं अथवा नहीं, जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों की सेवा के निबन्धन और शर्तें क्या हैं और क्या ये उन सशस्त्र कार्मिकों के अनुरूप हैं जिनकी जी० आर० ई० एफ० यूनिटों में उसी पद पर या समतुल्य पद पर नियुक्ति की गई है किन्तु हम यह मत व्यक्त कर सकते हैं कि यदि यह प्रतीत होता है कि जी० आर० ई० एफ० में सीधे भर्ती किए गए या प्रतिनियुक्ति पर लिए गए अधिकारियों और व्यक्तियों के निबन्धन और शर्तें किसी प्रकार जी० आर० ई० एफ० में उसी पद पर या समतुल्य पदों पर नियुक्त किए गए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सेना कार्मिकों की तुलना में कम अनुकूल है तो केन्द्रीय सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई करने के औचित्य पर विचार कर सकती थी कि जी०आर०ई०एफ० यूनिटों में नियुक्त किए गए सशस्त्र कार्मिकों के और जी० आर०ई०एफ० के अन्य अधिकारियों और व्यक्तियों की सेवा के निबन्धनों और शर्तों अर्थात् वेतन, महंगाई भत्ते, राशन आदि के बीच विषमता यदि कोई है, वह दूर कर दी जाए।

12. यह संकेत किया जा सकता है कि पिटीशनरों की ओर से यह दलील देने का निरर्थक प्रयत्न किया गया था कि कोर्ट मार्शल द्वारा की गई उनकी दोषसिद्धि अवैध थी, क्योंकि उनका विचारण विधि के अनुसरण में नहीं किया गया था। प्रत्यर्थियों की ओर से इस दलील का दृढ़ता से विरोध किया गया था और लेफ्टीनेंट कर्नल शेर गिल के शपथपत्र में निश्चायक रूप से यह प्रख्यान किया गया था कि अनुशासनिक कार्रवाई आरंभ की गई थी और विधि के अनुसरण में अपराध साबित हो जाने के पश्चात् सक्षम अनुशासन प्राधिकारी द्वारा शास्ति प्रदान की गई थी तथा पिटीशनरों और ऐसे अन्य व्यक्तियों को जिन्होंने अपनी इच्छा प्रतिवाद करने वाले अधिकारियों से या सिविल अधिवक्ताओं की सहायता से स्वयं अपना प्रतिवाद करने का प्रयत्न किया था, हर संभव सहायता और अवसर प्रदान किए गए थे। इस के उत्तर में लेफ्टीनेंट कर्नल शेर गिल ने अपने शपथ पत्र में स्पष्ट शब्दों में यह कथन किया कि "सेना की अभिरक्षा के अधीन रखे गए 357 कार्मिकों में से 287 कार्मिकों को उनकी शर्तहीन क्षमा याचना के आधार पर मुक्त कर दिया गया है, उन्हें अविनियमित किया गया है और जो ऐसा करने में असफल रहे उन पर संक्षिप्ततः जी० सी० एम० एस०सी०एम० द्वारा विचारण किया गया और उनके विरुद्ध साबित किए गए अपराधों की गुरुता के आधार पर उन्हें शास्ति प्रदान की गई। विचारण के दौरान नियमों के अधीन हर प्रकार की संभव सहायता दी गई थी और उन्हें अपने मामले का प्रतिवाद करने के लिए अपनी इच्छा के अधिवक्ताओं से मिलने या उन्हें नियोजित करने की अनुमति दी गई थी। इन सभी मामलों में अपनी इच्छा के अनुसार प्रतिवाद करने वाले अधिकारियों का भी विभाग (पक्ष) की ओर से ब्योरा दिया गया है। नियमों में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार दृढ़ता से विचारण किया गया था और नैसर्गिक न्याय से वंचित नहीं किया गया है।" लेफ्टीनेंट कर्नल शेर गिल शपथ पर किए गए निश्चायक कथन को दृष्टि में रखते हुए हमारे लिए यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि कोर्ट मार्शल द्वारा पिटीशनरों को विधि के अनुसारण में दोषसिद्ध नहीं किया गया था। किसी भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दशा में इस निमित पिटीशनरों के अभिकथन से विवादग्रस्त तथ्य संबंधी प्रश्न उद्भूत होते हैं जिन पर हमारे लिए इस रिट पिटीशन में विचार करना संभव नहीं है। इन परिस्थितियों में हम कोर्ट मार्शल द्वारा पिटीशनरों की दोषसिद्धि का या इस आधार पर तत्पश्चात् सेवा से उनको पदच्युत किया जाना कि वह विधि के अनुसरण में नहीं था, अभिखण्डित करने और अपास्त करने की आवश्यकता नहीं समझते।

13. पिटीशनरों की ओर से एक अन्य दलील भी दी गई थी और इसमें संविधान के अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण का प्रश्न उठाया गया था। यह दलील दी गई थी कि जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को अनुशासन के विषय में सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 और सेना अधिनियम, 1950 के तथा सेना नियम, 1954 के उपबन्ध दोनों ही लागू थे और इसलिए जब कभी जी० आर० ई० एफ० के किसी सदस्य पर अवचार सम्बन्धी कोई आरोप लगाया जाता है, जो सेना अधिनियम, 1950 के अधीन अपराध की कोटि में आता है तो इसे प्राधिकारियों के इस अनियंत्रित विवेकाधिकार पर छोड़ दिया गया है कि वे चाहें तो उस कर्मचारी के विरुद्ध सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 के अधीन या सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के अधीन कार्रवाई कर सकते हैं, अधीन अनुशासन के प्रयोजन के लिए जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों के बारे में सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के उपबन्धों को लागू करने पर एस० आर० ओ० 329 और एस० आर० ओ० 330 अनुच्छेद 14 का अतिक्रामक और विभेदपूर्ण है हम यह नहीं समझते कि इस दलील में कोई सार है। प्रथम प्रक्रम पर कार्यवाहियों का वह स्वरूप जिसे भूल करने वाले कर्मचारियों के विरुद्ध सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 के अधीन की जा सकती है, उन कार्यवाहियों की प्रकृति से भिन्न है जिन्हें सेना नियम, 1954 के साथ पठित सेना अधिनियम, 1950 के उपबन्धों के अधीन उसके विरुद्ध की जा सकती है, क्योंकि पूर्ववर्ती कार्यवाही प्रशासनिक प्रकृति की है जब कि पश्चात्वर्ती कार्यवाही स्पष्टतः दाण्डिक है। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि सेना अधिनियम, 1950 की धारा 20 जो कि उस अधिनियम के अधीन रहते हुए ऐसे व्यक्ति की पदच्युति, हटाया जाना या अवनत किए जाने के बारे में है और धारा 71 का खण्ड (घ), (ङ), (च), (छ) और (ट) जिसमें शास्ति, पदच्युति, अवनति, ज्येष्ठता, समपहरण और वेतन और भत्तों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समपहरण की जांच के लिए उपबन्ध किया गया गया है, एस० आर० ओ० 329 द्वारा जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू नहीं किया गया है जिसके परिणामस्वरूप जहां तक अनुशासनिक कार्यवाहियों का सम्बन्ध है, सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 और सेना अधिनियम के उपबन्धों तथा सेना नियम, 1954 के उपबन्धों के बीच कोई अतिव्याप्ति नहीं है जैसा कि वे जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू होते हैं। दूसरे यह कहना संभव नहीं है कि प्राधिकारियों में निहित यह विवेकाधिकार कि भूल करने वाले जी० आर० ई० एफ० के सदस्य के विरुद्ध सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 के अधीन या सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के अधीन कार्यवाही करनी चाहिए, मार्गदर्शन रहित है। लेफ्टीनेंट कर्नल शेर गिल के शपथपत्र में इस बात से इंकार किया गया है कि जी० आर० ई० एफ० के कर्मचारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए या तो सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 के अधीन या सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के अधीन कार्यवाही करने के लिए अनुशासनिक प्राधिकारी में अनियंत्रित वैवेकिक शक्ति निहित या किसी भी प्रक्रम पर एक कार्यवाही से अन्य कार्यवाही में भारी परिवर्तन करने के लिए अनियंत्रित वैवेकिक शक्ति निहित है। लेफ्टीनेंट कर्नल शेर गिल ने अपने शपथ-पत्र में निश्चायक रूप से यह कथन किया है कि स्पष्ट और ब्यौरेवार प्रशासनिक मार्ग दर्शक सिद्धान्त अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए अनुशासनिक अधिकारी के मार्गदर्शन के प्रयोजन के लिए अधिकथित किया गया है। जी० आर० ई० एफ० के किसी कर्मचारी के विरुद्ध सेन्ट्रल सिविल सर्विस (क्लासीफिकेशन, कन्ट्रोल एण्ड अपील) रूल्स, 1965 या सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के अधीन कार्यवाही करनी चाहिए और इन मार्गदर्शक सिद्धान्तों को उनके शपथ-पत्र के उपाबंध आर-5 में पूर्णतः उपवर्णित किया गया है। तीसरे **नार्दर्न इण्डिया केटरर्स लि० बनाम पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में दिये गए विनिश्चय को जिस पर पिटीशनर की दलील आधारित है **मगन लाल छगन लाल बनाम म्युनिसिपल कार्पोरेशन, ग्रेटर मुम्बई**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा उलट दिया गया जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था कि "यह दलील कि मात्र दो प्रक्रियाओं की उपलब्धता उनमें से एक को दूषित कर देगी, अर्थात् विशेष प्रक्रिया कारण या प्राधिकारी द्वारा

---

[1] [1967] एस० सी० आर० 399.

[2] [1974] 2 उम० नि० प० 952=[1974] 2 एस० सी० सी० 402.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समर्थित नहीं है।" और अन्ततः यह उल्लेख किया जा सकता है कि किसी भी दशा में सेना अधिनियम, 1950 और सेना नियम, 1954 के उपबंध को जैसा कि वे जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों को लागू होते हैं, अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण के आधार पर अविधिमान्यकरण के विरुद्ध अनुच्छेद 33 द्वारा संरक्षण प्राप्त है। इसलिए पिटीशनर की ओर से की गई वर्तमान दलील भी अवश्य असफल होनी चाहिए।

14. हम इस बात को स्पष्ट कर सकते हैं कि हमने मात्र जी० आर० ई० एफ० के सदस्यों के सम्बन्ध में ही यह दृष्टिकोण अपनाया है कि वे अनुच्छेद 33 के अर्थान्तर्गत सशस्त्र बल के सदस्य हैं। जहां तक जी० आर० ई० एफ० द्वारा नियोजित आकस्मिक श्रमिकों का संबंध है, हम इस प्रश्न पर कोई मत व्यक्त करना नहीं चाहते कि क्या वे भी सशस्त्र बल के सदस्य हैं अथवा नहीं। चूंकि वह ऐसा प्रश्न नहीं है जो हमारे समक्ष विचारार्थ उठा हो, अतः यह रिट पिटीशन खारिज किया जाता है। खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं होगा। विशेष इजाजत लेकर फाइल किये गये पिटीशन नामंजूर किए जाते हैं।

पिटीशन खारिज किए गए।

प्र/भू०

—————

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिव दत्त राय फतह चन्द
बनाम
भारत संघ और एक अन्य

(Shiv Dutt Rai Fateh Chand
v.
Union of India and Another)

तथा

मैसर्स ओम प्रकाश शिव प्रकाश और अन्य
बनाम
भारत संघ और एक अन्य

(M/s. Om prakash Sheo Prakash and Others
v.
Union of India and Another)

(6 मई, 1983)

(न्यायाधिपति ए० पी० सेन० और ई० एस० वेंकटरामय्या)

केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 (1956 का 74). (1976 के संशोधन अधिनियम 103 द्वारा यथा-संशोधित)—[सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद, 19(1) (च) और 20(1)]—धारा 9(2क)—अधिनियम के अधीन की जाने वाली कार्यवाहियों को राज्यों की साधारण बिक्री कर विधि के अधीन उद्ग्रहणीय शास्तियों से संबंधित उपबन्ध लागू करना और उन्हें अंगीकृत करना—संशोधन अधिनियम की धारा 9 द्वारा संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व उद्गृहीत सभी शास्तियों को विधिमान्य करते हुए भूतलक्षी प्रभाव देना—राज्य की शास्ति—सम्बन्धी साधारण बिक्री-कर विधि के उपबन्धों को केन्द्रीय विक्रय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर अधिनियम लागू करना संसद् के अनिवार्य विधायी कर्तव्यों का अधित्यजन नहीं है और इसलिए इसमें अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष नहीं है तथा शास्तियों को भूतलक्षी प्रभाव देना संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) और (छ) तथा अनुच्छेद 20(1) का अतिक्रमण नहीं है।

हरियाणा साधारण बिक्री कर अधिनियम, 1973—धारा 48—राज्य सरकार द्वारा कर की रकम का संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर प्राधिकारियों को शास्ति उद्गृहीत करने के लिए प्राधिकृत करना—शास्ति उद्गृहीत करने के लिए प्राधिकृत करना प्राधिकारियों को मनमानी और अनियंत्रित शक्ति प्रदत्त करना नहीं है—अतः उससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रण नहीं होता है।

हरियाणा साधारण बिक्री कर नियम, 1975—नियम 4(क) [सपठित हरियाणा साधारण बिक्री कर अधिनियम, 1973 की धारा 3]—यदि राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत निर्धारण प्राधिकारी तथा उत्पाद शुल्क एवं कराधान प्राधिकारी शास्ति का आदेश देता है, तो ऐसा आदेश विधिमान्य है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 20(1)—शब्द और वाक्यांश—"शास्ति" और "अपराध" शब्दों का अर्थ एवं विस्तार—अनुच्छेद 20(1) में प्रयुक्त "शास्ति" शब्द का यह अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता कि इसमें कानूनी उपबंधों के अतिक्रमण के लिए विभागीय प्राधिकारियों द्वारा बिक्री कर विधि के अधीन उद्गृहीत शास्ति भी सम्मिलित है।

सभी राज्यों की साधारण बिक्री कर विधियों में ऐसे उपबन्ध हैं जो प्रत्येक संव्यवहारी से इस बात की अपेक्षा करती हैं कि वे कानूनी अभ्यपेक्षाओं, जैसे विवरणी फाइल करना, विनिर्दिष्ट समय के भीतर शोध्य कर का संदाय करना, आदि का अनुपालन करें। ऐसे कानूनी उपबन्धों के होने पर भी बहुत से संव्यवहारी अपने कानूनी कर्तव्यों को पूरा करने में असफल रहे। वे सुसंगत कानूनी उपबन्धों में उल्लिखित शास्तियों के दायित्वाधीन होते यदि उनके द्वारा किया गया व्यतिक्रम उक्त कानूनी उपबन्धों के अधीन किया जाता। अधिनियम की धारा 9 (2) की भाषा के आधार पर बहुत से राज्यों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में उनकी अपनी-अपनी साधारण बिक्री कर विधियों में शास्तियों से संबंधित उपबन्धों के अनुसार अधिनियम के अधीन ऐसे व्यतिक्रमियों के विरुद्ध कार्यवाहियां प्रारंभ की गईं और कुछ मामलों में कार्यवाहियां पूरी कर दी गईं और शास्तियां अधिरोपित की गईं तथा वसूली की गई। कुछ उच्च न्यायालयों ने भी यह दृष्टिकोण अपनाया कि ऐसी शास्तियां विधिमान्य रूप से उद्ग्रहणीय थीं। किन्तु अन्ततः उच्चतम न्यायालय ने 3:2 के बहुमत से खेमका के मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अधिनियम में कोई ऐसा स्पष्ट उपबंध नहीं था जो ऐसी शास्तियों के उद्ग्रहण को अनुज्ञात करता, शास्तियों के उद्ग्रहण और वसूली के संबंध में कार्यवाहियां विधिमान्य नहीं थी। अधिनियम में इस कमी को पूरा करने के लिए संशोधन अधिनियम की धारा 9 में अन्तर्विष्ट विद्यमान उपबन्ध में इस बात का उपबन्ध किया गया कि जहां तक कि शास्तियों का सम्बन्ध था, धारा 9 (2क) के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह 5 जनवरी, 1957 से प्रारंभ होने वाली और संशोधन अधिनियम के प्रारम्भ होने की तारीख से अव्यवहित पूर्व की कालावधि में लागू थी। संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन विद्यमान रिट पिटीशनों में पिटीशनरों ने अधिनियम की धारा 9 (2क) की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी है जैसा कि उसे संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया था और संशोधन अधिनियम की धारा 9 के अधीन शास्तियों के उद्ग्रहण को भूतलक्षी प्रभाव से अधिनियम के अधीन प्रभावी कर दिया गया था। हरियाणा राज्य के निर्धारिती-पिटीशनरों ने भं हरियाणा साधारण बिक्री कर अधिनियम की धारा 48 को अनुच्छेद 14 का अतिक्रामी होने के रूप में चुनौती दी है। उच्चतम न्यायालय में फाइल किए गए रिट पिटीशनों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—अधिनियम का मूल उद्देश्य शास्तियां उद्गृहीत करना नहीं है। इसका उद्देश्य केन्द्रीय विक्रय कर के निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण और संदाय को प्रवृत्त करना है। निर्धारिती विभिन्न चरणों अर्थात् कर के निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण और संदाय का प्रवर्तन में उनके द्वारा किए गए कतिपय कार्यों या लोपों के मद्दे शास्तियों का संदाय करने का दायित्व उपगत करता है। इसलिए इन चार प्रक्रमों के साथ "शास्ति" शब्द को जोड़ना अनुचित होने के अलावा निरर्थक हो जाएगा। अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) स्पष्ट रूप से क्रमिक राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों के अधीन किए गए अपराधों या उपगत शास्तियों के संबंध में सभी उपबन्ध बनाए हैं जो ऐसे व्यक्तियों को लागू होते हैं जो अधिनियम के अधीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऊपर उल्लिखित चरणों में तत्स्थानी कार्य या लोप करते हैं। दृष्टांत के रूप में यदि कोई व्यक्ति राज्यों की साधारण विक्रय कर विधि के अधीन उसके द्वारा फाइल किए जाने के लिए अपेक्षित विवरणी को फाइल न करने के लिए किसी शास्ति का संदाय करने के दायित्वाधीन है कोई व्यक्ति जो इसी प्रकार से अधिनियम के अधीन विवरणी फाइल करने के लिए अपेक्षित है विवरणी फाइल न करने के लिए शास्ति उपगत करता है और शास्ति का परिमाण वही है जो राज्य विधि के अधीन है। यदि कोई व्यक्ति विनिर्दिष्ट समय के भीतर राज्य विधि के अधीन देय कर के किसी भाग का संदाय न करने के लिए कर के अतिरिक्त किसी विशेष दर पर शास्ति का संदाय करने के दायित्वाधीन है तो यदि वह अधिनियम के अधीन कर का संदाय करने में व्यतिक्रम करता है अधिनियम के अधीन कर का संदाय करने के दायित्वाधीन व्यक्ति उसी दर पर शास्ति का संदाय करने के दायित्वाधीन हो जाता है। इसलिए अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) की भाषा में कोई कमी दिखाई नहीं देती जो क्रमिक राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों के अधीन शास्तियों के सम्बन्ध में उपबन्ध करती है जो अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को भी लागू नहीं होती। जब कि धारा 9 की उपधारा (2क) भविष्यलक्षी रूप से अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को लागू होने वाली राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों में अपराधों और शास्तियों के सम्बन्ध में उपबन्ध करती है, संशोधन अधिनियम की धारा 9 अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) में प्रयुक्त उसी भाषा को स्वीकार करके भूतलक्षी रूप से अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को लागू राज्य की साधारण विक्रय कर विधियों में ही शास्तियों के सम्बन्ध में सभी उपबन्ध करती हैं। विधान की इस प्रणाली को शायद इसलिए स्वीकार करना पड़ा क्योंकि संसद् ऐसे अपराधों से संबंधित उपबंधों को भी ठीक ही भूतलक्षी प्रभाव नहीं देना चाहती थी जो धारा 9 की उपधारा (2क) में निर्दिष्ट हैं। इस प्रकार से 5 जनवरी, 1957 से धारा 9 की उपधारा (2क) को भूतलक्षी प्रभाव देकर, जहां तक कि संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (1) को अधिनियमित करके शास्तियों का सम्बन्ध था, संसद् ने इस अधिनियम में खेमका के मामले में बतलाई गई कमियों को दूर कर दिया। भूतलक्षी संशोधन को ध्यान में रखते हुए खेमका के मामले में निर्णय का आधार भी हटा दिया गया। परिणामस्वरूप उस मामले में दिया गया निर्णय संशोधन अधिनियम की धारा 9 (2) के विधिमान्यकरण उपबन्धों के अनुसरण में शास्तियों को वसूल करने के रास्ते में नहीं आया। न्यायालय का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दृष्टिकोण यह है कि अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) और संशोधन अधिनियम की धारा 9 यथा अनुध्यात 5 जनवरी, 1957 से शास्तियों के निर्धारण, और वसूली के लिए पर्याप्त हैं। इसलिए पिटीशनरों की इस दलील में कोई सार नहीं है। (पैरा 18)

यह प्रश्न कि क्या विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन या अधित्याग हुआ है, कानून के शब्दों के अर्थों और उसके पीछे नीति पर विनिनिश्चत करना होगा। प्रस्तुत मामले में संसद् ने राज्य विधानमण्डलों को ऐसे अपराधों और शास्तियों के सम्बन्ध में विधियां बनाने के लिए प्राधिकृत नहीं किया है जो अधिनियम के अधीन उद्ग्रहणीय होंगी। धारा 9 की उपधारा (2क) को अधिनियमित करके संसद् ने जो कुछ किया है वह यह है कि अपराधों और शास्तियों से सम्बन्धित जो भी उपबन्ध राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों में थे, अधिनियम के उपबन्धों के अधीन निर्धारण, पुनर्निर्धारण संग्रहण और प्रवर्तन को समुचित उपान्तरण के साथ लागू होंगे। किसी अन्य कानूनी उपबन्धों को नियमित करके चाहे विभिन्न विधानमण्डलों द्वारा उन्हें पारित किया गया हो, विधान बनाना विधायन की एक जानी मानी पद्धति है जो विधान की विधिमान्यता को प्रभावित नहीं करती, विशेषकर उस समय जब कि अन्य कानून की स्कीम उसी प्रकार की हो और ऐसा निगमन विधान के उद्देश्यों और प्रयोजनों को आगे बढ़ाने के प्रयोजन के लिए सुसंगत और आवश्यक हो। प्रस्तुत मामले में केन्द्रीय विक्रय कर विधान और इसके उद्देश्य और प्रयोजन के इतिहास को ध्यान में रखना चाहिए। अन्तरराज्यिक विक्रयों पर उद्गृहीत केन्द्रीय विक्रय कर संविधान के अनुच्छेद 269 के अधीन ऐसे राज्यों को समनुदेशित है जो सही लाभ पाने वाले हैं। अधिनियम के अधीन निर्धारिती जो विभिन्न राज्यों में फैले हुए हैं, अपने राज्यों में विक्रय कर विधि की साधारण पद्धति के आदि हो गए हैं और ऐसे निर्धारिती के कर्तव्यों और दायित्व के आदि हैं जो विक्रय कर संदाय करने के दायित्वाधीन हैं। अधिकारी जो अधिनियम के अधीन कर का निर्धारण और संग्रहण करते हैं ऐसे अधिकारी हैं जो राज्य विधियों के अधीन इसी प्रकार के कर्तव्य का निर्वहन करते हैं। इस स्थिति में यदि संसद् विभिन्न राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों में अपराधों और शास्तियों के संबंध में विभिन्न उपबन्धों के ज्ञान के साथ अधिनियम के उपबन्धों के अधीन निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण और प्रवर्तन के प्रयोजनों के लिए उन्हें स्वीकार करते हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि इसने अपने विधायी कर्तव्यों का अधित्याग कर दिया है। एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मामले में इस न्यायालय में अधिनियम की धारा 8 की विधिमान्यता को जैसा कि उसे 1958 के केन्द्रीय अधिनियम सं० 31 द्वारा संशोधित किया गया था चुनौती दी गई थी। धारा 8 की उपधारा (1) के द्वारा प्रत्येक संव्यवहारी जो अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य के क्रम में किसी माल को सरकार को बेचता है या सरकार से भिन्न किसी अन्य रजिस्ट्रीकृत संव्यवहारी को बेचता है तो धारा 8 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट परिभाषा का माल अधिनियम के अधीन उसके कुल आवर्त के एक प्रतिशत की दर पर कर का संदाय करने के दायित्वाधीन था। धारा 8 की उपधारा (2) के अधीन अन्तरराज्यिक विक्रयों के संबंध में विक्रय आवर्त पर संदेय कर जो धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन आता है, (क) घोषित मालों के मामले में ऐसी दर पर संगणित किया जाएगा जो समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के विक्रय या क्रय को लागू होगा और (ख) घोषित मालों से भिन्न माल के मामले में सात प्रतिशत की दर पर या समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के क्रय या विक्रय पर लागू होने वाली दर पर जो भी ऊपर हो संगणित होगा। अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (2क) में इस बात का उपबन्ध है कि उपधारा (1) या उपधारा (2) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी यदि समुचित राज्य का साधारण कर-विधि के अधीन व्यवहारी द्वारा किसी माल का विक्रय या क्रय जैसा भी मामला हो, साधारणतया कर से छूट प्राप्त था या साधारणतया ऐसी दर पर कर के अध्यधीन था जो एक प्रतिशत की अपेक्षा कम था (चाहे उसे कर कहा जाए, शुल्क कहा जाए या किसी और नाम से पुकारा जाए) उसके विक्रय आवर्त पर अधिनियम के अधीन संदेय कर जहां तक कि विक्रय आवर्त या उसका कोई भाग ऐसे माल के विक्रय से सम्बन्धित है, शून्य होगा या जैसा भी मामला हो, उसे निचली दर पर संगणित किया जाना चाहिए। धारा 8 की उपधारा (2क) के स्पष्टीकरण में इस बात का उपबन्ध है कि उस उपधारा के प्रयोजन के लिए माल के विक्रय या क्रय को समुचित राज्य की विक्रय कर-विधि के अधीन साधारणतया कर से छूट प्राप्त नहीं समझा जाना चाहिए यदि उसके अधीन यह केवल विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में है या विनिर्दिष्ट शब्दों के अधीन ही छूट प्राप्त था या ऐसे सम्बन्ध में जिसमें कि विनिर्दिष्ट चरणों में या माल के विक्रय आवर्त के निर्देश से भिन्न अन्य किसी सम्बन्ध में छूट प्राप्त था। (पैरा 19)

यह बात सत्य हो सकती है कि शास्तियों की दरों के अधिरोपण की परिस्थितियां एक राज्य से दूसरे राज्य से भिन्न हो सकती हैं, किन्तु शास्तियों से सम्बन्धित मामलों पर विधायी उपबंध बनाने की शक्ति विभिन्न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आर्थिक पहलुओं द्वारा सीमित है और यह नहीं कहा जा सकता कि संसद् ने वस्तुत: राज्य विधानमंडलों को अपना विधायी निर्णय अभ्यर्पित कर दिया है। शास्तियां उद्गृहीत करने के मामले में संसद् द्वारा स्वीकृत स्पष्ट विधायी नीति है और वह यह है कि अधिनियम के अधीन संदेय शास्तियां वे ही होनी चाहिएं जैसा कि प्रत्येक राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के अधीन संदेय शास्तियां होती हैं। यदि शास्तियों की दरें युक्तियुक्त सीमाओं से बढ़ जाती हैं तो राज्य जो अधिनियम के अधीन संगृहीत कर का लाभ उठाते हैं, स्वयं नुकसान उठाते हैं। अत: अयुक्तियुक्त उद्ग्रहण का अर्थ सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को मारने के समान होगा। व्यापार तुरन्त ऐसे राज्य के बाहर के क्षेत्रों को स्थानान्तरित हो जाएगा जो उच्च दर पर करों और शास्तियों का अवलंब लेते हैं। इस क्षेत्र में जो आर्थिक और राजनैतिक पहलु प्रवृत्त हैं वे इतने शक्तिशाली है कि राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए जाने वाले शास्तियों के सम्बन्ध में उपबन्ध युक्तियुक्त ही होंगे। चूंकि वे राज्य अधिनियम के अधीन भी कर के उद्ग्रहण को प्रभावित करेंगे। स्वयं शास्तियों का दांडिक स्वरूप ऐसी अधिकतम सीमाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त मार्गदर्शन है जिस तक की शास्तियां उद्गृहीत की जा सकती हैं। कोई भी शास्ति पूर्णतया विधि के अतिक्रमण की हद तक पूर्णतया अननुपाती नहीं होगी। फिर भी. संसद् को स्वयं अपनी विधि को संशोधित करने की शक्ति है अर्थात् अधिनियम को यदि उसे यह पता चलता है कि किसी राज्य विधि में शास्तियों से सम्बन्धित उपबन्ध लोक हित की सीमा को पार कर गए हैं। प्रत्यायोजित विधान को स्वयं अपनी विधायी इच्छा के अनुरूप लाने के लिए स्वयं अपनी विधि को निरसित या उपांतरित करने की शक्ति का अस्तित्व प्रतिनियोजिती द्वारा विधायी शक्ति के दुष्प्रयोग पर प्रभावी अंकुश माना जाना चाहिए। राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों द्वारा शास्तियों के उद्ग्रहण के द्वारा सृजित स्थिति में सुधार करने की संसद् की शक्ति जो उसकी स्वयं पसंद के अनुरूप नहीं हैं, इन आलोचना का उत्तर भी है कि संसद् ने अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2 क) को अधिनियमित करने में अपने आपको समाप्त कर दिया है। जहां तक ऐसी शक्ति सही है और उसका प्रयोग उस समय किया जा सकता है जब कि संसद् मामले को स्वयं अपने हाथों में लेना चाहती है तब संसद् की विधायी शक्ति को पूर्णतया मिटाया जा सकता है। (पैरा 22)

संविधान का अनुच्छेद 367 इस प्रकार कथन करता है कि जब तक कि शब्दों के संदर्भ में अन्यथा उपबन्धित न हो, जिनकी संविधान में परिभाषा नहीं की गई है, साधारण खंड अधिनियम, 1897 में समनुदेशित अर्थ दिया जाएगा। साधारण खण्ड अधिनियम की धारा 3 (38) में "अपराध" की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिभाषा इस प्रकार दी गई है कि यह तत्प्रवृत्त किसी विधि द्वारा दंडनीय कोई कार्य अथवा लोप है । हमारे अनुच्छेद 20 का उपांत-टिप्पण "अपराधों के लिए दोषसिद्ध के विषय में संरक्षण" है । उपांत-टिप्पण मे "अपराधों" और "दोषसिद्धि" शब्दों का होना अनुच्छेद 20 के खण्ड (1) में "अपराध के लिए सिद्धदोष" "अपराधारोपित क्रिया" और "अपराध करने" अनुच्छेद 20 के खण्ड (2) में "अभियोजित और दंडित" और अनुच्छेद 20 के खण्ड (3) में किसी अपराध में अभियुक्त "स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य किया जाना" शब्द स्पष्ट रूप से इस बात का सुझाव देते हैं कि अनुच्छेद 20 सांविधानिक संरक्षण से सम्बन्धित है जो उन लोगों को दिया गया है जिन्हें दांडिक न्यायालय के समक्ष अपराध के लिए आरोपित किया गया है । "शास्ति" शब्द का बहुत महत्व है । कभी-कभी इसका अर्थ सिविल कार्यवाही में भी दांडिक अभ्युपाय के रूप में किसी रकम को वसूल करना होता है कोई बलाद्ग्रहण जो प्रक्रियात्मक स्वरूप का नहीं होता उसे भी शास्ति कहा जाता है चाहे यह ऐसे किसी आदेश के अनुसरण में वसूल न किया जा रहा हो, जिसमें सम्बन्धित व्यक्ति को किसी अपराध का दोषी पाया जाता है । अनुच्छेद 20 (1) में "शास्ति" शब्द का प्रयोग संक्षिप्त भाव में किया है जिसका अर्थ ऐसे संदाय से है जो किया जाता है या स्वतंत्रता का अपवंचन है जो ऐसे किसी निष्कर्ष के परिणामस्वरूप भुगतना पड़ता है कि किसी अपराध का दोषी व्यक्ति आरोप का दोषी है । (पैरा 25)

अनुच्छेद 20 (1) में प्रयुक्त "शास्ति" शब्द का अर्थान्वयन कानूनी उपबन्धों के उल्लंघन के लिए विभागीय प्राधिकारियों द्वारा विक्रय कर विधियों के अधीन उद्गृहीत "शास्ति" के रूप में नहीं किया जा सकता । विक्रय कर प्राधिकारियों द्वारा अधिरोपित शास्ति केवल एक सिविल दायित्व है यद्यपि उसका स्वरूप दांडिक है । यहां पर इस बात पर ध्यान देना सुसंगत होगा कि अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2 क) विनिर्दिष्ट रूप से कतिपय कार्यों और लोपों को निर्दिष्ट करती है जो ऐसे अपराध हैं जिनके लिए दांडिक अभियोजन किया जाएगा और अपराधों से सम्बन्धित उपबन्धों को संशोधन अधिनियम की धारा 9 द्वारा भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया गया है । (पैरा 31)

1 जनवरी, 1957 और संशोधन अधिनियम को प्रारंभ की तारीख के बीच की कालावधि के दौरान अधिनियम के अधीन संदेय कर की विधिमान्यता के बारे में कोई विवाद नहीं है । इस बात की कल्पना करनी होगी कि सभी कर व्यवहारियों द्वारा अपने उपभोक्ताओं से संगृहीत किए गए थे । इस बात के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि विधि व्यवहारियों से विनिर्दिष्ट समय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के भीतर कर का संदाय करने की अपेक्षा करती है। व्यवहारियों को भी अपने-अपने राज्यों में साधारण विक्रय कर विधियों में शास्तियों से संबंधित उपबन्धों का ज्ञान था। खेमका के मामले में इस न्यायलय द्वारा दर्शायी गई अधिनियम में कमी के कारण ही शास्तियां असंदेय हो गई। इस स्थिति में जहां कि संव्यवहारियों से धन का, जिसका कि सरकार को संदाय किया जाना चाहिए था, स्वयं उपभोग कर लिया और अपने कर्तव्य को करने में व्यतिक्रम किया है। यदि संसद उन्हें भूतलक्षी प्रभाव से यथा उपबन्धित विधि के अनुसरण में शास्तियों का संदाय करने के लिए कहती है तो यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) और (छ) के अधीन गारंटीकृत अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित किया गया है चाहे भूतलक्षिता की कालावधि लगभग 19 वर्षों की हो। यहां पर संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) को निर्दिष्ट करना भी संगत होगा जिसमें इस बात का उपबन्ध है कि उसकी उपधारा (2) में अन्तर्विष्ट उपबन्ध किसी व्यक्ति को संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (1) के साथ पठित संशोधन अधिनियम द्वारा यथा संशोधित अधिनियम के अनुसरण में किसी शास्ति के अधिरोपण या संग्रहण पर अथवा उसके सम्बन्ध में किसी कार्यवाही, कार्य या बात पर आक्षेप करने या किसी प्रतिदाय का दावा करने से रोकती है। संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) के स्पष्टीकरण से भी 27 फरवरी, 1975 को अर्थात् जिस तारीख को खेमका के मामले में निर्णय सुनाया गया था और संशोधन अधिनियम के प्रारंभ की तारीख तक की कालावधि के बीच की कालावधि को शास्ति उद्ग्रहण करने के किसी आदेश को प्रश्नगत करने के लिए परिसीमा की कालावधि संगणित करने का उपबन्ध है। उन कार्यवाहियों में संबन्धित प्राधिकारी शास्ति उद्गृहीत करने के आदेश पारित करने से पूर्व मामले के सभी पहलुओं पर विचार करने के लिए निश्चित हैं। (पैरा 34)

हरियाणा राज्य में व्यवहारियों की ओर से दी गई दलील यह है कि यह धारा जो "कर की रकम से दुगने से अन्यून और दस गुना से अनधिक की रकम" शास्ति का उस में उल्लिखित व्यतिक्रम के सबूत पर उद्ग्रहण करने के लिए प्राधिकृत करती है अनुच्छेद 14 की अतिक्रामी है चूंकि शास्ति की मात्रा के बारे में शास्ति उद्ग्रहण करने वाले प्राधिकारी को कोई मार्गदर्शन नहीं किया गया है। इस अभिवाक् में कोई सार नहीं है। प्रश्नगत उपबन्ध स्वयं इस बात का सुझाव देता है कि शास्ति के रूप में इसके अधीन किया गया उद्ग्रहण जो सम्बन्धित प्राधिकारी को संव्यवहारी द्वारा किए गए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सभी अभिकथित व्यतिक्रम के सुसंगत पहलुओं को ध्यान में रखना चाहिए। प्रथमतः व्यवहारी द्वारा किया गया व्यतिक्रम सम्बन्धित व्यवहारी को सुने जाने का अवसर दिए जाने के पश्चात् जांच में सिद्ध होना चाहिए। धारा में उद्ग्रहणीय शास्ति के न्यूनतम और अधिकतम रकम का उपबन्ध है और यह कर की रकम से सहसम्बद्ध है जिससे यदि ऐसे व्यवहारी द्वारा विवरणी दिए गए विक्रय आवर्त को सही मान लिया जाता, बचा जा सकता था। शास्ति उद्गृहीत करने का आदेश स्वरूप में न्यायिककल्प है और उसमें न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग अन्तर्वेलित है। वे विचार जिन्हें प्राधिकारियों को शास्ति अधिरोपित करते समय महत्व देना चाहिए जाने माने हैं और उन्हें बहुत से विनिश्चयों द्वारा विनिश्चित कर दिया गया है। हरियाणा जनरल सेल्स टेक्स ऐक्ट की धारा 48 के अधीन शास्ति उद्गृहीत करने वाला आदेश भी उसके अध्याय 7 में उपवर्णित अपील आदि से सम्बन्धित उपबन्धों के अधीन है। इन परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि हरियाणा साधारण बिक्री कर अधिनियम, 1973 की धारा 48 एक असरणीबद्ध, अनियंत्रित और मनमानी शक्ति शास्ति उद्ग्रहण करने वाले प्राधिकारी को देती है। इसलिए यह दलील असफल होनी चाहिए। 1982 के रिट पिटीशन सं० 7220 में हल्के से यह सुझाव दिया गया था कि शास्ति का आदेश ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था जो विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं था। अभिलेख से यह पता चलता है कि उक्त आदेश हिसार के निर्धारण प्राधिकारी तथा उत्पाद शुल्क और कराधान अधिकारी द्वारा पारित किया गया है जिसे राज्य सरकार ने हरियाणा साधारण बिक्री कर अधिनियम, 1973 की धारा 3 के साथ पठित धारा 2 (क) के अधीन और हरियाणा साधारण बिक्री कर नियम, 1975 के नियम 4(1) के अधीन स्पष्टतया प्राधिकृत किया गया है। इस दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता। (पैरा 36 और 37)

प्रमेदित निर्णय

		पैरा
[1981]	[1981] 3 एस० सी० आर० 419 : धनकर आयुक्त, अमृतसर बनाम सुरेश सेठ (Commissioner of Wealth Tax, Amritsar v Suresh Seth)	29

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1973] [1973] 32 एस० टी० सी० 368 :
शिव भगवान गोयनका बनाम कमर्शियल टैक्स आफिसर और अन्य
(Shew Bhagwan Goenka v. Commercial Tax Officer and Others). 29

अवलंबित निर्णय

[1975] [1975] 3 एस० सी० आर० 753 :
खेमका एण्ड कम्पनी बनाम महाराष्ट्र राज्य
(Khemka & Co. v. State of Maharashtra); 10

[1970] [1970] 2 उम० नि० प० 777=[1970] 1 एस० सी० आर० 753 :
हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य
(Hindustan Steel Ltd. v. State of Orissa); 36

[1964] [1964] 1 एस० सी० आर० 897 :
राय रामकृष्ण और अन्य बनाम बिहार राज्य
(Rai Ramkrishna and Others v. The State of Bihar); 33

[1963] [1963] 2 एस० सी० आर० 111 :
पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम एस० के० घोष
(State of West Bengal v. S. K. Ghosh); 27

[1962] [1962] 2 एस० सी० आर० 503 :
ज्वालाराम बनाम पेप्सू राज्य
(Jawala Ram v. State of Pepsu); 27

[1962] [1962] सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 1 :
छोटाभाई जेठाभाई पटेल एण्ड कम्पनी बनाम भारत संघ और एक अन्य
(Chhotabhai Jethabhai Patel & Co. v. The Union of India and Another); 32

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1960] [1960] 3 एस० सी० आर० 528 :
मैसर्स हती सिंह मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य
(M/s Hatisingh Mfg. Co. Ltd. and Another *v.* Union of India and Others); 28

[1953] [1953] 3 एस० सी० आर० 730 :
मकबूल हुसैन बनाम मुम्बई राज्य
(Maqbool Hussain *v.* The State of Bombay). 26

निर्दिष्ट निर्णय

[1980] [1980] 46 एस० टी० 369 :
सेन्ट्रल इण्डिया मोटर्स बनाम सी० एल० शर्मा, विक्रय कर सहायक आयुक्त, इन्दौर क्षेत्र, इन्दौर और एक अन्य
(Central India Motors *v.* C.L. Sharma, Assistant Commissioner of Sales Tax, Indore Region, Indore and Another); 30

[1975] [1975] 3 उम० नि० प० 10=[1975] 3 एस० सी० आर० 607 :
एम० के० पपीया एण्ड संस बनाम उत्पाद शुल्क आयुक्त और एक अन्य
(M. K. Papiah & Sons *v.* The Excise Commissioner and Another); 21, 22

[1974] [1974] 1 उम० नि० प० 1427=[1974] 2 एस० सी० आर 879 :
ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यूफैक्चरिंग (विविंग) कम्पनी लिमिटेड बनाम विक्रय कर सहायक आयुक्त और अन्य
[Gwalior Rayon Silk Mfg. (Wvg.) Co. Ltd. *v.* Asstt. Commissioner of Sales Tax and Others]; 20

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1970]	[1970] 75 आई० टी० आर० 741 : रघुनन्दन प्रसाद मोहन लाल बनाम आयकर अपील अधिकरण, दिल्ली खण्ड पीठ और अन्य (Raghunandan Prasad Mohan Lal *v*, Income-tex Appellate Tribunal, Delhi Bench and Others);	30
[1968]	[1968] 2 उम० नि० प० 584=[1968] 3 एस० सी० आर० 829 : मद्रास राज्य बनाम एन० के० नटराज मुदलियार (State of Madras *v.* N. K. Nataraja Mudaliar)	19
[1960]	ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 378 : बिहार राज्य बनाम राय बहादुर हरदत राम मोतीलाल जूट मिल्स और एक अन्य (State of Bihar *v*. Rai Bahadur Hurdut-Roy Moti Lal Jute Mills and Another)	29
[1956]	[1956] 7 एस० टी० सी० 609 : राय बहादुर हरदत राय मोतीलाल जूट मिल्स बनाम बिहार राज्य और एक अन्य (Rai Bahadur Hurdut Roy Moti Lal Jute Mills *v*. The State of Bihar and Another);	29
[1955]	[1955] 2 एस० सी० आर० 603 : बंगाल इम्यूनिटी कम्पनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य (Bengal Immunity Co. Ltd. *v*, State of Bihar and Others);	4
[1955]	[1955] 2 एस० सी० आर० 483 : मैसर्स राम नारायण संस लिमिटेड बनाम सहायक आयुक्त, विक्रय कर और अन्य (M/s. Ram Narain Sons Ltd. *v* Asstt. Commissioner of Sales Tax and Others);	4

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1953]	[1953] एस० सी० आर० 1069 : मुम्बई राज्य और एक अन्य बनाम यूनाइटेड मोटर्स (इण्डिया) लिमिटेड और अन्य [State of Bombay and Another v. The United Motors (India) Ltd. and Others].	4

आरम्भिक अधिकारिता : 1982 का रिट पिटीशन सं० 9057, 1980 का रिट पिटीशन सं० 318-319, 1981 का रिट पिटीशन सं० 1406-07, 1980 का रिट पिटीशन सं० 782, 1979 का रिट पिटीशन सं० 1264, 1980 के रिट पिटीशन सं० 450, 5798, 5799, 1981 के रिट पिटीशन सं० 2254 से 2260, 4615 से 4717, 7636, 8190, 1982 के रिट पिटीशन सं० 2250, 3478, 5455, 3479, 5518, 7220, 1983 के रिट पिटीशन सं० 608, 609, 1977 के रिट पिटीशन सं० 55 से 57, 1977 के रिट पिटीशन सं० 362, 401, 670-671, 672 से 675, 1191 से 1196, 1534 से 1536, 1539, 1978 के रिट पिटीशन सं० 3768, 3769, 4196, 1979 के रिट पिटीशन सं० 280, 789 से 792, 1081, 1082, 1083, 1084, 1981 के रिट पिटीशन सं० 233 से 241, 2201, 1982 के रिट पिटीशन सं० 3300, 3316, 3317, 3318, 3325, 3326, 3327 तथा 1978 के रिट पिटीशन सं० 4389, 4390, और 4562 से 4572.

पिटीशनरों की ओर से : सर्वश्री एम० एन० फड़के, यू० आर० ललित, एस० वी० भस्मी, श्रीमती संतोष गुप्त, एच० जी० गुप्त, सर्वमित्तर, के० सी० दुआ, एम० पी० झा, डा० एन० एम० घटाटे, एस० वी० देशपांडे,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एस० बी० सहारया, विष्णु बी० सहारया, जी० एस० जेतली और राम लाल।

प्रत्यर्थियों की ओर से — श्री एल० एन० सिन्हा, अटर्नी जनरल, श्री पी० पी० सिंह, कुमारी ए० सुभाषिनी, श्री आर० एन० पोद्दार, श्री गोपाल सुब्रमणियम, श्री डी० पी० मोहन्ति, श्री एस० ए० श्राफ, श्री डी० डी० शर्मा, श्री वी० बी० जोशी और श्री एम० एन० श्राफ।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ई० एस० वेंकटरामय्या ने दिया।

न्यायाधिपति वेंकटरामय्या—

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए पिटीशनों के इन दो समूहों में पिटीशनरों ने केन्द्रीय विक्रय कर (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का अधिनियम सं० 103) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संशोधन अधिनियम कहा गया है) द्वारा यथा संशोधित केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम सं० 74) (जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है) की धारा 9 की उपधारा (2क) की और संशोधन अधिनियम की धारा 9 की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी है जिसमें अधिनियम के अधीन शास्तियों के उद्ग्रहण को भूतलक्षी प्रभाव से विधिमान्य किया गया था।

2. पिटीशनर अधिनियम के अधीन संव्यवहारी हैं और उसके कारबार के स्थान महाराष्ट्र, हरियाणा, आदि राज्य हैं।

3. इन मामलों में उठाए गए विवाद के प्रश्नों को समझने के प्रयोजन के लिए माल के अन्तरराज्यिक विक्रयों और क्रयों पर संविधान के पश्चात् की कालावधि में करों के संबंध में विधान के इतिहास पर चर्चा करना आवश्यक है। संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन समाचारपत्रों से भिन्न अन्य मालों के विक्रय या क्रय पर कर उद्ग्रहीत करने की शक्ति राज्य विधानमंडल को समनुदेशित की गई थी। तथापि, समाचारपत्रों और उनमें प्रकाशित विज्ञापनों के विक्रय या क्रय पर करों के उद्ग्रहण की शक्ति संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 92 के अधीन संसद् को समनुदेशित की गई थी। संविधान का अनुच्छेद 286 (जैसा कि यह मूल रूप से अधिनियमित किया गया था) जो मालों के विक्रय या क्रय पर कर के उद्ग्रहण के मामले में राज्य पर कतिपय निर्बन्धन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिरोपित करता है, निम्न प्रकार पठित है—

"286(1) राज्य की कोई विधि, वस्तुओं के विक्रय या क्रय पर जहां ऐसा विक्रय या क्रय—

(क) राज्य के बाहर, अथवा

(ख) भारत राज्य-क्षेत्र में वस्तुओं के आयात अथवा उसके बाहर निर्यात के दौरान में,

होता है वहां कोई करारोपण न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी।

व्याख्या—उपखंड (1) के प्रयोजनों के लिए कोई क्रय या विक्रय उस राज्य में हुआ समझा जाएगा जिसमें ऐसे क्रय या विक्रय के परिणामस्वरूप उसी राज्य में उपभोग के लिए वस्तुओं का भुगतान उस राज्य में किया गया है, चाहे वस्तु-विक्रय सम्बन्धी साधारण विधि के अधीन उन वस्तुओं का स्वत्व-हस्तांतरण ऐसे क्रय या विक्रय के कारण किसी दूसरे राज्य में क्यों न हो चुका हो।

(2) जहां तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित करे उस के अतिरिक्त राज्य की कोई विधि किन्हीं वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर वहां कोई करारोपण न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी जहां ऐसा क्रय और विक्रय अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान में होता है।

परन्तु राष्ट्रपति आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कोई कर, जो किसी राज्य की सरकार द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले विधिवत उद्गृहीत किया जा रहा था, इस बात के होते हुए भी कि ऐसे कर का आरोपण इस खंड के उपबंधों के प्रतिकूल है, 1951 के मार्च के इकतीसवें दिन तक उद्गृहीत किया जाता रहेगा।

(3) किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित कोई विधि, ऐसी वस्तुओं के, जो संसद् द्वारा समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक घोषित की गई हैं, क्रय या विक्रय पर करारोपण करती है या करना प्राधिकृत करती है, तब तक प्रभावी न होगी जब तक कि राष्ट्रपति के विचार के लिए रक्षित किए जाने पर उसे उसकी अनुमति प्राप्त न हो गई हो।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

4. मालों के अन्तरराज्यिक विक्रयों और क्रयों पर उपरोक्त अनुच्छेद के सही प्रभाव के बारे में इस न्यायालय ने **मुम्बई राज्य और एक अन्य बनाम यूनाइटेड मोटर्स (इण्डिया) लिमिटेड और अन्य**[1] के मामले में विचार किया था। उस मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि संविधान के अनुच्छेद 301 और अनुच्छेद 304 के दृष्टिकोण से किए गए अर्थान्वयन और उसके स्पष्टीकरण के साथ पठित संविधान का अनुच्छेद 286(1)(क) उस राज्य के सिवाय जिसमें कि माल उसमें उपयोग के प्रयोजनों के लिए परिदत्त किए गए थे सभी राज्यों द्वारा अन्तर्वलित अन्तरराज्यिक मूल वस्तुओं के विक्रयों या क्रयों पर कराधान को प्रतिषिद्ध करता है। दूसरे शब्दों में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अन्तरराज्यिक विक्रयों के मामले में आयात करने वाला राज्य ही उन व्यक्तियों पर जो उसके राज्य क्षेत्र के बाहर रहने वाले थे अपनी विक्रय कर विधि के अधीन विक्रय के संव्यवहारों पर कर उद्गृहीत करने के लिए सक्षम था बशर्ते कि माल उपभोग के प्रयोजन के लिए आयात करने वाले राज्य में परिदत्त किए गए थे। इस विनिश्चय का परिणाम यह था कि संव्यवहारी, जो निर्यात करने वाले राज्य में कारबार चला रहे थे, आयात करने वाले राज्य की विक्रय कर विधि के अध्यधीन हो गए थे जिसमें कि माल का उपभोग किया जाता था। इस प्रश्न पर फिर **बंगाल इम्यूनिटी कम्पनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य**[2] के मामले में विचार किया गया था। उस मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि स्पष्टीकरण के साथ पठित खंड (1)(क) अनुच्छेद 286 के खण्ड (1)(ख) खण्ड (2) और खण्ड (3) का पठन यह दर्शाता है कि वे खण्ड विभिन्न प्रविषयों पर चर्चा करने के लिए आशयित थे और किसी एक को दूसरे में पढ़ा या प्रक्षिप्त नहीं किया जा सकता और इसलिए खण्ड (1) का स्पष्टीकरण विधिमान्य रूप से खण्ड (2) तक या तो अपवाद के रूप में या उसके परन्तुक के रूप में विस्तारित नहीं किया जा सकता या ऐसे नहीं पढ़ा जा सकता कि वह खण्ड (2) को कम करने वाला या परिसीमित करने वाला हो। परिणामस्वरूप यह अभिनिर्धारित किया गया था कि बिहार राज्य मालों पर जो अन्तरराज्यिक विक्रयों की विषयवस्तु थे अपनी विधि के अधीन विक्रय कर उद्गृहीत नहीं कर सकता था चाहे अनुच्छेद 286 के खण्ड (2) में यथाउपबंधित संसद् द्वारा बनाई गई विधि के अभाव में उस राज्य में उनका उपभोग किया गया था। यह निर्णय 6 सितम्बर, 1955

---

[1] [1953] एस० सी० आर० 1069.

1955] 2 एस० सी० आर० 603.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को सुनाया गया था और इस मामले में अभिव्यक्त दृष्टिकोण को **मैसर्स रामनारायण संस लिमिटेड बनाम सहायक आयुक्त, विक्रय कर और अन्य**[1] वाले मामले में दोहराया गया था। परिणाम तह था कि कोई भी राज्य अन्तरराज्यिक विक्रयों पर विक्रय कर उद्गृहीत नहीं कर सकता था चूंकि उसे प्राधिकृत करने के लिए कोई केन्द्रीय विधान नहीं था। इस निर्णय से चूंकि उन्हें गैर-आवासी व्यापारियों से इस प्रकार संगृहीत सभी करों को लौटाना पड़ा था कई राज्यों के बजट पर जिन्होंने **यूनाइटेड मोटर्स के मामले**[2] में विनिश्चय के अनुसरण में विक्रय कर संगृहीत कर लिया था। गंभीरतम वित्तीय अस्थिरता आ गई। इस स्थिति से राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित 1956 के अध्यादेश सं० 111 द्वारा निपटा गया जिसे बाद में विक्रय कर-विधि विधिमान्यता अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम 7) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जिसके द्वारा 6 सितम्बर, 1955 तक राज्यों द्वारा अन्तरराज्यिक विक्रयों पर विक्रय कर के सभी संग्रहणों को विधिमान्य कर दिया गया और निर्धारण के लिए अन्तर्राज्यिक विक्रयों पर उद्ग्रहण के संबंध में सभी कार्यवाहियों को संरक्षित कर दिया गया। बाद में करावान जांच आयोग की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए स्वयं संविधान का संविधान (छठा संशोधन) अधिनियम, 1956 के द्वारा संशोधन कर दिया गया जिसमें संघ सूची में प्रविष्टि 92क पुर:स्थापित की गई और राज्य सूची में प्रविष्टि 54 को एक नई प्रविष्टि द्वारा प्रतिस्थाति किया गया और अनुच्छेद 269 और अनुच्छेद 286 का संशोधन किया गया। संघ सूची में प्रविष्टि 92क निम्न प्रकार पठित है—

> "92क. समाचारपत्रों से भिन्न वस्तुओं के विक्रय या क्रय पर उस सूरत में कर जिसमें कि ऐसा विक्रय या क्रय अन्तराज्यिक व्यापार या वाणिज्य की चर्या में हो।"

5. राज्य सूची की प्रविष्टि 54 अब इस प्रकार पठित है—

> "54 सूची 1 की प्रविष्टि 92क के उपबंधों के अधीन रहते हुए समाचारपत्रों से भिन्न वस्तुओं के विक्रय या क्रय पर कर।"

6. केन्द्रीय सरकार द्वारा नई प्रविष्टि 92क के अनुसरण में बनाई गई विधि के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा अन्तरराज्यिक विक्रयों और क्रयों पर उद्गृहीत कर नए खंड अर्थात् अनुच्छेद 269 में जोड़े गए अनुच्छेद (3)

---

[1] [1955] 2 एस० सी० आर० 483.
[2] [1953] एस० सी० आर० 1069.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अधीन और अनुच्छेद 269 के अनुच्छेद (1) में उपखंड (छ) को जोड़ कर अनुच्छेद 269 के खंड (2) में उपबंधित प्रकार से राज्यों को समनुदेशित कर दिए गए थे और संघ को इस बात का अवधारण करने हेतु सिद्धांत बनाने के लिए सशक्त कर दिया गया था कि कब किस माल का विक्रय या क्रय अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के क्रम में होता है। संविधान के अनुच्छेद 269 के सुसंगत भाग संशोधन के पश्चात् इस प्रकार पठित हैं—

"269(1) निम्नलिखित शुल्क और कर भारत सरकार द्वारा आरोपित और संगृहीत किए जाएंगे, किन्तु राज्यों को खंड (2) में उपबंधित रीति से सौंप दिए जाएंगे, अर्थात्—

× × ×

(छ) समाचारपत्रों से भिन्न वस्तुओं के विक्रय या क्रय पर उस सूरत में कर जिसमें कि ऐसा विक्रय या क्रय अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य की चर्या में हो।

(3) यह अवधारित करने के लिए कि वस्तुओं का विक्रय या क्रय कब अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य की चर्या में होता है, संसद् विधि द्वारा सिद्धांत सूत्रित कर सकेगी।"

7. संविधान के अनुच्छेद 286 में खंड (1) का स्पष्टीकरण लुप्त कर दिया गया था और नए खंड (2) और (3) के द्वारा खंड (2) और (3) प्रतिस्थापित कर दिए गए थे। अनुच्छेद 286 अब निम्न प्रकार पठित है—

"286(1) राज्य की कोई विधि, वस्तुओं के विक्रय या क्रय पर, जहां ऐसा विक्रय या क्रय—

(क) राज्य के बाहर, अथवा

(ख) भारत राज्य-क्षेत्र में वस्तुओं के आयात अथवा उसके बाहर निर्यात के दौरान में,

होता है वहां कोई करारोपण न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी।

(2) यह अवधारित करने के लिए कि वस्तुओं का विक्रय या क्रय कब खंड (1) में वर्णित प्रकारों में से किसी से होता है, संसद् विधि द्वारा, सिद्धांत सूत्रित कर सकेगी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(3) जहां तक कि किसी राज्य की कोई विधि, अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य में ऐसी वस्तुओं के, जो कि संसद्-निर्मित विधि द्वारा विशेष महत्व की घोषित की गई हैं, विक्रय या क्रय पर किसी कर का आरोपण करती है या आरोपण प्राधिकृत करती है, वहां तक वह विधि, उस कर के उद्ग्रहण की व्यवस्था, दरों और अन्य प्रसंगतियों के संबंध में ऐसे निर्बन्धनों और शर्तों के अधीन होगी जैसी कि संसद्, विधि द्वारा, उल्लिखित करे।"

8. तदनुसार सन् 1956 में अधिनियम पारित किया गया। इसे तब से कई बार संशोधित किया गया। अधिनियम की उद्देशिका में यह कहा गया है कि अधिनियम का उद्देश्य इस बात का अवधारण करने के लिए कि माल का विक्रय या क्रय कब अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के क्रम में या राज्य के बाहर या भारत से निर्यात या भारत में आयात के क्रम में अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के क्रम में माल के विक्रयों पर कर उद्गृहीत, संगृहीत और विभाजिक करने का उपबंध करने के लिए और कतिपय मालों को अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के क्रम में विशेष महत्व का होने की घोषणा करने के लिए सिद्धांत बनाना और ऐसे निर्बन्धन या शर्तें विनिर्दिष्ट करना है जिसके कि राज्य की विधियां विशेष महत्व के ऐसे मालों के क्रय या विक्रय पर कर अधिरोपित करने के अधीन होगी। अधिनियम की धारा 2(ख) में 'व्यवहारी' अभिव्यक्ति की परिभाषा की गई है। और 'विक्रय' अभिव्यक्ति की परिभाषा उसकी धारा 2(छ) में की गई है। अधिनियम की धारा 3 में उन सिद्धांतों को अधिकथित किया गया है जिसके निर्देश में यह प्रश्न कि क्या माल का क्रय या विक्रय अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के क्रम में हुआ है या नहीं, अवधारित किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 4 में इस बात का अवधारण करने के लिए उपबंध है कि कब किसी माल के क्रय या विक्रय को राज्य के बाहर हुआ समझा जा सकता है और अधिनियम की धारा 5 में ऐसे सिद्धांतों को अधिकथित किया गया है जो इस प्रश्न के अवधारण को शासित करते हैं कि क्या कोई विक्रय या क्रय निर्यात या आयात के क्रम में किया गया है। अधिनियम की धारा 6 प्रभारी धारा है। अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) और (1क) जो इस मामले के प्रयोजनों के लिए तात्विक है, निम्न प्रकार पठित है—

"6. अन्तरराज्यिक विक्रयों पर कर के लिए दायित्व—

(1) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए हर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्योहारी उस तारीख को और उससे, जिसे केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और जो ऐसी अधिसूचना की तारीख के तीस दिन के पहले की न होगी, विद्युत ऊर्जा से भिन्न माल के उन सब विक्रयों पर जो अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के अनुक्रम में उसके द्वारा किसी वर्ष के दौरान जो ऐसी अधिसूचित तारीख को और उससे किए जाए, इस अधिनियम के अधीन कर देने का जिम्मेदार होगा।

परन्तु कोई व्योहारी किसी माल के ऐसे विक्रय पर, जो धारा 5 की उपधारा (3) के उपबंधों के अनुसरण में भारत के राज्य-क्षेत्र से बाहर उस माल के निर्यात के अनुकम में विक्रय है, इस अधिनियम के अधीन कर का संदाय करने के लिए जिम्मेदार नहीं होगा।

(1क) कोई व्योहारी अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के अनुक्रम में अपने द्वारा किए गए किसी माल के विक्रय पर इस अधिनियम के अधीन नियम के अधीन कर देने का जिम्मेदार इस बात के होते हुए भी होगा कि यदि वह विक्रय उस राज्य के भीतर हुआ होता तो कोई कर (विक्रेता या क्रेता से) समुचित राज्य की विक्रय-कर विधि के अधीन उद्ग्रहणीय नहीं होता।"

9. अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (2) उन परिस्थितियों की चर्चा करती है कि कब कतिपय अन्तरराज्यिक विक्रय या क्रय धारा 6 की उपधारा (1) और (1क) के अधीन अधिरोपित दायित्व से मुक्त होंगे। अधिनियम की धारा 6(क) में अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों में सबूत के भार की चर्चा है। अधिनियम की धारा 7 में व्यवहारियों के रजिस्ट्रीकरण का उपबंध है। अधिनियम की धारा 8 में अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य के क्रम में विक्रयों पर कर की दरों को विनिर्दिष्ट किया गया है और धारा 8(क) में विक्रय आवर्त के अवधारण के सम्बन्ध में नियमों को अधिकथित किया गया है। अधिनियम की धारा 9 जिसमें काफी परिवर्तन हुए हैं अधिनियम के अधीन किए गए उद्ग्रहण के निर्धारण संग्रहण आदि के बारे में उपबंध है। 1969 के केन्द्रीय विक्रय कर (संशोधन) अधिनियम 28 द्वारा किए गए भूतलक्षी संशोधनों के कारण धारा 9 (अधिनियम के प्रारम्भ से) निम्न प्रकार पठित है—

"9. कर और शास्तियों का उद्ग्रहण और संग्रहण—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(1) अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के अनुक्रम में किसी व्योहारी द्वारा किए गए माल के विक्रयों पर चाहे ऐसे विक्रय धारा 3 के खंड (क) के या खंड (ख) के अन्तर्गत आते हों, इस अधिनियम के अधीन उसके द्वारा संदेय कर भारत सरकार द्वारा उद्गृहीत किया जाएगा और इस प्रकार उद्गृहीत कर उस सरकार द्वारा उपधारा (2) के उपबंधों के अनुसार उस राज्य में संगृहीत किया जाएगा जिससे माल का संचलन प्रारम्भ हुआ था :

परन्तु माल के एक राज्य से अन्य राज्य को संचलन के दौरान ऐसे विक्रय की दशा में, जो उसी माल की बाबत प्रथम विक्रय के पश्चात् वाला विक्रय है, और जो ऐसा विक्रय है जो धारा 6 की उपधारा (2) के अन्तर्गत नहीं है.वहीं कर का उद्ग्रहण और संग्रहण उस राज्य में किया जाएगा जिससे पश्चात्वर्ती विक्रय करने वाले रजिस्ट्रीकृत व्योहारी ने ऐसे माल के क्रय के सम्बन्ध में धारा 8 की उपधारा (4) के खंड (क) के प्रयोजनों के लिए विहित प्ररूप, यथास्थिति, अभिप्राप्त किया है या अभिप्राप्त कर सकता था ।

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों और तद्धीन बनाए गए नियमों के अधीन रहते हुए यह है कि वे प्राधिकारी जो समुचित राज्य की साधारण विक्रय-कर विधि के अधीन किसी कर का निर्धारण, पुनर्निर्धारण और संग्रहण करने तथा उसका संदाय कराने के लिए तत्समय सशक्त हों, भारत सरकार की ओर से किसी व्योहारी द्वारा इस अधिनियम के अधीन संदेय कर का, जिसके अन्तर्गत कोई शास्ति भी है, निर्धारण, पुनर्निर्धारण और संग्रहण ऐसे करेंगे और उसका संदाय ऐसे कराएंगे मानो इस अधिनियम के अधीन ऐसे व्योहारी द्वारा संदेय कर या शास्ति, उस राज्य की साधारण विक्रय-कर विधि के अधीन संदेय कर या शास्ति हो, और इस प्रयोजन के लिए वे उस राज्य की साधारण विक्रय-कर विधि के अधीन की अपनी सब शक्तियों का या उनमें से किसी का प्रयोग कर सकेंगे, और ऐसी विधि के उपबंध, जिनके अन्तर्गत विवरणियों, अनतिम निर्धारण, कर के अग्रिम संदाय, किसी कारबार के अन्तरिती को रजिस्टर करने, कारबार चलाने वाले किसी व्यक्ति के कर-दायित्व के उस कारबार के अन्तरिती या उत्तराधिकारी पर अधिरोपण, किसी फर्म या हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के कर देने की जिम्मेदारी के ऐसे फर्म का विघटन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

या ऐसे कुटुम्ब के विभाजन होने की दशा में अन्तरण, पर-व्यक्तियों से कर की वसूली, अपीलों, पुनर्विलोकनों, पुनरीक्षणों, निर्देशों प्रतिदायों, शास्तियों, अपराधों के प्रशमन से और व्यौहारी द्वारा दी गई दस्तावेजों के गोपनीय माने जाने से संबंधित उपबंध भी है, तदनुसार लागू होंगे :

परन्तु यदि किसी राज्य या उसके किसी भाग में कोई साधारण विक्रय-कर विधि प्रवृत्त न हो तो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त बनाए गए नियमों द्वारा इस उपधारा में विनिर्दिष्ट सब बातों के लिए या उनमें से किसी के लिए आवश्यक उपबंध कर सकेगी ।

(3) किसी राज्य में (संघ राज्य क्षेत्र से भिन्न) किसी वित्तीय वर्ष में भारत सरकार की ओर से इस अधिनियम के अधीन उद्गृहीत और संगृहीत किसी कर के, जिसके अन्तर्गत शास्ति भी है, आगम उस राज्य को सौंपे जाएंगे और उसके पास रखे रहेंगे, और संघ राज्य क्षेत्रों के माने जा सकने वाले आगम भारत की संचित निधि का भाग होंगे ।"

10. ऊपर उद्धृत धारा 9 की उपधारा (2) से यह देखा जा सकता है कि समुचित राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के अधीन किसी कर के संदाय के निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण और प्रवर्तन के लिए सशक्त प्राधिकारी अधिनियम के अधीन किसी व्यौहारी द्वारा संदेय किसी शास्ति सहित किसी कर के संदाय को निर्धारित, पुनर्निर्धारित और प्रवर्तित करने के लिए प्राधिकृत हैं । राज्य के साधारण विक्रय कर विधि के अधीन प्राधिकारियों को इस प्रकार से अधिनियम की धारा 9(2) में निर्दिष्ट निर्धारण आदि के करों का निर्वहन करने में संघ सरकार के अभिकर्ता बनाया गया है और वे उन सभी या किसी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त हैं जो उन्हें उपरोक्त प्रयोजनों के लिए राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के अधीन प्राप्त हैं । धारा 9(2) में आगे इस बात का उपबन्ध है कि संबन्धित राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के उपबन्ध जिसके अन्तर्गत विवरणियां, अन्तिम निर्धारण, कर के अग्रिम संदाय, किसी कारबार के अन्तरिती को रजिस्टर करने, कारबार चलाने वाले किसी व्यक्ति के कर दायित्व के उस कारबार के अन्तरिती या उत्तराधिकारियों पर अधिरोपण, किसी फर्म या हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के कर देने की जिम्मेदारी के ऐसे फर्म के विघटन या ऐसे कुटुम्ब के विभाजन होने की दशा में अन्तरण पर व्यक्तियों से कर की वसूली अपीलों, पुनर्विलोकनों, पुनरीक्षणों, निर्देशों, प्रतिदायों, शास्तियों, अपराधों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रशमन से और व्योहारी द्वारा दिए गए दस्तावेज़ों के गोपनीय माने जाने से सम्बन्धित उपबन्ध भी हैं अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को तदनुसार लागू होंगे। अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2) के परन्तुक में यह उपबन्धित है कि यदि किसी राज्य या उसके किसी भाग में कोई साधारण विक्रय कर विधि प्रवृत्त न हो तो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त बनाए गए नियमों द्वारा इस उपधारा में विनिर्दिष्ट सब बातों के लिए या उनमें से किसी के लिए आवश्यक उपबन्ध कर सकेगी। अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) वस्तुत: संविधान के अनुच्छेद 269 के आशय को इस बात का उपबन्ध करके आगे बढ़ाती है कि किसी राज्य में (संघ राज्यक्षेत्र से भिन्न) किसी वित्तीय वर्ष में भारत सरकार की ओर से इस अधिनियम के अधीन उद्‌गृहीत और संगृहीत किसी कर के आगम, जिसके अन्तर्गत शास्ति भी है, उस राज्य को सौंपे जाएंगे और उसके पास रखे रहेंगे। यहां पर इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि स्वयं अधिनियम ऐसा कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं था जो अधिनियम के अधीन संदेय कर के संदाय में विलंब या व्यतिक्रम या राज्यों की साधारण कर विधियों में अन्य भंग के लिए शास्ति के उद्‌ग्रहण के लिए प्राधिकृत करता हो जहां तक कि उन्हें अधिनियम के अधीन तंत्र के भाग के रूप में अधिनियम की धारा 9 (2) द्वारा अंगीकृत किया गया है। किन्तु राज्यों में सभी विक्रय कर प्राधिकारियों द्वारा जिन्हें धारा 9(2) के अधीन शास्ति का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत किया गया था, यह समझा गया था कि शास्ति उनके द्वारा समुचित राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के उपबन्धों के अनुसरण में संगृहीत की जा सकती है जिससे कि वे अधिनियम के उपबन्धों को प्रवृत कर सके जिसमें उसके अधीन कर का संग्रहण भी सम्मिलित है। **खेमका एण्ड कंपनी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] के मामले में, जो एक ऐसा मामला था जिसकी सुनवाई इस न्यायालय के पांच विद्वान न्यायाधिपतियों की न्यायपीठ द्वारा की गई थी, अधिनियम के अधीन निर्धारिती ने जो महाराष्ट्र राज्य का निवासी था, यह दलील दी थी कि बाम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट की धारा 16(4) के अधीन अधिनियम के अधीन संदेय शोध्य कर के संदाय में विलंब या व्यतिक्रम के लिए शास्ति अधिनियम की धारा 9(2) के उपबन्धों द्वारा समर्थित नहीं थी। उस मामले में तीन मत अभिव्यक्त किए गए थे। मुख्य न्यायाधिपति ए० एन० रे ने, जिनके साथ न्यायाधिपति खन्ना सहमत थे, यह अभिनिर्धारित किया था कि शास्ति निर्धारण की न केवल मंजूरी या निर्धारण का उपाबन्ध या उसका आनुषंगिक

---

[1] [1975] 3 एस० सी० आर० 753.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है और न केवल कर के संदाय को प्रवृत्त करने के लिए एक सही तंत्र है किन्तु वास्तव में अधिनियम के अधीन कर के संदाय में विलंब या व्यतिक्रम के लिए शास्ति के उद्ग्रहण के अभिव्यक्त उपबन्ध के न होने पर कानूनी दायित्व है, प्राधिकारियों के लिए राज्य विधि के अधीन इस बात की छूट नहीं थी कि वे अधिनियम के अधीन कर के संदाय में विलंब या व्यतिक्रम के लिए शास्ति उद्गृहीत या संगृहीत कर सके। न्यायाधिपति मेथ्यू ने, जिनके साथ न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ जैसे कि वे उस समय थे, सहमत थे, यह अभिनिर्धारित करके एक प्रतिकूल दृष्टिकोण अपनाया कि यदि समुचित राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के अधीन शोध्य कर के संदाय को प्रवृत्त करने के लिए तद्धीन प्राधिकारियों को शास्ति अधिरोपित करने की शक्ति होगी, तो उन्हें अधिनियम के अधीन संदेय कर का संदाय करने को प्रवृत्त करने के लिए राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के अनुसरण में शास्ति अधिरोपित करने की वही शक्ति प्राप्त होगी। जब की अधिनियम की धारा 10(क) के साथ पठित धारा 10 के अधीन शास्ति के उद्ग्रहण के लिए विनिर्दिष्ट उपबन्ध के अस्तित्व का अपने दृष्टिकोण के समर्थन में मुख्य न्यायाधिपति ए० एन० रे ने अवलंब लिया था, उक्त उपबन्धों को यह मत व्यक्त करके न्यायाधिपति मेथ्यू ने स्पष्ट किया कि अधिनियम की धारा 10 (क) के साथ पठित धारा 10 उपबन्ध शास्ति अधिनियम के अधीन व्यवहारी द्वारा संदेय करके संदाय को निर्धारित, पुनर्निर्धारित संगृहीत और प्रवर्तित करने से संबन्धित प्रयोजन के लिए नहीं थी। न्यायाधिपति बेग, जैसे कि वे उस समय थे, ने अपने पृथक निर्णय में मुख्य न्यायाधिपति ए० एन० रे के दृष्टिकोण से सहमत व्यक्ति की थी। परिणाम यह था कि अपीलार्थी के विरुद्ध उद्गृहीत शास्ति को बहुमत की राय के अनुसार न चलने योग्य अभिनिर्धारित किया गया था, परिणामस्वरूप धारा 9 को संशोधन करना पड़ा, जिसे 7 नवम्बर, 1976 को भारत सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया और उस में उपधारा (2क) पुरःस्थापित की गई। संशोधन अधिनियम द्वारा किए गए अन्य संशोधनों से हमारा सम्बन्ध नहीं है। धारा 9 की उपधारा (5क) जो संशोधन अधिनियम द्वारा पुरःस्थापित की गई थी, निम्न प्रकार पठित है—

"(2क) प्रत्येक राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के अपराधों और शास्तियों से सम्बन्धित सभी उपबन्ध (जिनके अन्तर्गत किसी अपराध के अभियोजन के बदले में शास्तियों से या किसी अपराध के लिए शास्तियों या दण्ड के अतिरिक्त शास्तियों से सम्बन्धित उपबन्ध भी हैं, किन्तु उन उपबन्धों को छोड़कर जो धारा 10

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और 10क में उपबंधित विषयों के सम्बन्ध में हैं) आवश्यक उपान्तरणों के साथ किसी ऐसे कर के, जो उस राज्य में इस अधिनियम के अधीन संग्रह किए जाने के लिए अपेक्षित हैं, निर्धारण पुनर्निर्धारण, संग्रहण और संदाय के प्रवर्तन के सम्बन्ध में था, या ऐसे निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण या संदाय के प्रवर्तन से सम्बन्धित किसी प्रक्रिया के सम्बन्ध में लागू होंगे मानो इस अधिनियम के अधीन कर ऐसी विक्रय कर विधि के अधीन कर हो ।"

11. संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (1) में विधिमान्यकरण उपबंध है । संशोधन अधिनियम की धारा 9 में इस बात की घोषणा की गई है कि मूल अधिनियम की धारा 9 के उपबंध, 1957 की जनवरी के पांचवें दिन को प्रारम्भ होने वाली और इस अधिनियम, के प्रारम्भ की तारीख के ठीक पूर्व की तारीख को समाप्त होने वाली अवधि के संबंध में ऐसे प्रभावी होंगे और सदैव से ऐसे प्रभावी समझे जाएंगे मानो धारा 9 में यह भी उपबन्धित था—

(क) कि प्रत्येक राज्य की साधारण विक्रय कर विधि की शास्तियों से संबंधित सभी उपबन्ध (जिनके अन्तर्गत किसी अपराध के अभियोजन के बदले में अथवा किसी अपराध के लिए दोषसिद्धि पर शास्तियों या दंड के अतिरिक्त शास्तियों से सम्बन्धित उपबन्ध भी हैं, किन्तु उन उपबन्धों को छोड़कर जो मूल अधिनियम की धारा 10 और धारा 10क में उपबन्धित विषयों और अपराधों के सम्बन्ध में हैं) आवश्यक उपान्तरणों सहित निम्नलिखित के सम्बन्ध में लागू होंगे—

(i) ऐसे राज्य में मूल अधिनियम के अधीन संगृहीत किए जाने के लिए अपेक्षित कर के निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण और संदाय का प्रवर्तन, तथा

(ii) ऐसे निर्धारण, पुन:निर्धारण, संग्रहण या संदाय के प्रवर्तन से सम्बन्धित कोई प्रक्रिया, तथा

(ख) कि ऐसी विधि के लागू किए जाने के प्रयोजन के लिए, मूल अधिनियम के अधीन कर को ऐसी विधि के अधीन कर समझा जाएगा ।

12. संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2) में इस बात की घोषणा करके सभी शास्तियों के उद्ग्रहण के सम्बन्ध में की गई सभी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कार्यवाहियों को विधिमान्य कर दिया कि किसी न्यायालय या अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य की साधारण विक्रय-कर विधि के अधीन सभी शास्तियां, जो मूल अधिनियम की धारा 9 के उपबन्धों के अनुसरण में अधिरोपित की गई हैं या अधिरोपित की जाने के लिए तात्पर्यित हैं, और ऐसी शास्तियों के अधिरोपण या संग्रहण के प्रयोजन के लिए या के सम्बन्ध में सभी कार्यवाहियां, कार्य या बातें, जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व की गई हैं, सभी प्रयोजनों के लिए ऐसे वैध और प्रभावकारी रूप से की गई समझी जाएंगी मानो उपधारा (1) के उपबन्ध उस समय प्रवृत्त थे जब ऐसी शास्तियां अधिरोपित की गई थीं अथवा कार्यवाहियां या कार्य या बातें की गई थीं और तदनुसार—

(क) ऐसी शास्ति के रूप में प्राप्त या वसूल की गई किसी रकम के प्रतिदाय के लिए कोई वाद या अन्य कार्यवाही किसी न्यायालय या किसी अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष न तो की जाएगी और न जारी रखी जाएगी,

(ख) कोई न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी ऐसी शास्ति के रूप में प्राप्त या वसूल की गई रकम के प्रतिदाय का निदेश देने वाली किसी डिक्री या आदेश को प्रवृत्त नहीं करेगा,

(ग) जहां ऐसी शास्ति के रूप में प्राप्त या वसूल की गई रकम का प्रतिदाय इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व कर दिया गया है और यदि उपधारा (1) के उपबन्ध उस तारीख को, जिसको ऐसे प्रतिदाय का आदेश पारित किया गया था, प्रवृत्त रहते तो ऐसा प्रतिदाय अनुज्ञात न किया गया होता तो इस प्रकार प्रतिदाय की गई रकम मूल अधिनियम के अधीन कर के बकाए के रूप में वसूल की जा सकेगी।

13. संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) में यह उपबन्धित है कि उसकी धारा 9(2) में की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी व्यक्ति को अधिनियम के उपबन्धों के अनुसरण में किसी शास्ति के अधिरोपण या संग्रहण पर अथवा उसके सम्बन्ध में किसी कार्यवाही, कार्य या बात पर आक्षेप करने से या किसी प्रतिदाय का दावा करने से रोकती है। इस उपधारा के स्पष्टीकरण में 27 फरवरी, 1975 और अधिनियम के प्रारम्भ होने की तारीख के बीच की कालावधि को शास्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को प्रश्नगत करने के लिए परिसीमा की कालावधि की संगणना करने में अपवर्जित किए जाने का उपबन्ध है।

14. संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (4) में विक्रय कर की बकाया पर ब्याज के उद्ग्रहण को विधिमान्य किया गया है।

15. ये पिटीशनें संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् फाइल की गई हैं।

16. इन पिटीशनरों के समर्थन में पिटीशनरों ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं—

(1) कि अधिनियम की धारा 9 में उपधारा (2क) के पुरः-स्थापन का अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को लागू राज्य की साधारण विक्रय कर विधियों के अधीन उद्ग्रहणीय शास्तियों से सम्बन्धित उपबन्धों को बनाने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(2) कि संसद् अधिनियम के अधीन प्रभार को प्रवृत्त करने के लिए राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों में शास्तियों से संबंधित उपबन्ध को स्वीकार नहीं कर सकती क्योंकि ऐसा क्रम संसद् द्वारा उसके अनिवार्य विधायी कर्त्तव्यों का अधित्याग होगा।

(3) अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) को भूतलक्षी प्रभाव देने वाला उपबन्ध और संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व उद्गृहीत सभी शास्तियों को विधिमान्य करने वाला उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 20 के खंड (1) का अतिक्रामी है।

(4) भूतलक्षी प्रभाव से शास्तियों का उद्ग्रहण संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) और (छ) के भी अतिक्रामी है, और

(5) कि हरियाणा राज्य के निर्धारितियों के मामले में यह दलील दी गई है कि हरियाणा साधारण विक्रय कर अधिनियम की धारा 48 शून्य है चूंकि यह शास्ति उद्गृहीत करने के लिए प्राधिकारियों को मनमानी और अनियंत्रित शक्ति प्रदत्त करती है।

17. हम इन दलीलों पर क्रमशः विचार करेंगे।

18. पिटीशनरों की ओर से पहली दलील यह दी गई है कि अधिनियम में कमी जो इस न्यायालय ने खेमका के मामले में बतलाई थी; अर्थात् कि अधिनियम में शास्तियां उद्गृहीत करने के लिए कोई उपबन्ध नहीं था, जैसा कि यह सन् 1976 में उसके संशोधन से पूर्व था, अभी भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूरी नहीं हुई है और इसलिए कोई भी शास्तियां क्रमिक राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों के उपबन्धों का उपभोग करके पूरी नहीं की जा सकती। यह दलील अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) की भाषा पर आधारित है जो ऊपर उद्धृत की गई है। यह दलील दी गई है कि "प्रत्येक राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के...... अपराध और शास्तियों के संबंध में सभी उपबंध आवश्यक उपान्तरणों के साथ अधिनियम के अधीन संगृहीत किए जाने के लिए अपेक्षित किसी कर के निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण और संदाय के प्रवर्तन को लागू होंगे......" शब्द अधिनियम के अधीन निर्धारितियों को लागू राज्य विधियों में शास्तियों से संबंधित उपबंध बनाने के लिए अपर्याप्त है चूंकि "शास्तियां" शब्द "किसी कर निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण और संदाय को प्रवृत्त करने" शब्दों के साथ नहीं मिलते। यह दलील भ्रान्तिपूर्ण है। अधिनियम का मूल उद्देश्य शास्तियां उद्गृहीत करना नहीं है। इसका उद्देश्य केन्द्रीय विक्रय कर का निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण और संदाय को प्रवृत्त करना है। निर्धारिती ऊपर विनिर्दिष्ट विभिन्न चरणों में उनके द्वारा किए गये कतिपय कार्यों या लोपों के मद्धे शास्तियों का संदाय करने का दायित्व उपगत करता है अर्थात् कर के निर्धारण, पुनर्निर्धारण संग्रहण और संदाय का प्रवर्तन। इसलिए इन चार प्रक्रमों के साथ "शास्ति" शब्द को जोड़ना अनुचित होने के अलावा निरर्थक हो जाएगा। अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) स्पष्ट रूप से क्रमिक राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों के अधीन किए गए अपराधों या उपगत शास्तियों के सम्बन्ध में सभी उपबन्ध बनाए हैं जो ऐसे व्यक्तियों को लागू होते हैं जो अधिनियम के अधीन ऊपर उल्लिखित चरणों में तत्स्थानी कार्य या लोप करते हैं। दृष्टांत के रूप में यदि कोई व्यक्ति राज्यों की साधारण विक्रय कर विधि के अधीन उसके द्वारा फाइल किए जाने के लिए अपेक्षित विवरणी को फाइल न करने के लिए किसी शास्ति का संदाय करने के दायित्वाधीन है कोई व्यक्ति जो इसी प्रकार से अधिनियम के अधीन विवरणी फाइल करने के लिए अपेक्षित है विवरणी फाइल न करने के लिए शास्ति उपगत करता है और शास्ति का परिमाण वही है जो राज्य विधि के अधीन है। यदि कोई व्यक्ति विनिर्दिष्ट समय के भीतर राज्य विधि के अधीन देय कर के किसी भाग का संदाय न करने के लिए कर के अतिरिक्त किसी विशेष दर पर शास्ति का संदाय करने के दायित्वाधीन है तो यदि वह अधिनियम के अधीन शोध्य कर का संदाय करने में व्यतिक्रम करता है अधिनियम के अधीन कर का संदाय करने के दायित्वाधीन व्यक्ति उसी दर पर शास्ति का संदाय करने के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दायित्वाधीन हो जाता है। इसलिए हमें अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) की भाषा में कोई कमी दिखाई नहीं देती जो क्रमिक राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों के अधीन शास्तियों के सम्बन्ध में उपबन्ध करती है जो अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को भी लागू नहीं होती। जब कि धारा 9 की उपधारा (2क) भविष्यलक्षी रूप से अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को लागू होने वाली राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों में अपराधों और शास्तियों के सम्बन्ध में उपबन्ध करती है, संशोधन अधिनियम की धारा 9 अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) में प्रयुक्त उसी भाषा को स्वीकार करके भूतलक्षी रूप से अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को लागू राज्य की साधारण विक्रय कर विधियों में ही शास्तियों के सम्बन्ध में सभी उपबन्ध करती है। विधान की इस प्रणाली को शायद इसलिए स्वीकार करना पड़ा क्योंकि संसद् ऐसे अपराधों से सम्बन्धित उपबन्धों को भी ठीक ही भूतलक्षी प्रभाव नहीं देना चाहती थी जो धारा 9 की उपधारा (2क) में निर्दिष्ट है। इस प्रकार से 5 जनवरी, 1957 से धारा 9 की उपधारा (2क) को भूतलक्षी प्रभाव देकर, जहां तक कि संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (1) को अधिनियमित करके शास्तियों का सम्बन्ध था, संसद् ने इस अधिनियम में खेमका के मामले में बतलाई गई कमियों को दूर कर दिया। भूतलक्षी संशोधन को ध्यान में रखते हुए खेमका के मामले[1] में निर्णय का आधार भी हटा दिया गया। परिणामस्वरूप उस मामले में दिया गया निर्णय संशोधन अधिनियम की धारा 9(2) के विधिमान्यकरण उपबन्धों के अनुसरण में शास्तियों को वसूल करने के रास्ते में नहीं आया। हमारा यह दृष्टिकोण है कि अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) और संशोधन अधिनियम की धारा 9 में यथा अनुध्यात 5 जनवरी, 1957 से शास्तियों के निर्धारण और वसूली के लिए पर्याप्त हैं। इसलिए हमारा यह मत है कि पिटीशनरों की इस दलील में कोई सार नहीं है।

19. पिटीशनरों की ओर से उठाया गया दूसरा प्रश्न यह है कि अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) में विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष है। यह दलील दी गई है कि राज्यों की विभिन्न साधारण विक्रय कर विधियों में निर्दिष्ट अपराध और शास्तियों के सम्बन्ध में उपबन्धों को स्वीकार करके संसद् ने अपने अनिवार्य विधायी कर्त्तव्य का अधित्याग किया है। यह प्रश्न कि क्या विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन या अधित्याग हुआ है, कानून के शब्दों के अर्थों और उसके पीछे

[1] [1975] 3 एस० सी० आर० 753.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नीति पर विनिश्चित करना होगा। प्रस्तुत मामले में संसद् ने राज्य विधानमण्डलों को ऐसे अपराधों और शास्तियों के सम्बन्ध में विधियां बनाने के लिए प्राधिकृत नहीं किया है जो अधिनियम के अधीन उद्ग्रहणीय होंगी। धारा 9 की उपधारा (2क) को अधिनियमित करके संसद् ने जो कुछ किया है वह यह है कि अपराधों और शास्तियों से सम्बन्धित जो भी उपबन्ध राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों में थे, अधिनियम के उपबन्धों के अधीन निर्धारण, पुनर्निर्धारण संग्रहण और प्रवर्तन को समुचित उपान्तरण के साथ लागू होंगे। किसी अन्य कानून के उपबन्धों को निगमित करके चाहे विभिन्न विधानमण्डलों द्वारा उन्हें पारित किया गया हो, विधान बनाना विधायन की एक जानी मानी पद्धति है जो विधान की विधिमान्यता को प्रभावित नहीं करती, विशेषकर उस समय जब कि अन्य कानून की स्कीम उसी प्रकार की हो और ऐसा निगमन विधान के उद्देश्यों और प्रयोजनों को आगे बढ़ाने के प्रयोजन के लिए सुसंगत और आवश्यक हो। प्रस्तुत मामले में हमें केन्द्रीय विक्रय कर विधान और इसके उद्देश्य और प्रयोजन के इतिहास को ध्यान में रखना चाहिए। अन्तरराज्यिक विक्रयों पर उद्गृहीत केन्द्रीय विक्रय कर संविधान के अनुच्छेद 269 के अधीन ऐसे राज्यों को समनुदेशित है जो सही लाभ पाने वाले हैं। अधिनियम के अधीन निर्धारिती जो विभिन्न राज्यों में फैले हुए हैं, अपने-अपने राज्यों में विक्रय कर विधि की साधारण पद्धति के आदि हो गए हैं और ऐसे निर्धारिती के कर्त्तव्य और दायित्व के आदि हैं जो विक्रय कर संदाय करने के दायित्वाधीन हैं। अधिकारी जो अधिनियम के अधीन कर का निर्धारण और संग्रहण करते हैं ऐसे अधिकारी हैं जो राज्य विधियों के अधीन इसी प्रकार के कर्त्तव्य का निर्वहन करते हैं। इस स्थिति में यदि संसद् विभिन्न राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों में अपराधों और शास्तियों के सम्बन्ध में विभिन्न उपबन्धों के ज्ञान के साथ अधिनियम के उपबन्धों के अधीन निर्धारण, पुनर्निर्धारण, संग्रहण और प्रवर्तन के प्रयोजनों के लिए उन्हें स्वीकार करते हैं तो यह नहीं कहा जा सकता है कि इसने अपने विधायी कर्त्तव्यों का अधित्याग कर दिया है। इस सम्बन्ध में, **मद्रास राज्य** बनाम **एन० के० नटराज मुदलयार**[1] के मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट करना आवश्यक है। उस मामले में निर्धारितियों द्वारा दी गई दलीलों में से एक दलील अधिनियम की धारा 8 की विधिमान्यता से सम्बन्धित थी जैसा कि उसे 1958 के केन्द्रीय अधिनियम सं० 31 द्वारा संशोधित किया

---

[1] [1968] 2 उम० नि० प० 584=[1968] 3 एस० सी० आर० 829.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया था। धारा 8 की उपधारा (1) के द्वारा प्रत्येक संव्यवहारी जो अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य के क्रम में किसी माल को सरकार को बेचता है या सरकार से भिन्न किसी अन्य रजिस्ट्रीकृत संव्यवहारी को बेचता है तो धारा 8 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट परिभाषा का माल अधिनियम के अधीन उसके कुल आवर्त के 1 प्रतिशत की दर पर कर का संदाय करने के दायित्वाधीन था। धारा 8 की उपधारा (2) के अधीन अन्तरराज्यिक विक्रयों के सम्बन्ध में विक्रय आवर्त पर संदेय कर जो धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन आता है, (क) घोषित मालों के मामले में ऐसी दर पर संगणित किया जाएगा जो समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के विक्रय या क्रय को लागू होगा और (ख) घोषित मालों से भिन्न माल के मामले में 7 प्रतिशत की दर पर या समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के क्रय या विक्रय पर लागू होने वाली दर पर संगणित होगा जो भी ऊपर हो। अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (2क) में इस बात का उपबंध है कि उपधारा (1) या उपधारा (2) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी यदि समुचित राज्य की साधारण कर विधि के अधीन व्यवहारी द्वारा किसी माल का विक्रय या क्रय जैसा भी मामला हो, साधारणतया कर से छूट प्राप्त था या साधारणतया ऐसी दर पर कर के अध्यधीन था जो 1 प्रतशित की अपेक्षा कम था (चाहे उसे कर कहा जाए, शुल्क कहा जाए या किसी और नाम से पुकारा जाए) उसके विक्रय आवर्त पर अधिनियम के अधीन संदेय कर जहां तक कि विक्रय आवर्त या उसका कोई भाग ऐसे माल के विक्रय से संबंधित है, शून्य होगा या जैसा भी मामला हो, उसे निचली दर पर संगणित किया जाना चाहिए। धारा 8 की उपधारा (2क) के स्पष्टीकरण में इस बात का उपबंध है कि उस उपधारा के प्रयोजन के लिए माल के विक्रय या क्रय को समुचित राज्य की विक्रय कर विधि के अधीन साधारणतया कर से छूट प्राप्त नहीं समझा जाना चाहिए यदि उसके अधीन यह केवल विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में हैं या विनिर्दिष्ट शब्दों के अधीन ही छूट प्राप्त था या ऐसे संबंध में जिसमें कि विनिर्दिष्ट चरणों में या माल के विक्रय आवर्त के निर्देश से भिन्न अन्य किसी संबंध में छूट प्राप्त था। धारा 8 की उपधारा (2) और (2क) के अधीन कर की भिन्न-भिन्न दरों को न्यायोचित ठहराते हुए, जो विभिन्न राज्यों में उद्ग्रहणीय कर की दरों पर निर्भर था, न्यायाधिपति शाह ने पृष्ठ 844-846 पर इस प्रकार मत व्यक्त किया —

"कर की उन दरों को भी, जो उस तारीख को जब केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम अधिनियमित किया गया था प्रवृत्त थी, स्थायी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूप नहीं मिल पाया है। जो दरें राज्य विधानसभा धारा 8(1) और (2) में निर्दिष्ट वस्तुओं के लिए विहित अधिकतम दरों के अध्यधीन तय करती हैं वे दरें उन संव्यवहारों के लिए प्रवृत्त दरें हैं। उन संव्यवहारों के बारे में जो धारा 8(2)(ख) के अन्दर आते हैं दर क्या होगी इस बात का निपटारा, सिवाय उन मामलों के जिनमें राज्य दर दो और सात प्रतिशत के बीच है, राज्य दर के आधार पर किया जाता है। किसी विशिष्ट वस्तु के अन्तरराज्यिक संव्यवहारों के बारे में जो दर राज्य विधानमंडल अधिरोपित करेगा वह दर निस्संदेह विभिन्न बातों पर निर्भर करेगी। जब किसी वस्तु का उपभोग राज्य के अन्दर बिल्कुल होता ही नहीं है या जब राज्य यह अनुभव करे कि जो भार राज्य के अन्दर के उपभोक्ताओं पर पड़ेगा उसका बहुत कुछ संतुलन अन्ततोगत्वा बाहर के उपभोक्ताओं से प्राप्त होने वाले राजस्व के रूप में होने वाले अभिलाभ से हो जाएगा तब किसी वस्तु पर उच्चतर दर से कर अधिरोपित करने का निश्चय किसी राज्य द्वारा किया जा सकता है। विक्रय कर की दरों का अधिरोपण प्रसामान्यतः राजनैतिक और आर्थिक बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है। यदि दर इतनी अधिक है कि जो भी व्यापारी उस वस्तु के खरीदार हो सकते हैं वे उस वस्तु को न लेकर अपना माल दूसरे स्थानों से मंगाने लगेंगे तो खरीदारों को आकर्षित करने के लिए राज्य अपने ही हित में उस दर को समायोजित करेगा। यदि संविधान ही लोकतंत्रात्मक है तो असम्यकतः ऊंची दर से कर के उद्ग्रहण के विरुद्ध राजनैतिक शक्तियां काम करने लगेंगी। वस्तुओं के विक्रय पर लगाए जाने वाले कर की दर का आधार मामूली तौर से ऐसा नहीं हो सकता जो मनमाने ढंग से बनाया गया हो। उसे तो यही देखकर नियत किया जा सकता है कि किसी विशिष्ट वस्तु के व्यापार के लिए कौन-कौन-सी सुविधाएं मिल सकती हैं, अन्दर की तथा बाहर की बाजार की स्थिति कैसी और इस बात की संभाव्यता तो नहीं है कि कीमत को देखकर, जिसमें ऊंची दर वाला कर भी सम्मिलित है, उपभोक्ता भड़क उठें। धारा 8 की उपधारा (5) का ध्यान रखना भी आवश्यक है। यह उपधारा धारा 8 में अन्तर्विष्ट किसी बात के होने पर भी, अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य पर अधिरोपित विक्रय कर का लोकहित में अवित्यजन करने के लिए या विक्रय कर का अधिरोपण निम्नतर दर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से करने के लिए राज्य सरकार को प्राधिकृत करती है। यह स्पष्ट है कि विधानमंडल का विचार है कि आर्थिक शक्तियों को ध्यान में रखते हुए दरों की लोच को बनाए रखा जाए।

एक ही वस्तु के विक्रय पर यदि समयानुसार परिवर्तनशील दर से कर लगाया गया है तो और बातों की उपेक्षा करके इसे इस प्रकार नहीं समझा जा सकता है कि एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच विभेद करने के उद्देश्य से ही ऐसा किया गया है। जो संविधान मूलतः बनाया गया था उसके अधीन विक्रय कर से प्राप्त होने वाला राजस्व राज्यों के लिए आरक्षित था। किन्तु चूंकि कराधान शक्ति का प्रयोग राज्यों द्वारा इस प्रकार किया जा सकता था जो सामान्यतः लोकहित के प्रतिकूल हो इसलिए जो संव्यवहार अन्तरराज्यिक प्रकार के थे उनके प्रसंग में कराधान शक्ति को निर्बन्धित करना आवश्यक समझा गया। अनुच्छेद 286 का संशोधन, सेलस टैक्स वैलिडेशन ऐक्ट, 1956 तथा केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 का अधिनियमन, जैसे सभी विधानों का आशय दो प्रयोजनों को पूरा करना था एक तो राज्यों के लिए विक्रय कर को राजस्व के स्रोत के रूप में बनाए रखना और दूसरे अन्तरराज्यिक व्यापार के अनुक्रम में होने वाले संव्यवहारों पर ऐसे बंधन लगाने से राज्यों को रोकना जिनसे वस्तुएं असम्यकतः महंगी हो सकती हों और व्यापार के अबाध प्रवाह के लिए उनसे अवरोध पैदा हो सकता हो। संवैधानिक उपबन्धों का, कदाचित चक्करदार रास्ते से पड़ने वाला अर्थात् विक्रय कर को राज्यों के लिए राजस्व के रूप में बनाए रखने वाला प्रभाव तो फिर भी स्पष्ट है। केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम का अधिनियमन तो संघ संसद् के प्राधिकारी के अधीन किया गया है किन्तु कर का संग्रहण राज्य की मार्फत किया जाता है। विक्रय कर का उद्ग्रहण अन्ततोगत्वा राज्यों के फायदे के लिए किया जाता है और कानूनी तरह से विक्रय कर राज्यों के लिए ही समनुदेशित किया गया है। यह बात संविधान (छठा) संशोधन अधिनियम, 1956 द्वारा अनुच्छेद 269 में किए गए संशोधन से और केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम की धारा 9 के खंड (1) और खंड (4) के अधिनियमन से भी स्पष्ट है। केन्द्रीय सरकार की ओर से उद्गृहीत और केन्द्रीय सरकार के नाम से संगृहीत किए गए जाने पर भी केन्द्रीय विक्रय कर राज्यों के फायदे के लिए अधिरोपित विक्रय कर उद्ग्रहण का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ही एक भाग है। अन्तरराज्यिक संव्यवहारों में किसी वस्तु के बारे में विक्रय कर उद्गृहीत करने का काम राज्यों पर छोड़ देने का अर्थ यह नहीं है कि कोई विभेद किया गया है और न विक्रय के संव्यवहारों पर केन्द्रीय विक्रय कर पहले ही उपवर्णित परिसीमा के अध्यधीन राज्य में लागू दरों के अनुसार उद्गृहीत करने के लिए उन राज्यों को, जहां से कि वस्तुओं का संचलन आरंभ हुआ हो, प्राधिकृत करने का, हमारी समझ से, यह अर्थ समझा जा सकता है कि कोई विभेद किया जा रहा है।"

20. **ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्युफैक्चरिंग (विविंग) कम्पनी लिमिटेड बनाम विक्रय कर सहायक आयुक्त और अन्य**[1] के मामले में इस न्यायालय ने इस बात पर विचार किया था कि क्या अधिनियम की धारा 8(2) (ख) अत्यधिक प्रत्यायोजन के दोष से पीड़ित थी। धारा 8(2) (ख) के तात्विक भाग में, जैसा कि यह तब था, इस बात का उपबन्ध था कि किसी व्यवहारी द्वारा उसके विक्रय आवर्त पर संदेय कर, जहां तक कि इसका संबंध उसकी उपधारा (1) के भीतर न आने वाले अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य के क्रम में माल के विक्रय से था और ऐसे माल के बारे में जो घोषित माल से भिन्न थे, 10 प्रतिशत की दर पर, या समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के विक्रय या क्रय को लागू होने वाली दर पर, जो भी ऊंची हो, प्रगणित किया जाना चाहिए। इस उपबन्ध का अर्थ यह था कि जब कि प्रश्नगत माल के विक्रय पर शोध्य कर विक्रय कर 10 प्रतिशत से कम नहीं हो सकता था, यह उससे कुछ ऊंचा हो सकता था जैसा कि राज्य के विधानमण्डल द्वारा उक्त माल के विक्रयों या क्रयों के अन्तरराज्यिक संव्यवहारों के सम्बन्ध में विनिश्चित किया जाए। उपरोक्त मामले में दो निर्णय दिए गए थे। दोनों में आक्षेपित उपबन्ध की विधिमान्यता को पुष्ट किया गया था।

21. न्यायाधिपति खन्ना द्वारा दिए गए बहुमत निर्णय में यह दर्शाया गया था कि उपबन्ध के पीछे विधायी नीति थी अर्थात् कि प्रश्नगत माल पर विक्रय कर की दर 10 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए, किन्तु किसी भी दशा में यह उतनी होनी चाहिए जितना कि उक्त माल के लिए स्थानीय विक्रय कर हो, तथापि, न्यायाधिपति खन्ना ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस दृष्टिकोण को स्वीकार करना संभव नहीं था कि विधानमण्डल केवल इसलिए अपने अनिवार्य विधायी कर्त्तव्य का अधित्याग कर देगा क्योंकि यह अन्य

---

[1] [1974] 1 उम० नि० प० 1427=[1974] 2 एस० सी० आर० 879.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राधिकार को विधायी शक्ति प्रत्यायोजित करने वाली विधि को सदैव निरसित कर सकता था। तथापि, न्यायाधिपति मैथ्यू द्वारा अभिव्यक्त अल्पमत निर्णय उपरोक्त प्रश्न पर न्यायाधिपति खन्ना से भिन्न था, किन्तु आक्षेप उपबन्ध की विधिमान्यता पर वह बहुमत के निष्कर्ष के साथ सहमत था। उपरोक्त विनिश्चय का पठन यह दर्शाता है कि विधायी शक्ति के विधिमान्य प्रत्यायोजन के प्रश्न की इस न्यायालय द्वारा **एन० के० पपीया एंड संस बनाम उत्पाद-शुल्क आयुक्त और एक अन्य**[1] के मामले में इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चय के दृष्टिकोण से और परीक्षा किए जाने की अपेक्षा है। इस पर भी जहां तक की प्रस्तुत मामले का सम्बन्ध है, दो दृष्टिकोणों में से किसी एक के दृष्टिकोण से भी इस पर निर्णय करते समय यह अभिनिर्धारित करना होगा कि अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) में अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष केवल इसलिए नहीं है क्योंकि राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों में शास्तियों से सम्बन्धित उपबन्ध अधिनियम के प्रयोजनों के लिए स्वीकार किए जाते हैं।

22. यह बात सत्य हो सकती है कि शास्तियों की दरों के अधिरोपण की परिस्थितियां एक राज्य से दूसरे राज्य से भिन्न हो सकती हैं, किन्तु शास्तियों से सम्बन्धित मामलों पर विधायी उपबन्ध बनाने की शक्ति विभिन्न आर्थिक पहलुओं द्वारा सीमित है और यह नहीं कहा जा सकता कि संसद् ने वस्तुतः राज्य विधानमण्डलों को अपना विधायी निर्णय अभ्यर्पित कर दिया है। शास्तियां उद्ग्रहीत करने के मामले में संसद् द्वारा स्वीकृत स्पष्ट विधायी नीति है और वह यह है कि अधिनियम के अधीन संदेय शास्तियां वे ही होनी चाहिए जैसा कि प्रत्येक राज्य की साधारण विक्रय कर विधि के अधीन संदेय शास्तियां होती हैं। यदि शास्तियों की दरें युक्तियुक्त सीमाओं से बढ़ जाती हैं तो राज्य जो अधिनियम के अधीन संगृहीत कर का लाभ उठाते हैं, स्वयं नुकसान उठाते हैं। अतः अयुक्तियुक्त उद्ग्रहण का अर्थ सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को मारने के समान होगा। व्यापार तुरन्त ऐसे राज्य के बाहर के क्षेत्रों को स्थानान्तरित हो जाएगा जो उच्च दर पर करों और शास्तियों का अवलम्ब लेते हैं। इस क्षेत्र में जो आर्थिक और राजनैतिक पहलू प्रवृत्त हैं वे इतने शक्तिशाली हैं कि राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाए जाने वाले शास्तियों के सम्बन्ध में उपबन्ध युक्तियुक्त ही होंगे। चूंकि वे राज्य अधिनियम के अधीन भी कर के उद्ग्रहण को प्रभावित करेंगे। स्वयं शास्तियों

[1] [1975] 3 उम० नि० प० 10=[1975] 3 एस० सी० आर० 607.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का दाण्डिक स्वरूप ऐसी अधिकतम सीमाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त मार्गदर्शन है जिस तक की शास्तियां उद्गृहीत की जा सकती हैं। कोई भी शास्ति पूर्णतया विधि के अतिक्रमण की हद तक पूर्णतया अनुपाती नहीं होगी। फिर भी, संसद को स्वयं अपनी विधि को संशोधित करने की शक्ति है अर्थात् अधिनियम को यदि उसे यह पता चलता है कि किसी राज्य विधि में शास्तियों से सम्बन्धित उपबन्ध लोक हित की सीमा को पार कर गए हैं। यह बात यहां पर ध्यान देने की है कि **एन० के० पपीया एंड संस**[1] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रत्यायोजित विधान को स्वयं अपनी विधायी इच्छा के अनुरूप लाने के लिए स्वयं अपनी विधि को निरसित या उपांतरित करने की शक्ति का अस्तित्व प्रतिनियोजिती द्वारा विधायी शक्ति के दुष्प्रयोग पर प्रभावी अंकुश माना जाना चाहिए। राज्यों की साधारण विक्रय कर विधियों द्वारा शास्तियों के उद्ग्रहण के द्वारा सृजित स्थिति में सुधार करने की संसद् की शक्ति जो उसकी स्वयं पसंद के अनुरूप नहीं है, इस आलोचना का उत्तर भी है कि संसद ने अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) को अधिनियमित करने में अपने आपको समाप्त कर दिया है। जहां तक कि ऐसी शक्ति सही है और उसका प्रयोग उस समय किया जा सकता है जब कि संसद् मामले को स्वयं अपने हाथों में लेना चाहती है तब संसद् की विधायी शक्ति को पूर्णतया मिटाया जा सकता है उपरोक्त दृष्टिकोण कोफजगनबाम एंड हेंक्स द्वारा लिखित "आस्ट्रेलियन कांस्टिट्यूशनल ला" (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ 202 पर निम्नलिखित उद्ग्रहण से समर्थन मिलता है—

> "3. 009·········संसद राज्य सत्ता या राज्य सत्ता के किसी कर्मचारी को करों के संदाय की मांग करने की शक्ति से जिसमें कराधान की दर नियत करने की शक्ति भी सम्मिलित है प्रत्यायोजित कर सकती है। स्टेट ट्रांसपोर्ट फैसिलिटीज ऐक्ट, 1947 (पुराना) और स्टेट ट्रांसपोर्ट ऐक्ट, 1960 (पुराना) के उपबंधों के द्वारा इसके बारे में स्पष्ट दृष्टांत दिए गए हैं जो यातायात के लिए आयुक्त को यात्रियों और समान के परिवहन के लिए सेवाओं की अनुमति देने के लिए विस्तृत शक्तियां और प्रत्येक अनुज्ञप्तिधारी द्वारा संदत्त किए जाने वाला अनुज्ञप्ति शुल्क की रकम नियत करने की शक्ति देते हैं। इन उपबंधों की विधिमान्यता को कोब एण्ड कम्पनी लिमिटेड बनाम क्राप, (1967) 1 अपील केसेज 141 के मामले

---

[1] [1975] 3 उम० नि० प० 10=[1975] 3 एस० सी० आर० 607.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में प्रीवी कौंसिल द्वारा पुष्ट किया गया था जिसमें इस दलील को नामंजूर कर दिया गया था कि क्वीन्सलैंड की संसद् को इस प्रकार से उसकी कराधान शक्ति को उत्सादित करने की शक्ति नहीं थी।

माननीय न्यायाधीशों के दृष्टिकोण से क्वीन्सलैंड विधान-मंडल ट्रांसपोर्ट ऐक्ट की शर्तों के बारे में विधायन करने के बारे में पूर्णतया समर्पित था जिन पर अब विचार किया जा रहा है। उन्होंने अपनी हैसियत को सही बनाए रखा और यातायात के लिए आयुक्त का उस पर पूर्ण नियंत्रण रखा जहां तक कि किसी समय वे विधायन को निरसित कर सकते थे और ऐसे प्राधिकार और विवेकाधिकार को वापस ले सकते थे जो उनमें निहित था इस बात का दावा नहीं किया जा सकता कि संसद् की अनुमति के बिना या संसदीय समर्थन के बिना परमाधिकार के निमित्त किसी धन को उद्गृहीत किया जा सकता था।

विधानमंडल किसी अभिकर्ता या किसी अधीनस्थ अभिकरण या किसी तन्त्र को जिसे वह उद्देश्यों और प्रयोजनों के चलाने के लिए समुचित समझता हो प्रयोग करने के हकदार थे जो उनके ध्यान में हो और जिसका उन्होंने पदाभिधान किया हो। वे यातायात के लिए आयुक्त को अनुज्ञप्ति और परमिट शुल्क नियत करने और वसूल करने के लिए अपने साधन के रूप में प्रयोग करने की हकदार थी। (1967) 1 अपील केसेज पृष्ठ 156-157।"

23. हम यह महसूस करते हैं कि ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यु-फैक्चरिंग विविंग कम्पनी के मामले[1] में इस इस नियम को लागू करने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि धारा 9 की उपधारा (2क) में उस उपबंध के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष है।

24. अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) को दिए जाने वाले भूतलक्षी प्रभाव के कारण जहां तक कि संशोधन अधिनियम की धारा 9 को अधिनियमित करने का संबंध है, संसद् के संविधान के अनुच्छेद 20(1) का उल्लंघन किया है। खेमका के मामले[2] में बहुमत के निर्णय द्वारा यथालक्षित अधिनियम में कमी

[1] [1974] 1 उम० नि० प० 1427=[1974] 2 एस० सी० आर० 879.
[2] [1975] 3 एस० सी० आर० 753.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को पूरा करने के लिए विधिमान्यकरण उपबंध को जो संशोधन अधिनियम की धारा 9 में अन्तर्विष्ट हैं में सारत: इस बात का उपबंध है कि जहां तक कि शास्तियों का संबंध है, धारा 9 की उपधारा (2क) को 5 जनवरी, 1957 से प्रारम्भ होने वाली कालावधि के सम्बन्ध में प्रभावी समझा जाना चाहिए और उस तारीख को समाप्त होने वाला समझा जाना चाहिए जो संशोधन अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से अव्यवहित पूर्व की तारीख थी। यह बात अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) और संशोधन अधिनियम की धारा 9(1) के बीच भाषा की समानता से स्पष्ट है। संशोधन अधिनियम की धारा 9(2) में भी संशोधन अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व पूरी की गई शास्तियों के उद्ग्रहण को विधिमान्य करने वाले साधारण उपबंध थे जिनमें 5 जनवरी, 1957, से प्रारम्भ होने वाली कालावधि के सम्बन्ध में शास्तियों के उद्ग्रहण के लिए कार्यवाहियों को जारी रखा गया था। प्रस्तुत मामले में यह बात ध्यान देने की है कि राज्यों की सभी साधारण विक्रय कर विधियों में ऐसे उपबंध थे जिनमें प्रत्येक व्यवहारी से यह अपेक्षा की गई थी कि वे कानूनी अभ्युपेक्षाओं का अनुपालन करे जैसा कि विवरणियां भरना, विनिर्दिष्ट समय के भीतर शोध्य कर का संदाय करना और वे अधिनियम की धारा 9(2) के कारण अधिनियम के अधीन संव्यवहारों को लागू थे। ऐसे कानूनी उपबंधों के होते हुए भी बहुत से संव्यवहारी अपने कानूनी कर्त्तव्यों को करने में असफल रहे। वे सुसंगत कानूनी उपबंधों में उल्लिखित शास्तियों के दायित्वाधीन होते यदि उनके द्वारा किए गए व्यतिक्रम वे होते जो उक्त कानूनी उपबंधों के अधीन किए गए थे। अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2) की भाषा के आधार बहुत से राज्यों में क्रमिक साधारण विक्रय कर विधियों में शास्तियों से संबन्धित उपबंध के अनुसरण में शास्तियां उद्ग्रहण करने के लिए कार्यवाहियां अधिनियम के अधीन ऐसे व्यतिक्रमियों के विरुद्ध शुरू की गई थी और ऐसे मामलों में कार्यवाहियां पूरी कर ली गई थीं और शास्तियां भी वसूल कर ली गई थीं। कुछ उच्च न्यायालयों ने भी यह दृष्टिकोण अपनाया कि ऐसी शास्तियां विधिमान्य रूप से उद्ग्रहणीय थीं। किन्तु अन्ततः इस न्यायालय ने तीन में से दो के बहुमत से खेमका के मामले[1] में यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि इस अधिनियम में कोई ऐसा स्पष्ट उपबंध नहीं है जो ऐसी शास्तियों के उद्ग्रहण को अनुज्ञात करता हो। शास्तियों के अवधारण और वसूली के सम्बन्ध में कार्यवाहियां विधिमान्य नहीं थीं। इसलिए संशोधन अधिनियम राज्यों में

[1] [1975] 3 एस० सी० आर० 753.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रवृत्त साधारण विक्रय कर विधियों के अनुसार शास्तियों के उद्ग्रहण को भूतलक्षी प्रभाव से अनुज्ञेय बनाने के लिए और ऐसी सब पूर्व कार्यवाहियों को विधिमान्य करने लिए पारित किया गया था। संविधान का अनुच्छेद 20 इस प्रकार पठित है—

"20(1) कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए सिद्धदोष नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने अपराधारोपित क्रिया करने के समय किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण न किया हो, और न वह उससे भी दण्ड का पात्र होगा जो उस अपराध के करने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन दिया जा सकता था।

(2) कोई व्यक्ति एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित न किया जाएगा।

(3) किसी अपराध में अभियुक्त कोई व्यक्ति स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य न किया जाएगा।"

25. पिटीशनरों की दलील यह है कि कोई कार्य या लोप जिसे अधिनियम के अधीन व्यतिक्रम समझा जा सकता है, जिसके लिए शास्ति उद्ग्रहणीय है, अपराध है, कि ऐसा कार्य अथवा लोप अपराध नहीं था और उस समय जब कि यह किया गया था प्रवृत्त विधि के अधीन कोई शास्ति संदेय नहीं थी और इसलिए उन्हें विधि के अधीन शास्ति उद्गृहीत करके जिसे भूतलक्षी प्रभाव दिया गया हो दण्डादिष्ट नहीं किया जा सकता। मुख्य रूप से उन्होंने अपने पक्ष कथन के समर्थन में अनुच्छेद 20(1) का अवलंब लिया। अनुच्छेद 20(1) संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के अनुच्छेद 1 की धारा 9(3) के आधार पर प्रतिरूपित किया गया है जो इस प्रकार पठित है "बदनामी या भूतलक्षी प्रभाव का कोई विधेयक पारित नहीं किया जाएगा।" इस खंड के बारे में यह समझा गया है कि संयुक्त राज्य अमरीका में अपराधों से सम्बन्धित विधान पर भी यह लागू है। (देखिए कलैंड बनाम बुल[1]) अपराध अभिव्यक्ति की संविधान में परिभाषा नहीं की गई है। संविधान का अनुच्छेद 367 इस प्रकार कथन करता है कि जब तक कि शब्दों के संदर्भ में अन्यथा उपबंधित न हो, जिनकी संविधान में परिभाषा नहीं की गई है साधारण खंड अधिनियम, 1897 में समनुदेशित अर्थ दिया जाएगा। साधारण खंड अधिनियम का धारा 3(38) में 'अपराध' की परिभाषा इस प्रकार दी गई है कि यह तत्प्रवृत्त किसी विधि द्वारा दण्डनीय

1 3 डाल 386 [1798].

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कोई कार्य अथवा लोप है। हमारे अनुच्छेद 20 का उपांत-टिप्पण "अपराधों के लिए दोषसिद्धि के विषय में संरक्षण" है। उपांत-टिप्पण में "अपराधों" और "दोषसिद्धि" शब्दों का होना अनुच्छेद 20 के खंड (1) में अपराध के लिए "सिद्धदोष" "अपराधारोपित किया" और "अपराध करने" अनुच्छेद 20 के खंड (2) में "अभियोजित और दंडित" और अनुच्छेद 20 के खंड (3) में किसी अपराध में अभियुक्त "स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य किया जाना" शब्द स्पष्ट रूप से इस बात का सुझाव देते हैं कि अनुच्छेद 20 सांविधानिक संरक्षण से संबंधित है जो उन लोगों को दिया गया है जिन्हें दांडिक न्यायालय के समक्ष अपराध के लिए आरोपित किया गया है। [देखिए एच० एम० सीरवई द्वारा लिखित कांस्टिट्यूशनल लॉ आफ इण्डिया (तृतीय संस्करण) भाग 1, पृष्ठ 759]। "शास्ति" शब्द का बहुत महत्व है। कभी-कभी इसका अर्थ सिविल कार्यवाही में भी दांडिक अभ्युपाय के रूप में किसी रकम को वसूल करना होता है। कोई बलाधग्रहण जो प्रक्रियात्मक स्वरूप का नहीं होता उसे भी शास्ति कहा जाता है चाहे यह ऐसे किसी आदेश का अनुसरण में वसूल न किया जा रहा हो, जिससे सम्बन्धित व्यक्ति को किसी अपराध का दोषी पाया जाता है। अनुच्छेद 20(1) में "शास्ति" शब्द का प्रयोग संक्षिप्त भाव में किया है जिसका अर्थ ऐसे संदाय से है जो किया जाता है या स्वतंत्रता का अपवंचन है जो ऐसे किसी निष्कर्ष के परिणामस्वरूप भुगतना पड़ता है कि किसी अपराध का दोषी व्यक्ति आरोप का दोषी है।

26. **मकबूल हुसैन बनाम मुम्बई राज्य**[1] के मामले में विचार के लिए प्रश्न यह था कि क्या जब सीमा शुल्क प्राधिकारियों ने समुद्र सीमा शुल्क अधिनियम के अधीन कतिपय माल का अधिहरण किया था, अभियोजन किया गया था और अधिहरण का आदेश अनुच्छेद 20 के खंड (2) के अर्थान्तर्गत दंड गठित करता है। उक्त अभिवाक् को नकारते हुए इस न्यायालय ने पृष्ठ 738-739 पर यह मत व्यक्त किया—

> "अनुच्छेद 20 के शब्द और उसमें उपयुक्त 'दोषसिद्ध', 'अपराध के रूप में आरोपित कार्य करना', 'शास्ति के अध्यधीन होना', 'अपराध करना', 'अभियोजित और दंडित', 'किसी अपराध का दोषी' शब्द इस बात को उपदर्शित करते हैं कि उसमें अनुध्यात कार्यवाहियां किसी न्यायालय या न्यायिक अधिकरण के

[1] [1953] 3 एल० सी० आर० 730.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समक्ष दाण्डिक कार्यवाहियों के स्वरूप की है और इस संदर्भ में अभियोजन का अर्थ किसी न्यायालय या न्यायिक अधिकरण के समक्ष ऐसे किसी कानून में विहित प्रक्रिया के अनुसार दांडिक स्वरूप की कार्यवाहियां शुरू करना या प्रारम्भ करना होगा जो अपराध को सृजित करते हैं और प्रक्रिया को विनियमित करते हैं।"

27. भूतलक्षी प्रभाव से प्रवृत्त "पानी के गैर प्राधिकृत प्रयोग" के लिए खर्चों का उद्ग्रहण ज्वालाराम बनाम पेप्सू राज्य[1] के मामले में अनुच्छेद 20(1) का अतिक्रमण करने वाला नहीं माना गया था। इसी प्रकार से पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम एस० के० घोष[2] के मामले में दांडिक विधिक संशोधन अध्यादेश, 1944 (1944 का 38) की धारा 13(3) के अधीन उपबंधित समपहरण को संविधान के अनुच्छेद 20 (1) के अर्थान्तर्गत शास्ति नहीं माना गया था और उस संदर्भ में इस न्यायालय ने पृष्ठ 130-131 पर इस प्रकार से मत व्यक्त किया था—

"अनुच्छेद 20(1) ऐसे व्यक्तियों की ऐसे अपराधों के लिए दोषसिद्धि और शास्तियों के उनके अधीनीकरण के बारे में चर्चा करता है। इसमें प्रथमतः यह उपबंधित है कि 'कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए सिद्धदोष नहीं ठहराया जाएगा जब तक कि उसने अपराधारोपित क्रिया करने के समय किसी विधि का अतिक्रमण न किया हो। द्वितीयतः इसमें इस बात का उपबंध है कि कोई व्यक्ति 'उससे अधिक दण्ड का पात्र न होगा जो उस अपराध के करने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन दिया जा सकता था।' इसलिए स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 20 अपराधों के लिए दण्ड के बारे में है और उस में दो रक्षोपाय दिए गए हैं अर्थात् कि (1) कोई भी व्यक्ति किसी अपराध के लिए सिद्धदोष नहीं ठहराया जाएगा जब तक कि उसने अपराधारोपित क्रिया करने के समय किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण न किया हो और (2) कि कोई व्यक्ति उससे अधिक दण्ड का पात्र नहीं होगा जो उस अपराध के करने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन दिया जा सकता था। धारा 13(3) के अधीन समपहरण के उपबंध का किसी व्यक्ति पर अपराध के लिए किसी शास्ति को अधिरोपित करने का कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि धारा 13(3) में

---

[1] [1962] 2 एस० सी० आर० 503.

[2] [1963] 2 एस० सी० आर० 111.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपबंधित समपहरण वास्तव में किसी अपराध के करने के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति को शास्ति था तो हमें उसका पता करना चाहिए था जो 1943 के अध्यादेश में उपबंधित है और समपहरण की शास्ति अपराधी का विचारण करने वाले दांडिक न्यायालय द्वारा अधिरोपित की जा सकती थी ।"

28. इसके पश्चात् औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947, की धारा 25चचच(1) को पुष्ट करते हुए (जो 6 जून, 1957 से प्रवृत्त हुई थी) जिसमें ऐसे कर्मकारों को प्रतिकर देने का निदेश दिया था जिनकी 28 फरवरी, 1956 को या उसके पश्चात् छंटनी की गई थी इस न्यायालय ने मैसर्स हती सिंह मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य[1] के मामले में पृष्ठ 536 और 545 पर इस प्रकार से मत व्यक्त किया था—

"ऐसी विधि जो किसी संव्यवहार के सम्बन्ध में कोई सिविल दायित्व सृजित करती है जो उस तारीख से पहले किया गया हो जिसको कि अधिनियम अधिनियमित किया गया था, स्वतः अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित नहीं करती ।···(पृष्ठ 536)

"यदि कानून प्रतिषेध या नियंत्रण के उल्लंघन के लिए कोई दांडिक दायित्व नियत करता है जो ऐसे संव्यवहारों को लागू किया गया है जो इसके अधिनियमन की तारीख से पूर्व किया गया था, अनुच्छेद 20(1) का संरक्षण लागू होगा ।···धारा 33(ग) के द्वारा प्रतिकर संदाय करने का दायित्व प्रपीड़क कार्यवाही के द्वारा प्रवृत्त किया जा सकता है, किन्तु फिर भी यह संविधान के अनुच्छेद 20(1) का अतिलंघन नहीं है । निस्संदेह प्रतिकर संदाय करने के दायित्व को उन्मोचित करने के लिए असफलता के लिए किसी व्यक्ति को रकम की वसूली का उपबंध करने वाली विधि के अर्थात् बाम्बे लैंड रेवेन्यू कोड, अधीन कारावास दिया जा सकता है, किन्तु जब तक कि कानून स्पष्ट रूप से ऐसा उपबन्ध न करता हो सिविल दायित्व का उन्मोचन न करना अपराध नहीं है । अनुच्छेद 20(1) का संरक्षण ऐसे किसी कार्य के लिए दण्ड के विरुद्ध ही उपलभ्य है जिसे अपराध मान लिया गया है और उस समय जो अपराध नहीं था जब किया गया था ।" (पृष्ठ 545)

---

[1] [1960] 3 एस० सी० आर० 528.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

29. पिटीशनरों ने अपनी दलील के समर्थन में कतिपय विनिश्चयों का अवलंब लिया है। उनमें से कुछ पर हम चर्चा करेंगे। यह बात सही है कि राय बहादुर हरदत्त राय मोतीलाल जूट मिल्स बनाम बिहार राज्य और एक अन्य[1] के मामले में पटना उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि बिहार विक्रय कर अधिनियम, 1947 की धारा 14 (क) का 1955 के बिहार अधिनियम सं० 4 द्वारा संशोधन, जहां तक कि इसने धारा 14 (क) के उपबन्धों के उल्लंघन में व्यवहारियों द्वारा पूर्व संगृहीत रकम के समपहरण की शास्ति के अधिरोपण को प्राधिकृत कर दिया था, उस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए किसी दंड पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना संविधान के अनुच्छेद 20 (1) का अतिक्रामी था। हमने उस विनिश्चय को पढ़ा है। हमें उच्च न्यायालय द्वारा अपने दृष्टिकोण के समर्थन में दिया गया कोई समर्थनीय कारण दिखाई नहीं देता। यहां पर यह कहा जा सकता है कि बिहार राज्य बनाम राय बहादुर हरदत्त राय मोतीलाल जूट मिल्स और एक अन्य[2] के मामले में इस न्यायालय के समक्ष उस विनिश्चय के विरुद्ध फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय के निर्णय को इस आधार पर पुष्ट कर दिया गया था कि अधिहरण की शास्ति उस मामले के तथ्यों पर अधिरोपणीय नहीं थी। किन्तु मामले को अनुच्छेद 20 (1) के लागू होने के प्रश्न पर इस न्यायालय ने इस आधार पर कोई राय अभिव्यक्त करने से मना कर दिया कि यह पूर्णतया एक शैक्षिक विवाद्यक था। शिव भगवान गोयनका बनाम कमर्शियल टैक्स आफिसर और अन्य[3] के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि बंगाल फाइनैंस (सेल्स टैक्स) ऐक्ट, 1941 के संशोधन का भूतलक्षी प्रवर्तन, जिसमें कतिपय संव्यवहारों के सम्बन्ध में अप्रत्याशित दायित्व को अधिरोपित कर दिया था, जो जब कि वे किए गए थे, उस अधिनियम के अधीन किसी प्रभार या दायित्व के अध्यधीन नहीं थे, संविधान के अनुच्छेद 29 (1) के प्रतिकूल था। उस मामले में तथ्य ये थे कि भूतलक्षी प्रभाव से "कारबार" शब्द की परिभाषा के उपान्तरण के परिणामस्वरूप निर्धारिती कतिपय पुरानी और उपेक्षित मशीनों तथा उपस्करों के विक्रयों के संबंध में विक्रय आवर्त पर कर संदाय करने के दायित्वाधीन हो गया था। निर्धारिती को किसी अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया गया था या ऐसे संशोधन के परिणामस्वरूप

[1] [1956] 7 एस० टी० सी० 609.
[2] ए० आई० आर० 1960 एस० सी० 378.
[3] [1973] 32 एस० टी० सी० 368.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दांडिक न्यायालय द्वारा दंडित नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय के लिए यह अभिनिर्धारित करने की छूट थी कि यदि ऐसे किसी अपराध के लिए ऐसा अभियोजन किया गया था तो यह अनुच्छेद 20 (1) का अतिक्रामी था। किन्तु जहां तक कि कर के वसूल करने का सम्बन्ध था, अनुच्छेद 20 (1) वस्तुतः लागू नहीं होता। इसलिए, उस मामले को विनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 20 (1) का निर्देश अनावश्यक था। धनकर आयुक्त, अमृतसर बनाम **सुरेश सेठ**[1] के मामले में इस न्यायालय द्वारा इस बारे में पृष्ठ 430 पर अभिव्यक्त यह मत पिटीशनरों की स्पष्टतया कोई सहायता नहीं करते—

> "अपराधों से सम्बन्धित कार्यों के मामले में अधिरोपित किए जाने वाला दंड हमारे संविधान के अधीन संविधान के अनुच्छेद 20 (1) के कारण किसी पश्चात्वर्ती विधान द्वारा नहीं बढ़ाया जा सकता जिसमें इस बात की घोषणा की गई है कि कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए सिद्धदोष नहीं ठहराया जाएगा जब तक कि उसने अपराधारोपित क्रिया करने के समय किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण न किया हो। तथापि दूसरे मामलों में यद्यपि दायित्व को बढ़ाया जा सकता है इसे केवल पश्चात्वर्ती विधि द्वारा किया जा सकता है (वस्तुतः इसे संविधान के अधीन होना चाहिए) जो या तो स्पष्ट शब्दों में या आवश्यक विवक्षा के द्वारा ऐसी बढ़ोतरी का उपबन्ध करती हो।"

30. दूसरी ओर इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने **रघुनंदन प्रसाद मोहन लाल बनाम आयकर अपील अधिकरण दिल्ली खंड पीठ और अन्य**[2] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि संविधान का अनुच्छेद 20 दांडिक कार्यवाहियों के स्वरूप में कार्यवाहियों का अनुध्यान करता है और यह आयकर अधिनियम, 1961 के अधीन शास्तिक कार्यवाहियों को लागू नहीं होता जिसे सिविल मंजूरी प्राप्त है और वे राजस्व की प्रकृति के हैं। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने **सेंट्रल इंडिया मोटर्स बनाम सी० एल० शर्मा, विक्रय कर सहायक आयुक्त, इन्दौर क्षेत्र, इन्दौर और एक अन्य**[3] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 20 (1) मध्य प्रदेश साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1958 के अधीन भूतलक्षी प्रभाव से किए गए शास्ति के उद्ग्रहण के मामले को लागू नहीं होता।

---

[1] [1981] 3 एस० सी० आर० 419.

[2] [1970] 75 आई० टी० आर० 741.

[3] [1980] 46 एस० टी० 69.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

31. हमारे समक्ष उठाए गए प्रश्नों पर उत्सुकतापूर्वक विचार करने के पश्चात् हम यह समझते हैं कि अनुच्छेद 20 (1) में प्रयुक्त "शास्ति" शब्द का अर्थान्वयन कानूनी उपबन्धों के उल्लंघन के लिए विभागीय प्राधिकारियों द्वारा विक्रय कर विधियों के अधीन उद्गृहीत "शास्ति" के रूप में नहीं किया जा सकता। विक्रय कर प्राधिकारियों द्वारा अधिरोपित शास्ति केवल एक सिविल दायित्व है यद्यपि उसका स्वरूप दांडिक है। यहां पर इस बात पर ध्यान देना सुसंगत होगा कि अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2क) विनिर्दिष्ट रूप से कतिपय कार्यों और लोपों को निर्दिष्ट करती है जो ऐसे अपराध हैं जिनके लिए दांडिक अभियोजन किया जाएगा और अपराधों से सम्बन्धित उपबन्धों को अधिनियम की धारा 9 द्वारा भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया गया है। इसलिए संविधान के अनुच्छेद 20 (1) पर आधारित दलील नामंजूर की जाती है।

32. विचार के लिए अगला प्रश्न यह है कि क्या भूतलक्षी प्रभाव से शास्ति का अधिरोपण और संग्रहण, संविधान के अनुच्छेद 19 (1)(च) और (छ) के अधीन गारंटीकृत कारबार चलाने और सम्पत्ति धारण करने के पिटीशनरों के मूल अधिकार पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करना है। हम पहले ही ऊपर उन परिस्थितियों को उपदर्शित कर चुके हैं जिनके अधीन भूतलक्षी प्रभाव से शास्तियां उद्गृहीत करना और शास्तियों को उद्गृहीत करने और उनको वसूल करने से सम्बन्धित सभी कार्यवाहियों को विधिमान्य करना आवश्यक हो गया है। भूतलक्षी प्रभाव से किसी कर या शुल्क के उद्ग्रहण को विधिमान्य करने के लिए विधि बनाने की विधानमंडल की शक्ति के विस्तार पर इस न्यायालय द्वारा **छोटाभाई जेठाभाई पटेल एण्ड कंपनी बनाम भारत संघ और एक अन्य**[1] के मामले में विचार किया गया था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि संसद् को अपने विधायी क्षेत्र के भीतर कार्य करते हुए यह शक्ति प्राप्त थी और भविष्यलक्षी और भूतलक्षी दोनों प्रकार से विधि के द्वारा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 के अधीन उत्पाद शुल्क उद्गृहीत कर सकती थी चाहे यह सिद्ध हो गया हो कि विधि को भूतलक्षी प्रभाव दिए जाने के कारण निर्धारिती उत्पाद शुल्क के क्रेताओं पर संक्रान्त करने में असमर्थ थे। कुछ अमरीका के विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् न्यायाधिपति अय्यंगर ने पृष्ठ 37 पर यह मत व्यक्त किया—

"इस प्रकार से यह देखने में आता है कि संयुक्त राज्य

[1] [1962] सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 1.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अमेरिका के अधीन ही भूतलक्षी कर की असांविधानिकता उसी बात पर आधारित है जिसे 5वें संशोधन की अनिश्चित बाह्यरेखा कहा गया है। जब कि भारतीय संविधान के अधीन वह आधार जिस पर सम्पत्ति के अधिकारों का व्यतिक्रम 'सम्यक् प्रक्रिया' के अनिश्चित नियम द्वारा नहीं परखा जाता किन्तु अनुच्छेद 19 (5) में उपवर्णित संक्षिप्त मापदण्ड द्वारा परखा जाता है। कर के अधिरोपण में मात्र भूतलक्षिता स्वतः किसी विधि को अनुच्छेद 19 (1) (च) के अधीन सम्पत्ति धारण करने का अधिकार के उसके अतिलंघन के अधार पर या अनुच्छेद 31 (1) के अधीन किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करने के आधार पर असांविधानिक नहीं कर सकता यदि दूसरी ओर, प्रश्नगत कर अधिनियमिति संघ की या किसी राज्य की विधायी क्षमता के बाहर हो, तो आवश्यक रूप से भिन्न विचार उद्भूत होते हैं। ऐसा अप्राधिकृत अधिरोपण निस्संदेह कारबार करने पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन होने के अलावा सम्पत्ति धारण करने के अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बन्धन नहीं होगा यदि प्रश्नगत कर ऐसा कर है जो किसी व्यक्ति पर उसके कारबार की कार्यवाहियों के बारे में लगाया गया है।"

33. न्यायालय राय रामकृष्ण और अन्य बनाम बिहार राज्य[1] के मामले में भारत में भूतलक्षी प्रभाव से कराधान विधियों को अधिनियमित करने के लिए विधानमंडल की शक्ति के बारे में अधिक सबल था। उसने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि उसकी अनिवार्य बातों में कराधान कानून विधानमण्डल की क्षमता के भीतर है तो यह ऐसा होना समाप्त नहीं हो जाएगा यदि उसे भूतलक्षी प्रभाव दिया जाता है। इसलिए विधि बनाने की शक्ति में सभी सुसंगत उपबन्ध जो उनसे आनुषंगिक या प्रासंगिक हैं उसकी परिधि के भीतर सम्मिलित हैं भूतलक्षी प्रभाव से शास्तियां अधिरोपित करना और व्याज अधिरोपित करने के लिए उपबन्ध और ऐसी विधियों के अधीन जिन्हें असांविधानिकता के तत्व को दूर करने के पश्चात् असांविधानिक घोषित कर दिया गया है, पूर्व कार्यवाहियों को विधिमान्य करना विधायी शक्ति के विस्तार के भीतर सम्मिलित हैं। राय रामकृष्ण और अन्य[1] के ऊपर उल्लिखित मामले में, एक बिहार अधिनियम जिसमें यात्रियों और माल पर कर उद्गृहीत किया गया था, 1950 में पारित किया गया और दिसम्बर, 1960 में इस न्यायालय द्वारा उसे असांविधानिक घोषित कर दिया गया

[1] [1964] 1 एस० सी० आर० 897.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

था। उस में सांविधानिक कमियों को दूर करने के पश्चात् उक्त उद्ग्रहण को विधिमान्य करते हुए एक अधिनियम 23 सितम्बर, 1961 को राष्ट्रपति की अनुमति से पारित किया गया था और उस अधिनियम के अधीन 1 अप्रैल, 1950 से भूतलक्षी प्रभाव दिया गया था जिस तारीख को पूर्व अधिनियम, जिसे असांविधानिक घोषित कर दिया गया था, प्रवृत्त हुआ था। विधिमान्यकरण अधिनियम के विरुद्ध दी गई सीमित चुनौती यह थी कि उसकी धारा 23 (ख) में अन्तर्विष्ट उपबन्ध, जिसमें कि इस बात का उपबन्ध था कि कोई कार्यवाही पूर्व अधिनियम के उपबन्धों के अधीन कर या शास्ति के रूप में किसी रकम के निर्धारण, संग्रहण और वसूली के लिए की गई है या किए जाने के लिए तात्पर्यित है जिसे असांविधानिक घोषित कर दिया था या 1 अप्रैल, 1950 से 31 जुलाई, 1961 की कालावधि के दौरान अर्थात्, उस तारीख तक जिसको कि अध्यादेश, जिसे प्रश्नगत विधिमान्यकरण अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, प्रवृत्त हुआ था, के अधीन बनाए गए नियम विधिमान्यकरण अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार प्रारम्भ हुए या किए गए समझे जाने चाहिएं और यदि उन्हें पहले पूरा नहीं किया गया है तो उन्हें विधिमान्यकरण अधिनियम के अनुसार जारी रखना चाहिए और पूरा करना चाहिए यह अनुच्छेद 304 (ख) और 19 (1) (च) और (छ) के विरुद्ध था। इस बारे में सदरलैंड द्वारा लिखित स्टेट्यूट्स एण्ड स्टेट्यूटरी कंस्ट्रक्शन्स" में दिए गए मत के अनुसार यह कहा गया था कि—

> "कराधान कानून भूतलक्षी हो सकते हैं यदि विधानमंडल का स्पष्टतया ऐसा आशय हो। यदि विधि का भूतलक्षी लक्ष्य मनमाना और बोझिल हो तो कानून कायम नहीं रह सकता।"

कि भूतलक्षिता का लम्बाई अर्थात् 11 वर्ष अनुच्छेद 19 (1) (च) और (छ) के अधीन गारंटीकृत अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन था इस दलील को इस न्यायालय ने रिपोर्ट के पृष्ठ 915 और 916 पर निम्न प्रकार नामंजूर कर दिया था—

> "हम यह नहीं समझते कि ऐसा यांत्रिक परीक्षण अधिनियम के भूतलक्षी प्रवर्तन की विधिमान्यता का अवधारण करने में लागू होगा। यह बात बोधगम्य है कि ऐसे मामले उद्भूत हो सकते हैं जिसमें कि काराधान या अन्य कानून के भूतलक्षी प्रवर्तन ऐसी अयुक्तियुक्तता के तत्व को पुरः स्थापित कर दें कि उसके द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिरोपित निर्बन्धन से असांविधानिकता के रूप में गम्भीर चुनौती खड़ी हो जाए किन्तु भूतलक्षी प्रवर्तन द्वारा आवर्त समय की लंबाई का मापदण्ड स्वयं में आवश्यक रूप से विनिश्चायक मापदंड नहीं हो सकता। ऐसा कानून हो सकता है जिससे भूतलक्षी प्रवर्तन में तुलनात्मक रूप से एक संक्षिप्त कालावधि सम्मिलित हो और फिर भी ऐसा सम्भव है कि उसके द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन का स्वरूप इस प्रकार का हो जिससे कि भूतलक्षी प्रवर्तन में गंभीर कमी पुरःस्थापित हो जाए। दूसरी ओर, ऐसे मामले आ सकते हैं जहां कि कानून के भूतलक्षी प्रवर्तन द्वारा आवर्त कालावधि चाहे लंबी हो ऐसी कमी पुरःस्थापित नहीं करेगी। विधिमान्यकरण अधिनियम का मामला ले लीजिए। यदि विधानमंडल द्वारा पारित किसी कानून को न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में चुनौती दी जाती है और अन्ततः उस चुनौती को कायम रखा जाता है और कानून को अभिखंडित कर दिया जाता है तो यह बात असंभव नहीं है कि न्यायिक कार्यवाहियों में काफी लंबी कालावधि लग सकती है और विधानमंडल उक्त कार्यवाहियों में पूर्व अधिनियम में अभिकथित कमी को सुधारने के लिए अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व अंतिम कार्यवाहियों की परीक्षा करने का विनिश्चय कर सकता है। ऐसे मामले में यदि न्यायिक निर्णय के घोषित किए जाने के पश्चात् विधानमंडल विधिमान्यकरण अधिनियम पारित करता है तो इसमें न्यायालय में न्यायिक कार्यवाहियों के द्वारा काफी लंबा समय लग जाता है और फिर भी यह अभिनिर्धारित करना अनुचित होगा कि चूंकि भूतलक्षी प्रवर्तन में काफी लंबी कालावधि सम्मिलित है, इसलिए उसके द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन अयुक्तियुक्त है। यही कारण है कि हम यह समझते हैं कि भूतलक्षी प्रवर्तन द्वारा आवर्त समय की लंबाई को स्वयं में विनिश्चायक मापदंड नहीं समझा जा सकता।

प्रस्तुत मामला ले लीजिए। पूर्व अधिनियम सन् 1950 में पारित किया गया था और 1 अप्रैल, 1950 से प्रवृत्त हुआ था और उसके द्वारा अधिरोपित कर तब तक संगृहीत किया जाता रहा जब तक कि दो वादों में जिनको हम पहले ही निर्दिष्ट कर चुके हैं, व्यादेश का आदेश पारित नहीं कर दिया गया। उक्त वादों को 8 मई, 1952 को खारिज किया गया था किन्तु अपीलार्थियों द्वारा की गई अपीलें 12 दिसम्बर, 1960 तक इस न्यायालय में लंबित रहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूसरे शब्दों में, सन् 1950 से सन् 1960 तक कार्यवाहियां न्यायालय में लंबित थीं जिसमें कि अधिनियम की विधिमान्यता की परीक्षा की जा रही थी और यदि विधिमान्यकरण अधिनियम को पारित करना होता तो विधानमंडल को उक्त कार्यवाहियों में इस न्यायालय के अन्तिम विनिश्चय की प्रतीक्षा करने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इस प्रकार से उक्त दो वादों के संस्थापन और इस न्यायालय द्वारा उनके अन्तिम विनिश्चय के बीच आवर्त कालावधि को अधिनियम के भूतलक्षी प्रवर्तन की युक्तियुक्तता को चुनौती देने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता।"

34. प्रस्तुत मामले में तथ्य लेशमात्र अच्छे हैं। इस मामले में 1 जनवरी, 1957 और संशोधन अधिनियम की प्रारंभ की तारीख के बीच की कालावधि के दौरान अधिनियम के अधीन संदेय कर की विधिमान्यता के बारे में कोई विवाद नहीं है। इस बात की कल्पना करनी होगी कि सभी कर व्यवहारियों द्वारा अपने उपभोक्ताओं से संगृहीत किए गए थे। इस बात के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि विधि व्यवहारियों से विनिर्दिष्ट समय के भीतर कर का संदाय करने की अपेक्षा करती है। व्यवहारियों को भी अपने-अपने राज्यों में साधारण विक्रय कर विधियों में शास्तियों से सम्बन्धित उपबन्धों का ज्ञान था। खेमका के मामले में इस न्यायालय द्वारा दर्शायी गई अधिनियम में कमी के कारण ही शास्तियां असंदेय हो गई। इस स्थिति में जहां कि संव्यवहारियों से धन का, जिसका कि सरकार को संदाय किया जाना चाहिए था, स्वयं उपभोग कर लिया और अपने कर्तव्य को करने में व्यतिक्रम किया है। यदि संसद् उन्हें भूतलक्षी प्रभाव से यथा उपबन्धित विधि के अनुसरण में शास्तियों को संदाय करने के लिए कहती है तो यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) और (छ) के अधीन गारंटीकृत अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित किया गया है चाहे भूतलक्षिता की कालावधि लगभग 19 वर्षों की हो। यहां पर संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) को निर्दिष्ट करना भी संगत होगा जिसमें इस बात का उपबन्ध है कि उसकी उपधारा (2) में अन्तर्विष्ट उपबन्ध किसी व्यक्ति को संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (1) के साथ पठित संशोधन अधिनियम द्वारा यथा संशोधित अधिनियम के अनुसरण में किसी शास्ति के अधिरोपण या संग्रहण पर अथवा उसके सम्बन्ध में किसी कार्यवाही, कार्य या बात पर आक्षेप करने या किसी प्रतिदाय का दावा करने से रोकती है। संशोधन अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (3) के स्पष्टीकरण में भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

27 फरवरी, 1975 को अर्थात् जिस तारीख को खेमका के मामले में निर्णय सुनाया गया था और संशोधन अधिनियम के प्रारंभ की तारीख तक की कालावधि के बीच की कालावधि को शास्ति उद्ग्रहण करने के किसी आदेश को प्रश्नगत करने के लिए परिसीमा की कालावधि संगणित करने का उपबन्ध है। उन कार्यवाहियों में सम्बन्धित प्राधिकारी शास्ति उद्गृहीत करने के आदेश पारित करने से पूर्व मामले के सभी पहलुओं पर विचार करने के लिए निश्चित हैं। यह दलील, कि आक्षेपित उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) और (छ) का अतिक्रामी है, इसलिए नामंजूर करनी होगी।

35. हरियाणा जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1973 (1973 का अधिनियम सं० 20) की धारा 48 की विधिमान्यता के सम्बन्ध में अगली दलील है। यह इस प्रकार पठित है—

> *"48. सही लेखे रखने और सही विवरणी देने में असफलता—यदि किसी व्यवहारी ने झूठे या गलत लेखे अपने विक्रय, क्रय या माल के भंडार को छिपाने के दृष्टिकोण में रखे हैं या अपने विक्रय, क्रय की कोई विवरणियां छिपाई हैं, या इस अधिनियम या तद्धीन बनाए गए किन्हीं नियमों के अधीन किसी प्राधिकारी के समक्ष कोई विवरणी या सूचना पेश की है जो किसी तात्विक विवरणी के अनुसार झूठे या गलत हैं, तो आयुक्त या धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन उसकी सहायता करने के लिए नियुक्त कोई व्यक्ति ऐसे व्यवहारी को सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् शास्ति के रूप में उसके द्वारा संदेय किसी कर के अतिरिक्त ऐसी राशि का संदाय करने

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "48. Failure to maintain correct accounts and to furnish correct returns.—If a dealer has maintained false or incorrect accounts with a view to suppressing his sales, purchases or stocks of goods; or has concealed any particulars of his sales, purchases or has furnished to, or produced before any authority under this Act or the rules made thereunder any account return or information which is false or incorrect in any material particular, the Commissioner or any person appointed to assist him under sub-section (1) of section 3 may after affording such dealer a reasonable opportunity of being heard direct him to pay, by way of penalty, in

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का निदेश दे सकेगा जो कर की रकम के दुगने से अन्यून और दस गुना से अनधिक हो जिससे यदि ऐसे संव्यवहारी द्वारा विवरणी दिया गया विक्रय आवर्त सही माना गया है, बचा जा सकता था और जहां कि कोई कर संदेय नहीं है तो 100 रुपये से अन्यून किन्तु 1,000 रुपये से अनधिक रकम का संदाय करने के लिए निदेश दे सकेगा।"

36. हरियाणा राज्य में व्यवहारियों की ओर से दी गई दलील यह है कि यह धारा जो "कर की रकम से दुगने से अन्यून और दस गुना से अनधिक की रकम" की शास्ति का उसमें उल्लिखित व्यतिक्रम के सबूत पर उद्ग्रहण करने के लिए प्राधिकृत करती है अनुच्छेद 14 की अतिक्रामी है चूंकि शास्ति की मात्रा के बारे में शास्ति उद्ग्रहण करने वाले प्राधिकारी को कोई मार्गदर्शन नहीं किया गया है। इस अभिवाक् में कोई सार नहीं है। प्रश्नगत उपबन्ध स्वयं इस बात का सुझाव देता है कि शास्ति के रूप में इसके अधीन किया गया उद्ग्रहण जो सम्बन्धित प्राधिकारी को संव्यवहारी द्वारा किए गए सभी अभिकथित व्यतिक्रम के सुसंगत पहलुओं को ध्यान में रखना चाहिए। प्रथमतः व्यवहारी द्वारा किया गया व्यतिक्रम सम्बन्धित व्यवहारी को सुने जाने का अवसर दिए जाने के पश्चात् जांच में सिद्ध होना चाहिए। व्यतिक्रम में अन्तर्वलित असावधानी की मात्रा एक सुसंगत पहलू है जिसे शास्ति उद्गृहीत करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। धारा में उद्ग्रहणीय शास्ति की न्यूनतम और अधिकतम रकम का उपबन्ध है और यह कर की रकम से सहसम्बद्ध है जिससे बचा जा सकता था यदि ऐसे व्यवहारी द्वारा विवरणी दिए गए विक्रय आवर्त को सही मान लिया जाता है। शास्ति उद्गृहीत करने का आदेश स्वरूप में न्यायिकल्प है और उस में न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग अन्तर्वलित है। वे विचार जिन्हें प्राधिकारियों को शास्ति अधिरोपित करते समय महत्व देना चाहिए जाने माने हैं और उन्हें बहुत से विनिश्चयों द्वारा विनिश्चित कर दिया गया है। हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य[1] का मामला एक ऐसा विनिश्चय है। हरियाणा जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट

---

addition to any tax payable by him, a sum not less than twice and more than ten times the amount of tax which would have been avoided if the turnover returned by such dealer had been accepted as correct and where no tax is payable a sum not less than one hundred rupees but not exceeding one thousand rupees."

---

[1] [1970] 2 उम० नि० प० 777=[1970] 1 एस० सी० आर० 753.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की धारा 48 के अधीन शास्ति उद्गृहीत करने वाला आदेश भी उसके अध्याय 7 में उपवर्णित अपील आदि से सम्बन्धित उपबन्धों के अधीन है। इन परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि हरियाणा जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1973 की धारा 48 एक असरणीबद्ध, अनियंत्रित और मनमानी शक्ति शास्ति उद्ग्रहण करने वाले प्राधिकारी को देती है। इसलिए यह दलील असफल होनी चाहिए।

37. 1982 के रिट पिटीशन सं० 7220 में हल्के से यह सुझाव दिया गया था कि शास्ति का आदेश ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था जो उस विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं था। हमें अभिलेख से यह पता चलता है कि उक्त आदेश हिसार के निर्धारण प्राधिकारी तथा उत्पाद शुल्क और काराधान अधिकारी द्वारा पारित किया गया है जिसे राज्य सरकार ने हरियाणा जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1973 की धारा 3 के साथ पठित धारा 2(क) के अधीन और हरियाणा जनरल सेल्स टैक्स रूल्स, 1975 के नियम 4 (1) के अधीन स्पष्टतया प्राधिकृत किया गया है। हमें इस दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता।

38. परिणामस्वरूप ये पिटीशन असफल होते हैं और खारिज किए जाते हैं। इन मामलों की परिस्थितियों में खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता।

पिटीशन खारिज किए गए।

सं०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अमृत भीकाजी काले और अन्य
बनाम
काशीनाथ जनार्दन ट्रेड और एक अन्य

(Amrit Bhikaji Kale and Others v. Kashinath Janardhan Trade and Another)

(11 मई, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और रंग नाथ मिश्र)

बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 (1948 का 67)—धारा 32च, 32छ, 14, 29—किसान दिवस को अभिधारी द्वारा भूमि खरीदी गई समझा जाना—भूस्वामी द्वारा भूमि अवयस्क को वसीयत करना—भूस्वामी का किसी भी प्रकार निर्योग्य न होना और किसान दिवस के बाद उसकी मृत्यु हो जाना—ऐसी स्थिति में उस विक्रय की बाबत यह नहीं समझा जा सकता कि वह स्थगित हो गया है—इसलिए जो कार्यवाहियां बाद में की जाती हैं, वे शून्य होती हैं।

प्रत्यर्थी का पिता बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 की धारा 32 के उपबंध के अनुसार किसान दिवस को प्रश्नगत भूमि का अभिधारी था। इस प्रकार विधि के प्रवर्तन द्वारा प्रत्यर्थी का पिता किसान दिवस को उस भूमि का क्रेता समझा गया। 12 अगस्त, 1952 को भू-स्वामी का देहान्त हो गया। मरने से पहले उसने वसीयत के अनुसार अवयस्क को वादगत भूमि वसीयत कर दी। उस अवयस्क ने वादगत भूमि की बाबत राजस्व अभिलेख में अपना नाम मालिक के रूप में दाखिल-खारिज करा लिया। सूचना के बाद जब पक्षकार अधिकरण के समक्ष उपस्थित हुए तो भू-स्वामी की ओर से यह दावा किया गया कि अभिलेख का स्वामी अशोक लाल अवयस्क है, इसलिए विक्रय धारा 32-च के अधीन स्थगित कर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकरण ने पुनः धारा 32-छ के अधीन सन 1967 में कार्यवाही आरम्भ की और 13 जुलाई, 1967 के अपने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आदेश द्वारा अधिकारिता सम्बन्धी त्रुटियां बताते हुए कार्रवाई समाप्त कर दी और इस प्रकार वह अपने में निहित अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा । इसी बीच, अपने निकट मित्र की मार्फत अवयस्क भू-स्वामी ने क्षेत्रीय अधिकारिता रखने वाले टेनेन्सी आवल कार्कून न्यायालय में अभिधारी जनार्दन से कब्जा लेने के लिए कार्यवाही आरम्भ की । जनार्दन टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 29 के साथ पठित धारा 14 के अधीन धारणात्मक क्रेता बन गया था । धारा 14 भू-स्वामी को उस दशा में कब्जा वापस लेने के लिए समर्थ बनाती है जब अभिधारी कुछ वर्षों से भाटक न दे रहा हो। टेनेन्सी आवल कार्कून ने पिटीशन ग्रहण कर लिया, जिसकी उसे कोई अधिकारिता नहीं थी । चूंकि अशोक लाल और जनार्दन में भू-स्वामी की अभिधारी का सम्बन्ध अस्तित्व युक्त नहीं था, क्योंकि जनार्दन 1 अप्रैल, 1957 को पहले क्रेता समझा जा चुका था, इसलिए टेनेन्सी कार्कून ने अधिकरण के पहले विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनिवार्य विक्रय की तारीख स्थगित की जाती है, यह निदेश दिया कि कब्जा भू-स्वामी को सौंप दिया जाए और यह अभिनिर्धारित किया कि अभिधारी ने भाटक देने में व्यतिक्रम किया है । अधिकरण के दो आदेशों से भाटक कर जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विक्रय स्थगित कर दिया जनार्दन ने 6 अक्तूबर, 1971 को धारा 32-च के अधीन एक सूचना तामील की कि चूंकि भू-स्वामी वयस्क हो गया है, और वह भूमि खरीदने के लिए हकदार है, इसलिए भूमि की कीमत तय कर दी जाए । कदाचित्, इसी अधिसूचना के अनुसरण में अधिकरण ने क्रय कीमत अवधारित करने के लिए टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 32-छ और 32-च के अधीन कार्यवाहियां आरंभ कर दीं । अधिकरण निष्कर्ष पर पहुंचा कि 1 अप्रैल, 1957 को ताराचन्द अभिलेखगत भू-स्वामी था और वह किसी प्रकार भी निर्योग्य नहीं था तथा भूमि का अभिधारी होने के कारण जनार्दन विधि के प्रवर्तन द्वारा क्रेता समझ लिया गया था और बाद की सब कार्यवाहियां अकृत, शून्य और नास्ति थीं । अधिकरण ने क्रय कीमत तदनुसार अवधारित की । टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 76 के अधीन सहायक कलक्टर और महाराष्ट्र राजस्व अधिकरण के समक्ष अपील में असफल रहने के बाद वर्तमान पिटीशनरों ने अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय में समावेदन किया । प्रत्यर्थी ने टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 84 के अधीन कब्जा वापस लेने के लिए जो उससे अवैध रूप से छीन लिया गया था, समानान्तर कार्यवाही आरम्भ कर दी । सहायक कलक्टर ने अभिनिर्धारित किया कि पिटीशनरों द्वारा बाद को भूमि का अधिभोग विधि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के उपबंधों के प्रतिकूल है क्योंकि जनार्दन पहले ही क्रेता समझा जा चुका था और अशोक लाल से खरीद कर पिटीशनर कोई हक प्राप्त नहीं कर सकता था। अतः प्रत्यर्थी कब्जा वापस लेने के लिए हकदार है। निदेश दिया गया कि कब्जा प्रत्यर्थी को सौंप दिया जाए। महाराष्ट्र राजस्व अधिकरण ने पुनरीक्षण में 16 जुलाई, 1973 के अपने निर्णय द्वारा इस आदेश की पुष्टि कर दी। अन्तरिती पिटीशनरों ने वर्तमान प्रत्यर्थी के विरुद्ध धारा 32-छ के अधीन एक कार्यवाही में और 84 के अधीन वाली एक अन्य कार्यवाही में महाराष्ट्र राजस्व अधिकरण द्वारा दिए गए दो आदेशों के विरुद्ध मुम्बई उच्च न्यायालय में दो पिटीशन फाइल किए। उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपने एक ही निर्णय से पिटीशनरों के दोनों पिटीशन खारिज कर दिए और यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि जनार्दन किसान दिवस अर्थात् 1 अप्रैल, 1957 को क्रेता समझा गया था, इसलिए धारा 32-च के अधीन सभी बाद वाली कार्यवाहियां आरम्भ से ही शून्य अधिकारितारहित और अकृत थीं। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि पिटीशनरों ने अशोक लाल द्वारा तात्पर्यित विक्रय के अधीन कोई हक प्राप्त नहीं किया क्योंकि अशोक लाल के पास सिवाय जनार्दन से या उसके वारिस से धारा 32-छ के अधीन यथाअवधारित क्रय कीमत लेने के भूमि में कोई हक नहीं था। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने दोनों पिटीशन खर्चे सहित खारिज कर दिए। इस प्रकार विशेष इजाजत लेकर ये दोनों अपीलें की गई। अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—1957 के संशोधन अधिनियम, 15 द्वारा टेनेन्सी ऐक्ट में व्यापक संशोधन किए गए। संशोधन द्वारा खेती-बाड़ी के सुधार के क्रांतिकारी उपाय किए गए और किसान को भूमि का स्वामी बनाया गया। ऐसा इसलिए किया गया ताकि किसानों और राज्य के बीच वाले सभी माध्यमों को हटाने का उद्देश्य पूरा किया जा सके। धारा 32 में उपबंधित है कि मात्र विधि के प्रवर्तन द्वारा अधिनियम लागू होने वाले क्षेत्र में स्थित खेती की भूमि का प्रत्येक अभिधारी विधि के प्रवर्तन द्वारा उसका स्वामी बन जाएगा। उसे बिना कुछ किए ही धारणात्मक क्रेता घोषित कर दिया गया। अतः यह निस्संदेह सिद्ध हो गया है कि किसान दिवस को भूमि में भू-स्वामी का हित निर्वापित हो गया और साथ-ही-साथ पक्षकारों के बिना कुछ किए कानूनी विक्रय द्वारा भू-स्वामी का निर्वापित हक अभिधारी के पास पहुंच गया या उसमें उत्पन्न हो गया। उसी क्षण भू-स्वामी अभिधारी का सम्बन्ध, जैसा कि सामान्य विधि या सम्पत्ति अन्तरण का समझा जाता है,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समाप्त हो गया, सम्पर्क-सूत्र और कड़ी टूट गई। अनुपस्थित, खेती न करने वाले स्वामी का भूमि के स्वामित्व का तत्व छिन गया और खेती करने वाला अभिधारी अर्थात् किसान उसका स्वामी बन गया। यह निर्विवाद है। कानूनी विक्रय तारीख से भू-स्वामी केवल धारा 32-छ के अधीन अधिकरण द्वारा अवधारित क्रय कीमत पाने के लिए हकदार है। दूसरे शब्दों में, भू-स्वामी भू-स्वामी नहीं रहा और अभिधारी भू-स्वामी बन गया तथा राज्य से उसका सीधा सम्पर्क हो गया। अन्तरण की कोई कार्रवाई किए बिना भू-स्वामी का हक अपने आप समाप्त हो गया और साथ-ही-साथ वह अभिधारी में उत्पन्न हो गया तथा अभिधारी धारणात्मक क्रेता बन गया। (पैरा 6)

बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 की धारा 32-च और 32 का मिश्रित प्रभाव यह है कि जहां भू-स्वामी धारा 32 द्वारा प्रकल्पित रूप में निर्योग्य नहीं है वहां ऐसे भू-स्वामी का अभिधारी विधि के प्रवर्तन द्वारा क्रेता समझा जाएगा, किन्तु जहां भू-स्वामी धारा 32-च में वर्णित वर्ग या प्रवर्ग का है, जैसा अवयस्क, विधवा या मानसिक अथवा शारीरिक दृष्टि से निर्योग्य व्यक्ति, वहां अनिवार्य विक्रय की तारीख स्थगित हो जाएगी जैसा कि इस धारा में उपबन्ध किया गया है। (पैरा 8)

अधिकरण को इस आधार पर कार्यवाही करने की बिलकुल भी अधिकारिता नहीं थी कि विक्रय की तारीख स्थगित हो गई, यह न तो गलत आदेश था और न ही त्रुटिपूर्ण बल्कि अधिकरण के पास धारा 32-च के अधीन कार्यवाहियां करने की अधिकारिता नहीं थी क्योंकि जब धारा 32-च के अधीन कार्यवाहियां आरम्भ हुईं तो जनार्दन पहले ही धाराणात्मक क्रेता बन चुका था। अतः बाद की सब कार्यवाहियां आरम्भ से ही शून्य और अधिकारितारहित थीं। अतः उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके ठीक किया कि उसमें पारित आदेश अकृत हैं। (पैरा 9)

टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 29 के साथ पठित धारा 14 के अधीन वाली कार्यवाही इस आधार पर आरम्भ हुई कि भू-स्वामी और अभिधारी का सम्बन्ध आरम्भ में ही तोड़ देना चाहिए था क्योंकि एक दशक पूर्व तत्कालीन अभिधारी जनार्दन धाराणात्मक क्रेता बन गया था। अतः आदेश पूर्णतः शून्य और अकृत है और इस प्रकार नास्ति हैं तथा पश्चात्वर्ती कार्यवाहियों को विफल नहीं कर सकते। पश्चात्वर्ती कार्यवाहियों में अकृतता सिद्ध की जा सकती है। (पैरा 11)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अवलम्बित निर्णय

पैरा

[1959] [1959] सप्लीमेंट 1 एस० सी० आर० 489 : श्री राम राम नारायण मेधी बनाम मुम्बई राज्य (Sri Ram Ram Narain Medhi v. The State of Bombay). 6

सिविल अपीली अधिकारिता : 1981 की सिविल अपील सं० 174.

1979 के रिट पिटीशन सं० 2155 में मुम्बई उच्च न्यायालय के तारीख 4 सितम्बर, 1980 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री यू० आर० ललित, सी० बी० सिंह और पी० एच० पारिख

प्रत्यर्थी की ओर से — श्री जितेन्द्र शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया।

न्यायाधिपति देसाई—

1. गांव सोनाय, तालुका नवासा, जिला अहमदनगर की राजस्व सीमाओं के अन्तर्गत स्थित सर्वेक्षण संख्या 1052 की 16 एकड़ भूमि ताराचन्द चोपड़ा की थी। प्रत्यर्थी का पिता जनार्दन स्वीकृत रूप से 1 अप्रैल, 1957 को इस भूमि का अभिधारी था। बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैन्ड्स ऐक्ट, 1948 (समय-समय पर यथा-संशोधित) की धारा 32 में उपबन्धित है कि अप्रैल, 1957 के प्रथम दिन जिसे कि किसान दिवस के नाम से जाना जाता है, प्रत्येक अभिधारी के बारे में इस धारा के अन्य उपबन्धों और इससे आगे की धाराओं के उपबन्धों के अधीन रहते हुए यह समझा जाएगा कि उसने अपने भू-स्वामी से 1 तारीख को अस्तित्वयुक्त सभी भारों से मुक्त अभिधारी के रूप में अपने द्वारा धारित भूमि खरीद ली है, यदि इस धारा की अन्य शर्तें पूरी हो जाती हैं। इस प्रकार विधि के प्रवर्तन द्वारा जनार्दन जो किसान दिवस को उस भूमि का अभिधारी था, उसका क्रेता समझा गया। 12 अगस्त, 1959 को भू-स्वामी ताराचन्द का देहान्त हो गया। अपने मरने से पहले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भू-स्वामी ताराचन्द ने एक वसीयत निष्पादित की और वादगत भूमि अशोकलाल गुगाले को वसीयत कर दी। अशोक लाल गुगाले उच्च न्यायालय के समक्ष पिटीशनर संख्या 5 था। ताराचन्द की वसीयत के अनुसार अशोक लाल ने वादगत भूमि की बाबत राजस्व अभिलेख में अपना नाम मालिक के रूप में दाखिल-खारिज करा लिया। दाखिल-खारिज की तारीख को अशोक लाल अवयस्क था। धारा 32-छ कृषिक भूमि अधिकरण (संक्षेप में "अधिकरण") पर एक कानूनी कर्त्तव्य डालती है कि वह उस भूमि की कीमत अवधारित करने के लिए जांच आरम्भ करे जोकि अनिवार्य क्रय की विषय-वस्तु है। अधिकरण से अपेक्षित है कि वह (क) सभी अभिधारियों को, जिनके बारे में धारा 32 के अधीन यह समझा जाता है कि उन्होंने भूमि खरीद ली है, (ख) ऐसी भूमियों के सभी भू-स्वामियों को, और (ग) उसके कारण हितबद्ध अन्य सभी व्यक्तियों को, सूचना में विनिर्दिष्ट तारीख को अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए सूचना जारी करे। ऐसी सूचना के बाद जब पक्षकार अधिकरण के समक्ष उपस्थित हुए तो भू-स्वामी की ओर से यह दावा किया गया कि अभिलेख का स्वामी अशोक लाल अवयस्क है, इसलिए विक्रय धारा 32-च के अधीन स्थगित कर दिया गया। अधिकरण इस प्रकट तथ्य पर ध्यान न देकर अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा कि वह सुसंगत तारीख जिसको अनिवार्य विक्रय किया जाता है, 1 अप्रैल, 1957 है और उस तारीख को ताराचन्द चोपड़ा भू-स्वामी का नाम स्वामी के रूप में लेखबद्ध किया गया और वह किसी प्रकार निर्योग्य नहीं था, जैसा कि धारा 32-च में प्रकल्पित है और, इसीलिए विक्रय प्रभावी हो गया तथा धारा 32-च के अधीन स्थगित नहीं किया जा सकता था। फिर भी अधिकरण इस असंगत तथ्य का गलत उल्लेख करके अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा कि चूंकि लेखबद्ध स्वामी अवयस्क था, इसीलिए अनिवार्य विक्रय धारा 32-च के अनुसार स्थगित कर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकरण ने पुनः धारा 32-छ के अधीन सन् 1967 में कार्यवाही आरम्भ की और 13 जुलाई, 1967 के अपने आदेश द्वारा अधिकारिता संबंधी त्रुटियां बताते हुए कार्रवाई समाप्त कर दी और इस प्रकार वह अपने में निहित अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा। इसी बीच, अपने निकट मित्र की मार्फत अवयस्क भू-स्वामी ने क्षेत्रीय अधिकारिता रखने वाले टेनेन्सी आवल कार्कून न्यायालय में 1967 का मामला सं० 36 अभिधारी जनार्दन से कब्जा लेने के लिए कार्रवाई आरम्भ की। जनार्दन टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 29 के साथ पठित धारा 14 के अधीन धारणात्मक क्रेता बन गया था। धारा 14

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भू-स्वामी को उस दशा में कब्जा वापस लेने के लिए समर्थ बनाती है जब अभिधारी कुछ वर्षों से भाटक संदत्त न कर रहा हो। टेनेन्सी आवल कार्कून ने पिटीशन ग्रहण कर लिया, जिसकी उसे कोई अधिकारिता नहीं थी। चूंकि अशोक लाल और जनार्दन ने भू-स्वामी की अभिधारी अस्तित्वयुक्त सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि जनार्दन 1 अप्रैल, 1957 को पहले क्रेता समझा जा चुका था। फिर भी टेनेन्सी कार्कून ने अधिकरण के पहले विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनिवार्य विक्रय की तारीख स्थगित की जाती है, यह निदेश दिया कि कब्जा भू-स्वामी को सौंप दिया जाए और यह अभिनिर्धारित किया कि अभिधारी ने भाटक संदत्त करने में व्यतिक्रम किया है।

2. इस प्रक्रम पर अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल श्री ललित ने कहा कि टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 29 के साथ पठित धारा 14 के अधीन वाली कार्यवाही में अभिधारी जनार्दन ने 5 अक्तूबर, 1967 को यह कथन किया कि उसे भू-स्वामी को भूमि का कब्जा सौंपने में कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि वह बूढ़ा हो चुका है और स्वयं खेती-बाड़ी नहीं कर सकता। आश्चर्य की बात है कि उसी दिन टेनेन्सी आवल कार्कून ने भी वर्तमान प्रत्यर्थी का कथन लेखबद्ध किया हालांकि अपने पिता जनार्दन के जीवनकाल में उसे विवादग्रस्त भूमि में कोई हक प्राप्त नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि टेनेन्सी आवल कार्कून ने 6 अक्तूबर, 1967 को एक आदेश किया जिसके द्वारा जनार्दन को इस आधार पर भूमि से बेदखल कर दिया कि वह भाटक संदत्त करने के लिए दायी अभिधारी है और उसने व्यतिक्रम किया है। इस पूर्णतः अकृत और शून्य आदेश के आधार पर अवयस्क भू-स्वामी 13 नवम्बर, 1967 को भूमि को पिटीशनर सं० 1 को तथा हरिभाव नामक एक व्यक्ति को रजिस्ट्रीकृत विलेख द्वारा बेच सका और हरिभाव ने अपना हित अन्य पिटीशनरों के पक्ष में स्थानान्तरित कर दिया।

3. अधिकरण के दो आदेशों से भटक कर जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विक्रय स्थगित कर दिया। जनार्दन ने 6 अक्तुबर, 1971 को धारा 32-च के अधीन एक सूचना तामील की कि चूंकि भू-स्वामी वयस्क हो गया है, इसलिए वह भूमि खरीदने के लिए हकदार है, इसलिए भूमि की कीमत तय कर दी जाए। कदाचित इसी अधिसूचना के अनुसरण में अधिकरण ने क्रय कीमत अवधारित करने के लिए टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 32-छ और 32-च के अधीन कार्यवाहियां आरम्भ कर दीं। अशोक लाल से भूमि प्राप्त करने वाले पिटीशनरों की ओर से अधिकरण के समक्ष यह दलील दी गई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि चूंकि जनार्दन अशोक लाल को कब्जा पहले ही दे चुका है, इसलिए भूमि में उसका कोई हित अस्तित्वयुक्त नहीं है, इसलिए उसे धारा 32-च के अधीन भूमि खरीदने का कोई हक प्राप्त नहीं है और कार्यवाहियां बंद कर दी जाएं। अधिकरण को यह दलील सही प्रतीत हुई। उसने इस विधिक स्थिति को अनदेखा कर दिया कि जनार्दन 1 अप्रैल, 1957 को क्रेता समझ लिया गया था। 29 नवम्बर, 1976 को जनार्दन का निधन हो गया और उसका एकमात्र वारिस उसका पुत्र प्रत्यर्थी रह गया। जनार्दन के मरने पर यह सुनिश्चित करने के लिए जांच आरम्भ की गई कि जनार्दन मृत अभिधारी 1 अप्रैल, 1957 को क्रेता समझ लिया गया था या नहीं? और यह कि पश्चात्वर्ती सब कारंवाइयां आरम्भ से ही शून्य हैं। धारा 84 के अधीन इसके बीच में भी कुछ कार्यवाहियां चलीं जो सुसंगत नहीं हैं। अधिकरण ने मामले में गहन विचार किया, सभी पूर्ववर्ती आदेशों को देखा और अन्ततोगत्वा इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा कि 1 अप्रैल, 1957 को ताराचन्द अभिलेखगत भू-स्वामी और वह किसी प्रकार भी निर्योग्य नहीं था तथा भूमि का अभिधारी होने के कारण जनार्दन विधि के प्रवर्तन द्वारा क्रेता समझ लिया गया था और बाद की सब कार्यवाहियां अकृत, शून्य और नास्ति थीं। अधिकरण ने क्रय कीमत तदनुसार अवधारित की। टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 76 के अधीन सहायक कलक्टर और महाराष्ट्र राजस्व अधिकरण के समक्ष अपील में असफल रहने के बाद वर्तमान पिटीशनरों ने अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय में समावेदन किया।

4. प्रत्यर्थी ने टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 84 के अधीन कब्जा वापस लेने के लिए जो उससे अवैध रूप से छीन लिया गया था, समानान्तर कार्यवाही आरम्भ कर दी। सहायक कलक्टर ने अभिनिर्धारित किया कि पिटीशनरों द्वारा वाद को भूमि का अधिभोग विधि के उपबन्धों के प्रतिकूल है क्योंकि जनार्दन पहले ही क्रेता समझा जा चुका था और अशोक लाल से खरीद करके पिटीशनर कोई हक प्राप्त नहीं कर सकता था। अतः प्रत्यर्थी कब्जा वापस लेने के लिए हकदार है। निदेश दिया गया कि कब्जा प्रत्यर्थी को सौंप दिया जाए। महाराष्ट्र राजस्व अधिकरण ने पुनरीक्षण में 16 जुलाई, 1973 के अपने निर्णय द्वारा इस आदेश की पुष्टि कर दी। अन्तरिती पिटीशनरों ने वर्तमान प्रत्यर्थी के विरुद्ध धारा 32-छ के अधीन एक कार्यवाही में और 84 के अधीन वाली एक अन्य कार्यवाही में महाराष्ट्र राजस्व अधिकरण द्वारा दिए गए दो आदेशों के विरुद्ध मुम्बई उच्च न्यायालय में दो पिटीशन फाइल किए। उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपने एक ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्णय से पिटीशनरों के दोनों पिटीशन खारिज कर दिए और यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि जनार्दन किसान दिवस अर्थात् 1 अप्रैल, 1957 को क्रेता समझा गया था, इसलिए धारा 32-च के अधीन सभी बाद वाली कार्यवाहियां प्रारम्भ से ही शून्य, अधिकारितारहित और अकृत थीं। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि पिटीशनरों ने अशोक लाल द्वारा तात्पर्यित विक्रय के अधीन कोई हक प्राप्त नहीं किया क्योंकि अशोक लाल के पास सिवाय जनार्दन से यह उसके वारिस से धारा 32-छ के अधीन यथाअवधारित क्रय कीमत लेने का भूमि में कोई हक नहीं था। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने दोनों पिटीशन खर्चे सहित खारिज कर दिए। इस प्रकार विशेष इजाज़त लेकर ये दोनों अपीलें की गईं।

5. अपीलार्थियों के विद्वान काउन्सेल श्री यू० आर० ललित ने परिश्रमपूर्वक यह दलील दी है कि टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 29 के साथ पठित धारा 14 के अधीन वाली कार्यवाही में टेनेन्सी आवल कार्कून द्वारा धारा 32-च के अधीन अधिकरण द्वारा किए गए आदेशों से और जनार्दन तथा प्रत्यर्थी के कथन से स्पष्ट दर्शित हो जाएगा कि ये आदेश अधिक से अधिक त्रुटिपूर्ण थे, किन्तु शून्य नहीं थे और पश्चात्‌वर्ती कार्यवाहियों में अकृतता के आधार पर उनकी अपेक्षा नहीं की जा सकती।

6. 1957 के संशोधन अधिनियम, 15 द्वारा टेनेन्सी ऐक्ट में व्यापक संशोधन किए गए। संशोधन द्वारा खेती-बाड़ी के सुधार के क्रान्तिकारी उपाय किए गए और किसान को भूमि का स्वामी बनाया गया। ऐसा इसलिए किया गया ताकि किसानों और राज्यों के बीच वाले सभी माध्यमों को हटाने का उद्देश्य पूरा किया जा सके। धारा 32 में उपबंधित है कि मात्र विधि के प्रवर्तन द्वारा अधिनियम लागू होने वाले क्षेत्र में स्थित खेती की भूमि का प्रत्येक अभिधारी विधि के प्रवर्तन द्वारा उसका स्वामी बन जाएगा। उसे बिना कुछ किए ही धारणात्मक क्रेता घोषित कर दिया गया। श्री राम राम नारायण मेधी बनाम मुम्बई राज्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय के संविधान न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया था कि—

> "भूमि में भू-स्वामी का हक किसान दिवस को तुरन्त अभिधारी पर संक्रांत हो जाएगा और भू-स्वामी तथा अभिधारी के बीच उसका पूर्ण क्रय का विक्रय हो गया है। भूमि का हक जो मूलतः

[1] [1959] सप्लीमेंट 1 एस० सी० आर० 489 पृष्ठ 518.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

> भू-स्वामी में निहित था, किसान दिवस को अभिधारी पर संक्रान्त हो गया और यह हक तभी अव्यवहार्य होगा जब अभिधारी हाजिर न हो या यह कहे कि वह भूमि खरीदने का इच्छुक नहीं है अथवा अधिकरण द्वारा अवधारित उसकी कीमत देने में व्यतिक्रम करे।"

अतः यह निस्संदेह सिद्ध हो गया है कि किसान दिवस को भूमि में भू-स्वामी का हित निर्वापित हो गया और साथ ही साथ पक्षकारों के बिना कुछ किए कानूनी विक्रय द्वारा भू-स्वामी का निर्वापित हक अभिधारी के पास पहुंच गया या उसमें उत्पन्न हो गया। उसी क्षण भू-स्वामी अभिधारी का सम्बन्ध, जैसा कि सामान्य विधि या सम्पत्ति अन्तरण का समझा जाता है, समाप्त हो गया, सम्पर्क-सूत्र और कड़ी टूट गई। अनुपस्थित, खेती न करने वाले स्वामी का भूमि के स्वामित्व का तत्व छिन गया और खेती करने वाला अभिधारी अर्थात् किसान उसका स्वामी बन गया। यह निर्विवाद है। कानूनी विक्रय तारीख से भू-स्वामी केवल धारा 32-छ के अधीन अधिकरण द्वारा अवधारित क्रय कीमत पाने के लिए हकदार है। दूसरे शब्दों में, भू-स्वामी भू-स्वामी नहीं रहा और अभिधारी भू-स्वामी बन गया तथा राज्य से उसका सीधा सम्पर्क हो गया। अन्तरण की कोई कार्रवाई किए बिना भू-स्वामी का हक अपने आप समाप्त हो गया और साथ-ही-साथ वह अभिधारी में उत्पन्न हो गया तथा अभिधारी धारणात्मक क्रेता बन गया। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि 1 अप्रैल, 1957 को ताराचन्द भू-स्वामी था और जनार्दन अभिधारी। ताराचन्द भू-स्वामी धारा 32-च द्वारा प्रकल्पित किसी प्रकार निर्योग्य नहीं था, अतः 1 अप्रैल, 1957 को जनार्दन क्रेता समझ लिया गया और श्री ललित इस स्थिति का प्रतिवाद नहीं कर सके।

7. यदि जनार्दन किसान दिवस को क्रेता समझा गया था तो ताराचन्द और जनार्दन के बीच भू-स्वामी-अभिधारी का सम्बन्ध समाप्त हो गया और ताराचन्द या उसके माध्यम से कोई अन्य जैसे अशोक लाल या वर्तमान क्रेता इस आधार पर किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता कि वे 1 अप्रैल, 1957 को या के पश्चात् भू-स्वामी हैं। यह आधारभूत तथ्य अकाट्य है।

8. यह उल्लेखनीय है कि धारा 32-च इस मामले के तथ्यों में लागू नहीं होती। धारा 32-च के अनुसार अभिधारी द्वारा अनिवार्य क्रय की तारीख स्थगित कर दी गई जहां भू-स्वामी किसान दिवस को अवयस्क है या विधवा है या मानसिक या शारीरिक दृष्टि से निर्योग्य व्यक्ति है। धारा 32-च का धारा 32 पर अध्यारोही प्रभाव है क्योंकि यह अध्यारोही खण्ड से आरम्भ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होती है। धारा 32-च और 32 का मिश्रित प्रभाव यह है कि जहां भू-स्वामी धारा 32 द्वारा प्रकल्पित रूप में निर्योग्य नहीं है वहां ऐसे भू-स्वामी का अभिधारी विधि के प्रवर्तन द्वारा क्रेता समझा जाएगा, किन्तु जहां भू-स्वामी धारा 32-च में वर्णित वर्ग या प्रवर्ग का है, जैसे अवयस्क, विधवा या मानसिक अथवा शारीरिक दृष्टि से निर्योग्य व्यक्ति, वहां अनिवार्य विक्रय की तारीख स्थगित हो जाएगी जैसा कि इस धारा में उपबन्ध किया गया है। अतः यदि तारा चन्द भू-स्वामी 1 अप्रैल, 1957 को किसी प्रकार निर्योग्य नहीं था तथा जीवित था और स्वामी था तो उसका अभिधारी जनार्दन क्रेता समझा गया। हमारी राय में यह निष्कर्ष अकाट्य है।

9. यदि जनार्दन 1 अप्रैल, 1957 को भू-स्वामी बन गया तो बाद की सब कार्यवाहियां जिनमें अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया था कि विक्रय की तारीख स्थगित हो गई क्योंकि अभिलेखगत स्वामी अशोक लाल अवयस्क था, अधिकारिता रहित थीं। अधिकरण को इस आधार पर कार्यवाही करने की बिलकुल भी अधिकारिता नहीं थी कि विक्रय की तारीख स्थगित हो गई, यह न तो गलत आदेश था और न ही त्रुटिपूर्ण, जैसा कि सिद्ध करना चाहा गया है। बल्कि अधिकरण के पास धारा 32-च के अधीन कार्यवाहियां करने की अधिकारिता नहीं थी क्योंकि जब धारा 32-च के अधीन कार्यवाहियां आरम्भ हुईं तो जनार्दन पहले ही धारणात्मक क्रेता बन चुका था। अतः बाद की सब कार्यवाहियां आरम्भ से ही शून्य और अधिकारिता रहित थीं। अतः उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके ठीक किया कि उसमें पारित आदेश अकृत हैं।

10. वह आदेश त्रुटिपूर्ण था, इस बात पर जोर देकर इस स्थिति पर हावी होने के प्रयास को उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके ठीक ही विफल कर दिया कि आदेश अकृत और शून्य हैं और इस तरह कार्यवाही की कि इस अधिकारिता सम्बन्धी तथ्य और त्रुटिपूर्ण ढंग से अंगीकार किया कि अभिलेख का स्वामी किसान दिवस को अवयस्क था। जब सीमित अधिकारिता वाला अधिकरण किसी कानूनी उपबन्ध की ओर पक्षकार की प्रास्थिति पर विधिक दृष्टि से उसके परिणामों की उपेक्षा करके अथवा ऐसा अभिनिश्चय करके जो कि अधिकारिता सम्बन्धी तथ्य के बारे में पूर्णतः अनपेक्षित है, अधिकारिता ग्रहण कर लेता है तो उसका विनिश्चय अकृत होता है और साम्पार्श्विक कार्यवाहियों में उसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। अधिकरण ने ऐसी अधिकारिता ग्रहण कर ली जो उसमें निहित नहीं थी, अतः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऐसी स्थिति में, इस वारे में विवाद नहीं किया जा सकता कि अधिकरण के पास भू-स्वामी और अभिधारी के बीच किसी कार्यवाही को इस त्रुटिपूर्ण धारणा पर ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी कि अभिधारी अभी तक अभिधारी है, यद्यपि वह बहुत पहले धारणात्मक क्रेता बन चुका था। अभिधारी 24 अप्रैल, 1961 और 13 जुलाई, 1967 को अधिकरण के आदेश से बहुत पहले अभिधारी नहीं रहा जिन आदेशों में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनिवार्य क्रय की तारीख स्थगित हो गई थी। विधि के प्रवर्तन द्वारा अनिवार्य क्रय बहुत पहले 1 अप्रैल, 1957 को हो चुका था। इसलिए विधि की इस स्थिति को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

11. फिर भी श्री ललित ने दलील दी कि टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 29 के साथ पठित धारा 14 के अधीन वाली कार्यवाही में जनार्दन का यह कथन कि वह बूढ़ा हो गया है और खेती करने लायक नहीं है तथा उसका कब्जा सौंपने के लिए इच्छुक है, प्रत्यर्थी को इसके प्रतिकूल दलील देने से रोकेगा। साथ ही इस बात पर जोर दिया गया कि उस तारीख को स्वयं प्रत्यर्थी उपस्थित था जिसको प्रत्यर्थी ने अपना कथन किया था और 5 अक्तूबर, 1967 को अपने तथा जनार्दन के कथन से सहमत था। हम भू-स्वामी के ऐसे वर्ग से अनभिज्ञ हैं जो अभिधारियों के ऊपर ऐसे प्रभाव का प्रयोग करता हो कि विधिक साक्षरता के अभाव में वे विधिक दृष्टि से संरक्षित हित अपने हित के प्रतिकूल कोई भी कथन कर सकते हैं। भू-स्वामी के ऐसे अनुचित साधनों से खेती के सुधार के उपाय को विफल नहीं होने दिया जा सकता। फिर भी अपनी स्थिति की अनभिज्ञता के अलावा यदि यह मान लिया जाए कि जनार्दन ने अभिधारी के रूप में अपना अधिकार त्याग दिया था तो भी भू-स्वामी अशोक लाल कब्जा वापस लेने के लिए हकदार नहीं था क्योंकि जब धारणात्मक क्रेता जनार्दन धारा 15 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए कब्जा सौंपने के लिए राजी था तो वह भूमि धारा 32-त के अधीन कलक्टर के व्ययन पर होगी। ऐसी स्थिति में भी भू-स्वामी का कब्जा धारा 15 के अधीन इसके मामले को लाए बिना प्रत्यावर्तित कराने के लिए हकदार नहीं है किन्तु भू-स्वामी का मामला यह प्रतीत नहीं होता। साथ ही भू-स्वामी के सद्भाव पर दृष्टिपात कीजिए। ज्योंही अशोक लाल ने कब्जे के लिए एकदम शून्य आदेश अभिप्राप्त कर लिया, उसने दो सप्ताह से भी कम समय के अन्दर भूमि पिटीशनर को अन्तरित कर दी। इस प्रकार, यह दिखाई देगा कि अशोक लाल और उसका घनिष्ठ मित्र भी संभवतः आदेश के शून्य स्वरूप से भिज्ञ था। अतः आगे कोई विधिक कार्यवाही न हो और जनार्दन भ्रम में पड़ जाए, इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दृष्टि से अशोक लाल ने अपने घनिष्ठ मित्र के माध्यम से भूमि पिटीशनर को अन्तरित कर दी और पिटीशनरों को धारणात्मक क्रेता से लड़ने के लिए छोड़ दिया। ऐसे उपाय को जिसके द्वारा अभिधारी भूमि का स्वामी बनाया जाना था, उन निम्न स्तरीय राजस्व अधिकारियों द्वारा जो ये भी नहीं जानते कि क्या वे कर रहे हैं, ऐसे आदेशों को ऐसे जंजाल से विफल नहीं होने दिया जा सकता। अधिकरण के विधि-ज्ञान के अभाव को देखिए। सुसंगत तारीख की उपेक्षा करते समय उसने पश्चात्वर्ती तारीख को हिसाब में ले लिया जो कि असंगत और अननुज्ञेय थी। यद्यपि भू-स्वामी ताराचन्द का निधन 1-4-1957 के बहुत बाद हुआ था, फिर भी धारा 32-छ के अधीन वाली कार्यवाही में अवयस्क अशोक लाल जिसका नाम ताराचन्द के मरने पर दाखिल खारिज किया गया था, प्राधिकारी ने यह घोषणा की कि विक्रय स्थगित हो गया था, यद्यपि कानून पहले ही प्रवृत्त हो चुका था और विक्रय हो चुका था। क्या विधि क्रियान्वन के कर्तव्य वाला कोई कानूनी अधिकरण ऐसा ज्ञानाभाव दर्शित कर सकता है जोकि उद्देश्य को विफल करने वाला हो। यही स्थिति टेनेन्सी आवल कार्कून के विनिश्चय की है। टेनेन्सी ऐक्ट की धारा 29 के साथ पठित धारा 14 के अधीन वाली कार्यवाही इस आधार पर आरम्भ हुई कि भू-स्वामी और अभिधारी का सम्बन्ध आरम्भ में ही तोड़ देना चाहिए था क्योंकि एक दशक पूर्व तत्कालीन अभिधारी जनार्दन धारणात्मक क्रेता बन गया था। अतः आदेश पूर्णतः शून्य और अकृत है और इस प्रकार नास्ति है तथा पश्चात्वर्ती कार्यवाहियों को विफल नहीं कर सकते। पश्चात्वर्ती कार्यवाहियों में अकृतता सिद्ध की जा सकती है।

12. जनार्दन को ऐसे आदेश द्वारा बेकब्जा कर दिया गया जिसे कोई विधिक बल प्राप्त नहीं था। उसे इस आधार पर बेकब्जा किया गया कि वह एक अभिधारी है और इस कानूनी स्थिति की उपेक्षा कर दी गई कि वह स्वामी बन चुका था। जब विधानमण्डल ने ऐसा क्रान्तिकारी कानून पारित कर दिया तो भी उसकी जानकारी उन लोगों तक नहीं पहुचाई गई, जिन लोगों के लिए कानून बनाया गया था और लोगों को अपने अधिकारों की जानकारी नहीं मिली। निस्संदेह सम्प्रेषण के अभाव और विधिक साक्षरता की कमी से जनार्दन को भ्रम में रखा गया और अवैध रूप से बेकब्जा कर दिया गया। बाद में हर एक ने अपने द्वारा की गई भूल महसूस की और इसलिए जब जनार्दन द्वारा दी गई सूचना पर कार्यवाहियां आरम्भ की गई तो अधिकरण ने कीमत अवधारित की। सहायक कलक्टर के पास पिटीशनरों की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपील असफल रही। इस प्रकार पिटीशनरों का महाराष्ट्र राजस्व अधिकरण के समक्ष पुनरीक्षण पिटीशन भी असफल रहा तथा अनुच्छेद 227 के अधीन रिट पिटीशन भी असफल रहा। सभी प्राधिकारियों ने एक समान यह अभिनिर्धारित किया कि जनार्दन स्वामी बन गया था। और अधिकरण ने कीमत अवधारित करके ठीक किया।

13. धारा 84 के अधीन प्राधिकारी ने यह अभिनिर्धारित किया कि पिटीशनर कब्जा रखे रखने के लिए हकदार नहीं है क्योंकि उनका अधिभोग टेनेन्सी ऐक्ट के उपबन्धों के प्रतिकूल है और उन्होंने अशोक लाल द्वारा तात्पर्यित विक्रय से भूमि में कोई हक अर्जित नहीं किया। जनार्दन को कब्जा बहाल किए जाने का निदेश ठीक ही दिया गया था। पिटीशनरों के निवेदन पर उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण पिटीशन और रिट पिटीशन असफल रहे।

14. हमारा निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने दोनों पिटीशन नामंजूर करके ठीक किया। इस अपील में भी वे दलीलें दी गईं और चूंकि हमारा निष्कर्ष है कि उनमें कोई सार नहीं है इसलिए अपील असफल होती है और खर्चे सहित खारिज की जाती है।

15. जब इस न्यायालय ने सूचना जारी की तो अपीलार्थियों को प्रत्यर्थी के खर्चे के लिए 1,500 रुपए जमा करने का निदेश दिया गया। प्रत्यर्थी यहां दरिद्र बनकर आए और उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि वे इतने गरीब हैं कि वकील भी नहीं कर सकते। अतः हम निदेश देते हैं कि अपीलार्थियों द्वारा इस न्यायालय में जमा 1,500 रुपए की रकम प्रत्यर्थी को दे दी जाए।

16. श्री जितेन्द्र शर्मा इस न्यायालय द्वारा विशेष इजाजत देते समय की गई प्रार्थना पर न्यायमित्र के रूप में उपस्थित हुए, अतः उन्होंने न्यायालय को जो सहयोग दिया, उसके लिए वे प्रशंसा के पात्र हैं। वह रकम वापस लें और उसे प्रत्यर्थी को देने के लिए आवश्यक कदम उठायें।

अपील खारिज की गई।

कृ०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अरुणा बसु मल्लिक (श्रीमती)

बनाम

श्रीमती दोरोथिया मित्रा

(Mrs. Aruna Basu Mullick
v.
Mrs. Dorothea Mitra)

(2 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, अमरेन्द्र नाथ सेन और रंगनाथ मिश्र)

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43)— धारा 37—स्थायी निर्वाहिका—न्यायालय द्वारा निर्णीत-ऋणी-पति के विरुद्ध डिक्रीदार-पत्नी के पक्ष में स्थायी निर्वाहिका की डिक्री का दिया जाना—निर्णीत-ऋणी-पति की मृत्यु होने पर निष्पादिका द्वारा इस आधार पर निर्वाहिका का संदाय बन्द किया जाना कि वह भार न होने के कारण, डिक्रीदार का दावा निर्वापित हो गया—यदि निर्णीत-ऋणी-पति मृत्यु के समय अपने पीछे कोई सम्पदा छोड जाता है, तो निर्वाहिका विषयक डिक्री के निर्वापित होने का कोई भी प्रश्न नहीं है—विधिक प्रतिनिधि ऐसी डिक्री की तुष्टि के लिए बाध्य हैं।

विशेष विवाह अधिनियम, 1954(1954 का 43)— धारा 37(2)—"किसी पक्षकार की प्रेरणा पर" पद का निर्वचन—यह पद पति/पत्नी तक ही सीमित नहीं है—उसकी परिधि के भीतर विधिक प्रतिनिधि भी आते हैं।

प्रत्यर्थी और 'प्र' नाम के एक व्यक्ति का विवाह विशेष विवाह अधिनियम, 1872 के अधीन जनवरी, 1952 में हुआ। प्रत्यर्थी ने 1961 में विवाह-विच्छेद की मांग की और 2 मई, 1962 को इस प्रभाव की डिक्री अभिप्राप्त की कि "पिटीशनर का 'प्र' से विवाह, विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया जाता है। पिटीशनर को 'प्र' से भरण-पोषण के रूप में 300 रुपए प्रति मास की रकम मिलेगी जो कि प्रत्येक आगामी मास के,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिसके लिए वह देय है, प्रथम सप्ताह में संदत्त की जाएगी और वह उस समय तक मिलती रहेगी जब तक कि वह पुनर्विवाह नहीं कर लेती है" । प्रत्यर्थी ने डिक्री के निष्पादन के लिए मामला दायर किया और उस मामले में समझौता हो गया तथा बकाया रकम के संदाय का कार्य किस्तों में किया जाना था। 'प्र' ने 31 मार्च, 1965 को विल निष्पादित की किन्तु उसमें भरण-पोषण की तुष्टि के लिए कोई भी उपबंध नहीं किया। उसकी मृत्यु 3 अप्रैल, 1965 को हुई और अपीलार्थी ने, जो कि विल में निष्पादिका थी, उसका सम्यक् रूप से प्रोबेट करवा लिया। इस सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं था कि निष्पादिका ने 'प्र' की मृत्यु के पश्चात् वाली कालावधि के लिए दिसम्बर, 1975 में भरण-पोषण संदत्त किया था। किन्तु चूंकि उसके बाद कोई भी संदाय नहीं किया गया था, इसलिए प्रत्यर्थी ने 19,500 रुपए की रकम की बकाया की वसूली का दावा करते हुए वैवाहिक-मामला सं० 1/77 में निष्पादन की कार्यवाही की। अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 47 के अधीन यह अभिवचन करते हुए उस दावे पर आक्षेप किया कि चूंकि निर्वाहिका का आदेश इस प्रकार का नहीं है जिसके आधार पर वह रकम (सम्पत्ति पर) भार हो, इसलिए 'प्र' की मृत्यु के पश्चात् तात्पर्यित डिक्रीदार का दावा निर्वापित हो गया है। निष्पादन न्यायालय ने इस आक्षेप को नामंजूर कर दिया जिसके लिए अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण-अधिकारिता का प्रयोग करने की प्रार्थना की। खण्ड न्यायपीठ, निष्पादन-न्यायालय से सहमत हुई, किन्तु पुनरीक्षण पिटीशन खारिज करते हुए उसने उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रमाणपत्र दे दिया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद संसद् ने विशेष विवाह अधिनियम, 1954 पारित किया। इस मामले का विनिश्चय उसी अधिनियम की धारा 37 के अधीन किया जाना था। अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 37 की भाषा से यह निष्कर्ष न्यायोचित साबित नहीं होता है कि निर्णीत-ऋणी-पति की मृत्यु के बाद निर्वाहिका की डिक्री का निर्वापन हो जाता है। (पैरा 5)

इस सम्बन्ध में कोई भी सन्देह नहीं हो सकता कि जहां भरण-पोषण पति की सम्पदा पर भार बनाया गया है, वहां पति की मृत्यु का प्रभाव डिक्री पर नहीं पड़ेगा और ऐसी मृत्यु के बावजूद भी ऐसी सम्पदा के विरुद्ध मृत्यु के पश्चात् वाली कालावधि के लिए भरण-पोषण विषयक देय रकम की वसूली के लिए कार्यवाही की जा सकेगी। (पैरा 10)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस दलील में कोई भी तर्कसंगति दिखाई नहीं पड़ती कि भरण-पोषण या निर्वाहिका की डिक्री पति की मृत्यु के साथ उस समय निर्वापित हो जाती है, जब कि कोई अन्य डिक्री, भले ही वह पति की सम्पत्ति पर भारित न हो, इस प्रकार निर्वापित नहीं हो जाएगी। पति के विरुद्ध की गई डिक्री वारिसों के हाथ में पति की सम्पदा के विरुद्ध निष्पाद्य होगी और कोई भी स्वीय दायित्व नहीं होगा। विधि की दृष्टि से भरण-पोषण विषयक डिक्री से कोई भी अन्तर नहीं पड़ेगा। डिक्री से यह उपदर्शित होता है कि भरण-पोषण विधवा के जीवनकाल के दौरान संदेय था। पति की मृत्यु को ऐसी डिक्री का आधार बनाना डिक्री के पदों और उसकी भावना के प्रतिकूल है और अपीलार्थी ने यह आधार अपनाया है कि यद्यपि विधवा जीवित है, तथापि उसके द्वारा अभिप्राप्त डिक्री पति की मृत्यु के साथ ही अप्रभावी हो जाएगी। (पैरा 11)

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 स्वतंत्रता के बाद का ऐसा कानून है जिसको भारत की संसद् ने 1954 में बनाया था। इस कानून के उपबंध का निर्वचन करने के लिए इंग्लैण्ड के न्यायालयों द्वारा किए गए विनिश्चयों से मार्गदर्शन प्राप्त करने का कोई भी औचित्य नहीं है। धारा 37 में कोई भी सन्देह नहीं है जिसके निर्वचन के लिए स्वयं उपबंध से परे जाना आवश्यक है। निर्वचन के सुस्थिर सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त यह है कि न्यायालय का झुकाव डिक्री कायम रखने के पक्ष में होना चाहिए और इस बात की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए कि डिक्री के अधीन जो फायदे मिलने वाले हों, वे समाप्त हो जाएं, जब तक कि उसके लिए कोई विशेष कारण न हो। अधिनियम की धारा 37 की भांति किसी उपबन्ध को समाविष्ट करने में संसद् का आशय भरण-पोषण के संदाय के लिए उपबन्ध करके विवाह-विच्छेद के समय पत्नी की संरक्षा करना है। यदि पति ने अपनी मृत्यु के समय अपने पीछे सम्पदा छोड़ी है, तो इस दृष्टिकोण के लिए कोई भी न्यायोचित्य नहीं हो सकता कि डिक्री समाप्त हो गई है और वारिस उस डिक्री की तुष्टि करने के दायित्व के बिना उस सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करेंगे। (पैरा 12)

इस मत के समर्थन में कोई भी न्यायोचित्य नहीं दिखाई देता कि धारा 37 की उपधारा (2) में आई हुई 'किसी पक्षकार की प्रेरणा पर' अभिव्यक्ति पति और पत्नी तक ही सीमित होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं है कि भरण-पोषण का आदेश परिस्थितियों में तब्दीली होने के साथ रूपांतरित या विखंडित किया जा सकता है। उपधारा (3) में स्पष्ट रूप से यह उपबन्ध किया गया है कि पुनर्विवाह करने पर या यह निष्कर्ष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निकलने पर कि पत्नी सती जीवन नहीं बिता रही है, भरण-पोषण का आदेश विखंडित किया जा सकेगा। पति की मृत्यु होने पर उसकी सम्पदा उसके विधिक वारिसों को संक्रान्त हो जाती है और चूंकि विधानमण्डल का आशय स्पष्ट है कि पुनर्विवाह होने पर या सती जीवन न बिताने पर इस कानून द्वारा प्रदत्त फायदा समाप्त हो जाता है और सम्पदा भरण-पोषण की डिक्री की तुष्टि के दायित्व से मुक्त हो जानी चाहिए, इसलिए भरण-पोषण के आदेश में तब्दीली करने, उपांतरण करने या उसे विखंडित करने के लिए केवल वे ही आवेदन कर सकते हैं जिन्होंने पति की सम्पदा को उत्तराधिकार में प्राप्त किया है और वह सम्पदा दायित्व से मुक्त हो सकती है। इस मत को समर्थन देने के लिए उपबन्ध में कोई भी बात मौजूद नहीं है कि 'किसी पक्षकार' शब्दों को केवल पति या पत्नी तक ही सीमित रहना चाहिए। वास्तव में 'किसी पक्षकार' शब्दों की परिधि के भीतर ऐसे विधिक वारिस आते हैं जिन्होंने विधि के अधीन पति या पत्नी का स्थान लिया है और ऐसे व्यक्ति भरण-पोषण के आदेश में तब्दीली, उपांतरण या विखंडन की मांग करने के लिए भी सक्षम होंगे। उस पद के अन्तर्गत तत्समय विधिपूर्ण हक सहित सम्पदा के धारक भी हैं। (पैरा 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1957]	(1957) 1 आल इंग्लैण्ड रिपोर्ट्स 300 : सुगडन बनाम सुगडन (Sugden *v.* Sugden);	7
[1942]	(1942) 1 आल इंग्लैण्ड रिपोर्ट्स 234 : डिप्पल बनाम डिप्पल (Dipple *v.* Dipple);	7
[1886]	(1886) 11 पी० डी० 103 : स्टेनहोप बनाम स्टेनहोप (Stanhope *v.* Stanhope).	8

सिविल अपीली अधिकारिता : 1980 की सिविल अपील सं० 1997.

1979 के सिविल निर्देश सं० 1529 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 25 अप्रैल, 1980 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री शंकर घोष, सोभान टैगोर और पी० के० मुखर्जी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री एल० एन० सिन्हा, अटर्नी जनरल सर्वश्री सी० वी० सुब्बा राव और आर० एस० पोद्दार
प्रतिस्थापित प्रत्यर्थी की ओर से	श्री आर० बी० मेहरोत्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति रंगनाथ मिश्र ने दिया।

न्यायाधिपति मिश्र—

कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रमाणपत्र लेकर की गई इस अपील में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ है कि क्या विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 37 के अधीन स्थायी निर्वाहिका के लिए पारित डिक्री पति-निर्णीत-ऋणी की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाती है।

2. प्रत्यर्थी दोरोथिया और प्रफुल्ल कुमार मित्रा नाम के एक व्यक्ति का विवाह विशेष विवाह अधिनियम, 1872 के अधीन जनवरी, 1952 में हुआ। प्रत्यर्थी ने 1961 में विवाह-विच्छेद की मांग की और 2 मई, 1962 को इस प्रभाव की डिक्री अभिप्राप्त की : "पिटीशनर (दोरोथिया मित्रा) का प्रत्यर्थी प्रफुल्ल कुमार मित्रा से विवाह, विवाह-विरुद्ध की डिक्री द्वारा विघटित किया जाता है। पिटीशनर को प्रत्यर्थी से भरण-पोषण के रूप में 300 रुपए प्रति मास की रकम मिलेगी जो कि प्रत्येक आगामी के जिसके लिए वह देय है, प्रथम सप्ताह में संदत्त की जाएगी और वह उस समय तक मिलती रहेगी जब तक कि वह पुनर्विवाह नहीं कर लेती है..."। प्रत्यर्थी ने डिक्री के निष्पादन के लिए मामला दायर किया और उस मामले में समझौता हो गया तथा बकाया रकम के संदाय का कार्य किस्तों में किया जाना था। प्रफुल्ल कुमार मित्रा ने 31 मार्च, 1965 को विल निष्पादित की किन्तु उसमें भरण-पोषण की तुष्टि के लिए कोई भी उपबंध नहीं किया। उसकी मृत्यु 3 अप्रैल, 1965 को हुई और अपीलार्थी ने, जो कि विल में निष्पादिका थी, उसका सम्यक् रूप से प्रोबेट करवा लिया।

3. इस सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं है कि निष्पादिका ने प्रफुल्ल कुमार मित्रा की मृत्यु के पश्चात् वाली कालावधि के लिए दिसम्बर, 1975 में भरण-पोषण सदत्त किया था। किन्तु चूंकि उसके बाद कोई भी सदाय नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया गया था इसलिए प्रत्यर्थी ने 19,500 रुपए की रकम की बकाया की वसूली का दावा करते हुए वैवाहिक-मामला सं० 1/77 में निष्पादन की कार्यवाही की। अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन यह अभिवचन करते हुए उस दावे पर आक्षेप किया कि चूंकि निर्वाहिका का आदेश इस प्रकार का नहीं है जिसके आधार पर वह रकम (सम्पत्ति पर) भार हो, इसलिए प्रफुल्ल कुमार मित्रा की मृत्यु के पश्चात् तात्पयित डिक्रीदार का दावा निर्वापित हो गया है। निष्पादन न्यायालय ने इस आक्षेप को नामंजूर कर दिया जिसके बाद अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण-अधिकारिता का प्रयोग करने की प्रार्थना की। खण्ड न्यायपीठ, निष्पादन न्यायालय से सहमत हुई, किन्तु पुनरीक्षण पिटीशन खारिज करते हुए उसने इस न्यायालय में अपील करने का प्रमाणपत्र दे दिया।

4. जो एकमात्र संविवाद है, वह यह है कि क्या निर्वाहिका का आदेश प्रफुल्ल कुमार मित्रा की मृत्यु के साथ ही निर्वापित हो गया। स्वीकृततः अधिनियम की धारा 37 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए वह आदेश किया गया था। उसमें यह उपबंध किया गया है—

"37. स्थायी निर्वाहिका और भरण-पोषण—(1) अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई न्यायालय डिक्री पारित करते समय या डिक्री के पश्चात् किसी समय, उस प्रयोजन के लिए अपने से आवेदन किए जाने पर यह आदेश कर सकेगा कि पति, पत्नी के भरण-पोषण और संभाल के लिए, यदि आवश्यक हो तो पति की सम्पत्ति पर प्रभार द्वारा, ऐसी सकल राशि अथवा ऐसी मासिक या कालिक राशि पत्नी को जीवनकाल से अनधिक अवधि के लिए प्राप्त कराए जैसे स्वयं पत्नी की सम्पत्ति को, यदि कोई हो, उसके पति की सम्पत्ति और सामर्थ्य को और पक्षकारों के आचरण को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो।

(2) यदि जिला न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् किसी समय पक्षकारों में से किसी की परिस्थितियों में तब्दीली हो गई हो तो वह किसी पक्षकार की प्रेरणा पर, ऐसी रीति से जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, ऐसे किसी आदेश में फेरफार या उपान्तर कर सकेगा या उसे विखंडित कर सकेगा।

(3) यदि जिला न्यायालय का समाधान न हो जाए कि पत्नी ने, जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन आदेश दिया गया, पुनर्विवाह कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिया है या सती जीवन नहीं बिता रही है तो यह आदेश को विखंडित कर देगा।"

5. इस धारा की भाषा से यह निष्कर्ष न्यायोचित साबित नहीं होता है कि निर्णीत-ऋणी-पति की मृत्यु के बाद निर्वाहिका की डिक्री का निर्वापन हो जाता है। विधिज्ञ वर्ग की ओर से हमें यह बताया गया है कि इस मुद्दे के संबंध में कोई विनिश्चय भी नहीं है और इसी कारण से इस मामले का विनिश्चय करने के लिए इंग्लैण्ड के न्यायालयों द्वारा किए गए विनिश्चयों पर विचार करना चाहिए।

6. अधिनियम की धारा 37 इंग्लिश मैट्रीमोनियल केसेज ऐक्ट, 1950 की धारा 19, 20 और 22 के उपबंधों की, न्यूनाधिक रूप में, तत्स्थानी है, सिवाय इसके कि भारतीय अधिनियम की उपधारा (3) के लिए इंग्लैण्ड के अधिनियम में कोई भी तत्स्थानी उपबंध नहीं है। इंग्लैण्ड के अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (2) और (3) पर यदि गौर से नज़र डाली जाए तो उससे यह उपदर्शित होगा कि भरण-पोषण के संबंध में यह अपेक्षा की जा सकती है कि उसका संदाय पत्नी के ज़ीवन से अनधिक अवधि के लिए या पति और पत्नी के संयुक्त जीवनकाल के दौरान किया जाए। इंग्लैण्ड के अधिनियम की ये दोनों उपधाराएं निम्नलिखित रूप में हैं—

*"(2) विवाह-विच्छेद या अकृतता के लिए प्रस्तुत किसी भी पिटीशन के आधार पर यदि न्यायालय ठीक समझे, तो वह यह आदेश कर सकेगा कि पति, न्यायालय के समाधानानुकूल, पत्नी के लिए धन की ऐसी सकल राशि या वार्षिक राशि उसके जीवनकाल से अनधिक अवधि के लिए प्राप्त कराए जैसे कि स्वयं पत्नी की सम्पत्ति को, यदि कोई हो, उसके पति की सम्पत्ति और सामर्थ्य और पक्षकारों

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"(2). On any petition for divorce or nullity of marriage the Court may, if it thinks fit, order that the husband shall, to the satisfaction of the Court, secure to the wife such gross sum of money or annual sum for any term not exceeding her life, as having regard to her fortune, if any sum to the ability of the husband

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के आचरण को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत हो।

(3) विवाह-विच्छेद के या अकृतता के लिए की गई किसी भी डिक्री के आधार पर यदि न्यायालय ठीक समझे, तो वह आदेश द्वारा पति को यह निदेश दे सकेगा कि वह पत्नी को उनके संयुक्त जीवनकाल के दौरान पत्नी के भरण-पोषण और संभाल के लिए ऐसी मासिक या साप्ताहिक राशि का संदाय करे जैसा कि न्यायालय युक्तियुक्त समझे और ऐसा कोई आदेश अन्तिम पूर्वगामी उपधारा के अधीन किए गए किसी आदेश के अलावा या की बजाए हो सकेगा।"

7. हमने इंग्लैण्ड के किन्हीं अन्य कानूनों के प्रति भी निर्देश किया है जिनमें यह प्रभेद रखा गया है। संयुक्त जीवनों के दौरान संदाय के लिए किए गए निदेश की दशा में इस संबंध में कोई भी विवाद नहीं हो सकता है कि पति-पत्नी में से एक की मृत्यु होने पर, डिक्री के अधीन जो बाध्यता होती है वह समाप्त हो जाती है। इंग्लैण्ड के न्यायालयों ने यह मत अपनाया है कि वहां भी जहां निदेश पत्नी के जीवन के दौरान संदाय करने के लिए किया जाता है, वह पति की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है। हैल्सबरीज़ लाज़ ऑफ इंग्लैण्ड चतुर्थ संस्करण, खण्ड 13, पैरा 891 में यह कहा गया है कि "सावधिक संदायों के लिए सुरक्षा संबंधी निदेश देने वाले आदेश के अभाव में न्यायालय को किसी व्यक्ति के वैयक्तिक प्रतिनिधियों को यह आदेश देने की अधिकारिता नहीं होती है कि वे उसकी मृत्यु के बाद उसकी सन्तान को संदाय करे"। कोर्ट ऑफ अपील द्वारा सुगडन बनाम सुगडन[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय का अवलम्ब इस मत के समर्थन में लिया गया है।

---

and to the conduct of the parties, the court may deem to be reasonable.

(3). On any decree for divorce or nullity of marriage, the court may, if it thinks fit, by order direct the husband to pay to the wife, during their joint lives, such monthly or weekly sum for maintenance and support of the wife as the court may think reasonable, and any such order may either be in addition to or be instead of an order made under the last foregoing sub-section."

---

[1] (1957) 1 ऑल इंग्लैण्ड रिपोर्ट्स 300.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लार्ड डेन्निग ने इस महत्वपूर्ण निर्णय में यह मत व्यक्त किया था—

> "किसी मामूली कार्यवाही में यह अवधारित करने में कोई भी कठिनाई उस समय नहीं होती है जबकि अधिकार या दायित्व शोध्य हो जाते हैं; किन्तु डाइवोर्स कोर्ट में की जाने वाली कार्यवाही में अधिक कठिनाई होती है। उस न्यायालय में भरण-पोषण का खर्चे का या प्रत्याभूत व्यवस्था का या आजीविका का कोई भी अधिकार नहीं होता जब तक कि न्यायालय ऐसा निदेश देते हुए आदेश न करे। अतः ऐसे मामलों के लिए कोई भी वाद-हेतुक तब तक नहीं होता है जब तक कि आदेश न कर दिया जाए। इस दृष्टि से कि मृत्यु के समय वाद-हेतुक को विद्यमान रहना चाहिए, आदेश के अधीन जो अधिकार होना चाहिए उसे स्वयं मृत्यु के समय प्रोद्भूत होना चाहिए। इस प्रकार पति के विरुद्ध वाद-हेतुक उसकी मृत्यु के समय देय भरण-पोषण की बकाया के लिए विद्यमान रहता है न कि बाद में किए जाने वाले संदायों के लिए।"

डाइवोर्स कोर्ट में की जाने वाली कार्यवाही के संबंध में जो यह मत हैं, उसे डिप्पल बनाम डिप्पल[1] वाले मामले में जस्टिस हाडसन के विनिश्चय का समर्थन प्राप्त है, जिसमें उन्होंने यह मत व्यक्त किया था कि "जो कुछ भी पत्नी के पास था, वह यह आशा थी कि न्यायालय, अपने विवेकानुसार सुरक्षित व्यवस्था के लिए आदेश करेगा...। प्रस्तुत मामले में पिता की मृत्यु के समय उसके विरुद्ध कोई भी अधिकार या दायित्व विद्यमान नहीं था। उसने उस समय तक हर बात का समर्थन कर दिया था। यदि उस समय उसके द्वारा संदेय भरण-पोषण की कोई भी रकम बकाया रही होगी तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह बकाया 1934 वाले ऐक्ट की धारा 1(1) के अधीन उसकी मृत्यु के बाद उसकी सम्पदा द्वारा संदेय होगी; किन्तु कोई भी बकाया रकम नहीं थी जो कि 1934 वाले ऐक्ट की परिधि के भीतर आती हो। उसकी मृत्यु के पश्चात् भरण-पोषण का अधिकार स्वयं आदेश के पदों से ही प्राप्त होना चाहिए या बिल्कुल ही नहीं।" सुगडन[2] वाले मामले में किए गए आदेश के अधीन पत्नी के लिए एक वर्ष तक का भरण-पोषण उनके संयुक्त जीवन के दौरान पति द्वारा संदेय था। इसी कारण से आदेश के पदों के आधार पर वह दायित्व पति की मृत्यु होने पर समाप्त हो गया था।

---

1 (1942) 1 ऑल इंग्लैण्ड रिपोर्ट्स 234.

2 (1957) 1 ऑल इंग्लैण्ड रिपोर्ट्स 300.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

8. अपीलार्थी की ओर से श्री घोष की इस दलील को स्वीकार करने में हमें कोई कठिनाई नहीं है कि किसी भी पक्षकार की मृत्यु पर विवाह संबंधी कार्यवाहियों का उपशमन हो जाता है और विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया जा सकता तथा कार्यवाहियों को और आगे जारी नहीं रखा जा सकता। स्टेनहोप बनाम स्टेनहोप[1] वाले मामले में लार्ड जस्टिस बोवेन ने बहुत ही उचित रूप से यह मत व्यक्त किया था—

> "जिस प्रकार किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसका विवाह नहीं हो सकता या उसे दण्डादिष्ट नहीं किया जा सकता उसी प्रकार उसकी मृत्यु के बाद उसका विवाह-विच्छेद भी नहीं हो सकता। विवाह पति और पत्नी के संयुक्त जीवन के लिए उनका संयोग होता है, जब तक कि उसका विघटन शीघ्र ही न कर दिया जाए और न्यायालय ऐसे संयोग का विघटन नहीं कर सकता जो पहले ही समाप्त हो गया हो। कोई भी व्यक्ति ऐसे विवाह का विघटन नहीं कर सकता जो कि परमात्मा के कार्य के परिणामस्वरूप विघटित हो गया। यदि प्रारम्भिक डिक्री कर दी गई है और उस डिक्री के आत्यंतिक किए जाने के पूर्व ही पति की मृत्यु हो जाती है, तो वह उस समय मरता है जबकि वह विधि की दृष्टि से पति रहता है और उसकी पत्नी उसकी विधवा हो जाती है। इस प्रकार कोई डिक्री कैसे की जा सकती है जो कि किसी विवाह को मृत्यु के कारण विघटित कर देगी और उस बंधन को मुक्त कर देगी जो कि अब रह ही नहीं गया है। ऐसी स्त्री जो कि विधवा है, किस प्रकार विच्छिन्न विवाह स्त्री के रूप में संपरिवर्तित की जा सकती है जब तक कि ऐसी कोई अधिनियमिति न हो जो ऐसे भूतलक्षी प्रभाव वाला आदेश करने में न्यायालय को समर्थ बनाती हो ?"

9. इस प्रक्रम में जो प्रश्न पूछा जाना है वह यह है कि जब वैवाहिक कार्यवाही पति या पत्नी में से किसी की मृत्यु हो जाने पर समाप्त हो जाती है जहां कि कार्यवाही समाप्त हो गई है और डिक्री दे दी गई है क्या उस डिक्री का भी उपशमन हो जाएगा।

10. इस सम्बन्ध में कोई भी सन्देह नहीं हो सकता और हमारे समक्ष ठीक तौर से ही यह बात स्वीकार कर ली गई है कि जहां भरण-पोषण पति की सम्पदा पर भार बनाया गया है, वहां पति की मृत्यु का प्रभाव डिक्री

[1] (1886) 11 पी० डी० 103.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर नहीं पड़ेगा और ऐसी मृत्यु के बावजूद भी ऐसी सम्पदा के विरुद्ध मृत्यु के पश्चात् वाली कालावधि के लिए भरण-पोषण विषयक देय रकम की वसूली के लिए कार्यवाही की जा सकेगी।

11. श्री घोष को यह बात माननी ही पड़ी कि यदि किसी सिविल अनुयोजन के परिणामस्वरूप कोई डिक्री की जाती है तो मृत्यु के परिणामस्वरूप वह डिक्री समाप्त नहीं हो जाएगी। यदि किसी वैवाहिक विवाद के परिणामस्वरूप कोई डिक्री की जाती है तो उसका उपशमन नहीं होगा और निर्णीत-ऋणी सम्पदा में से उसकी तुष्टि की जाएगी और निर्वाहिका या भरण-पोषण की डिक्री का उपशमन तब तक नहीं होगा जब तक कि वह पति की सम्पदा पर भार न हो तो हमने श्री घोष से यह कहा कि वे अपनी इस दलील को न्यायोचित उपदर्शित करें कि ऐसा भरण-पोषण या निर्वाहिका की डिक्री का जो कि पति की सम्पदा पर भारित नहीं है, पति की मृत्यु के पश्चात् उपशमन हो जाएगा। इंग्लैण्ड के न्यायालयों द्वारा किए गए विनिश्चयों का अवलम्ब लेने के अलावा ही घोष कोई स्वतंत्र कारण उपदर्शित नहीं कर सके। हमें अपने समक्ष प्रस्तुत मामलों में कोई विधिक सिद्धांत नहीं मिल सका सिवाय इसके कि इंग्लैण्ड के न्यायालयों ने जो मत अपनाया है वह नजीरों पर आधारित प्रतीत होता है। इस दलील में कोई भी तर्कसंगति दिखाई नहीं पड़ती कि भरण-पोषण या निर्वाहिका की डिक्री पति की मृत्यु के साथ उस समय निर्वापित हो जाती है, जब कि कोई अन्य डिक्री, भले ही वह पति की सम्पत्ति पर भारित न हो, इस प्रकार निर्वापित नहीं हो जाएगी। पति के विरुद्ध की गई डिक्री वारिसों के हाथ में पति की सम्पदा के विरुद्ध निष्पाद्य होगी और कोई भी स्वीय दायित्व नहीं होगा। विधि की दृष्टि से भरण-पोषण विषयक डिक्री से कोई भी अन्तर नहीं पड़ेगा। डिक्री से यह उपदर्शित होता है कि भरण-पोषण विधवा के जीवनकाल के दौरान संदेय था। पति की मृत्यु को ऐसी डिक्री का आधार बनाना डिक्री के पदों और उसकी भावना के प्रतिकूल है और अपीलार्थी ने यह आधार अपनाया है कि यद्यपि विधवा जीवित है, तथापि उसके द्वारा अभिप्राप्त डिक्री पति की मृत्यु के साथ ही अप्रभावी हो जाएगी।

12. विशेष विवाह अधिनियम स्वतन्त्रता के बाद का ऐसा कानून है। जिसको भारत की संसद् ने 1954 में बनाया था। इस कानून के उपबंध का निर्वचन करने के लिए इंग्लैण्ड के न्यायालयों द्वारा किए गए विनिश्चयों से मार्गदर्शन प्राप्त करने का कोई भी औचित्य नहीं है। धारा 37 में कोई भी सन्देह नहीं है जिसके निर्वचन के लिए स्वयं उपबन्ध से परे जाना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आवश्यक है। निर्वचन के सुस्थिर सिद्धांतों में से एक सिद्धांत यह है कि न्यायालय का झुकाव डिक्री कायम रखने के पक्ष में होना चाहिए और इस बात की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए कि डिक्री के अधीन जो फायदे मिलने वाले हों, वे समाप्त हो जाएं, जब तक कि उसके लिए कोई विशेष कारण न हो। अधिनियम की धारा 37 की भांति किसी उपबंध को समाविष्ट करने में संसद् का आशय भरण-पोषण के संदाय के लिए उपबन्ध करके विवाह-विच्छेद के समय पत्नी की संरक्षा करना है। यदि पति ने अपनी मृत्यु के समय अपने पीछे सम्पदा छोड़ी है, तो इस दृष्टिकोण के लिए कोई भी न्यायोचित नहीं हो सकता कि डिक्री समाप्त हो गई है और वारिस उस डिक्री की तुष्टि करने से दायित्व के बिना उस सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करेंगे।

13. हम कलकत्ता उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत होना चाहेंगे कि प्रस्तुत मामले में जो डिक्री थी वह प्रफुल्ल कुमार मित्रा की मृत्यु के साथ निर्वापित हो गई थी और उसने विधिक वारिस के हाथ में जो आस्तियां अपने पीछे छोड़ी थीं, उनके विरुद्ध भरण-पोषण की डिक्री की तुष्टि के लिए कार्यवाही की जाएगी।

14. कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई थी कि धारा 37 की उपधारा (2) में आई हुई 'किसी पक्षकार की प्रेरणा पर' अभिव्यक्ति की परिधि के भीतर पति और पत्नी दोनों आते हैं और कोई नहीं आता और इस अभिव्यक्ति को जो अर्थ दिया गया है, उससे इस दलील को समर्थन प्राप्त होता है कि आशय यह था कि भरण-पोषण का आदेश पति के जीवनकाल के दौरान ही कायम रहना चाहिए। उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न को अनिर्णीत छोड़ दिया था। तथापि हमें इस मत के समर्थन में कोई भी न्यायोचित्य नहीं दिखाई देता कि यह अभिव्यक्ति पति और पत्नी तक ही सीमित होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं है कि भरण-पोषण का आदेश परिस्थितियों में तब्दीली होने के साथ उपांतरित या विखंडित किया जा सकता है। उपधारा (3) में स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि पुनर्विवाह करने पर या यह निष्कर्ष निकलने पर कि वह सती जीवन नहीं बिता रही है, भरण-पोषण का आदेश विखंडित किया जा सकेगा। पति की मृत्यु होने पर उसकी सम्पदा उसके विधिक वारिसों को संक्रांत हो जाती है और चूंकि विधानमंडल का आशय स्पष्ट है कि पुनर्विवाह होने पर या सती जीवन न बिताने पर इस कानून द्वारा प्रदत्त फायदा समाप्त हो जाता है और सम्पदा भरण-पोषण की डिक्री की तुष्टि के दायित्व से मुक्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो जानी चाहिए, इसलिए भरण-पोषण के आदेश में तब्दीली करने, उपांतरण करने या उसे विखंडित करने के लिए केवल वे ही आवेदन कर सकते हैं जिन्होंने पति की सम्पदा को उत्तराधिकार में प्राप्त किया है और वह सम्पदा दायित्व से मुक्त हो सकती है। इस मत को समर्थन देने के लिए उपबन्ध में कोई भी बात मौजूद नहीं है कि 'किसी पक्षकार' शब्दों को केवल पति या पत्नी तक ही सीमित रहना चाहिए। इस कानून की युक्ति तथा उस प्रयोजन की परीक्षा करते हुए जिसके लिए ऐसा उपबन्ध किया गया है, हम प्रत्यर्थी के विद्वान काउन्सेल से सहमत होना चाहेंगे कि 'किसी पक्षकार' शब्दों की परिधि के भीतर ऐसे विधिक वारिस आते हैं जिन्होंने विधि के अधीन पति या पत्नी का स्थान लिया है और ऐसे व्यक्ति भरण-पोषण के आदेश में तब्दीली, उपांतरण या विखंडन की मांग करने के लिए भी सक्षम होंगे। उस पद के अन्तर्गत तत्समय विधिपूर्ण हक सहित सम्पदा के धारक भी हैं। यदि इस अभिव्यक्ति का यह अर्थ दिया जाता है, तो श्री घोष पति या पत्नी तक ही इस अभिव्यक्ति को सीमित करके और यह दलील देकर जो समर्थन प्राप्त करना चाहते थे, कि उससे यह विधायी आशय प्रकट होता है कि भरण-पोषण का आदेश केवल पति के जीवनकाल तक ही रहना चाहिए, उसमें कोई भी बल नहीं रह जाता है।

15. तदनुसार हम अपील खारिज करते हैं और कलकत्ता उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हैं। प्रत्यर्थी प्रारम्भ से अंत तक खर्चा प्राप्त करने की हकदार होगी।

अपील खारिज की गई।

श्री०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मांगे राम
वनाम
बृज मोहन और अन्य

(Mange Ram
v.
Brij Mohan and Others)

(3 अगस्त, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)—आदेश 16, नियम 1 और 1-क [सपठित लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 87 (1) का परन्तुक]—निर्वाचन-अर्जी—अपीलार्थी-अर्जीदार द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने की तारीख को अपने साक्षियों को न्यायालय में पेश किया जाना—उच्च न्यायालय द्वारा उसकी इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया जाना कि जिन साक्षियों के नाम साक्षी-सूची में नहीं दिए गए हैं, उनका साक्ष्य ले लिया जाए—यह तथ्य कि कतिपय साक्षियों के नाम साक्षी-सूची में नहीं दिए गए हैं, तात्विक नहीं है—ऐसे साक्षियों को भी साक्ष्य देने की इजाजत दी जानी चाहिए जिनके नामों का उल्लेख साक्षियों की सूची में नहीं था।

अपीलार्थी ने जींद विधानसभा निर्वाचन-क्षेत्र से हरियाणा विधानसभा का निर्वाचन लड़ा था। 14 व्यक्तियों ने उस निर्वाचन में अभ्यर्थी के रूप में अपने को पेश किया था। प्रत्यर्थी सं० 1 को निर्वाचित घोषित किया गया। अपीलार्थी निर्वाचन हार गया। बचे हुए अभ्यर्थियों की जमानतें जब्त हो गईं। अपीलार्थी ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 81 के अधीन निर्वाचन-अर्जी उपस्थापित करके प्रथम प्रत्यर्थी (निर्वाचित अभ्यर्थी) के निर्वाचन को प्रश्नगत किया। इस अर्जी में निर्वाचित अभ्यर्थी तथा उन सभी अन्य अभ्यर्थियों को जो निर्वाचन में हार गए थे, पक्षकारों के रूप में शामिल किया गया। उस निर्वाचन-अर्जी में अ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आचरण और निर्वाचन के संचालन में अनियमितताओं तथा अवैधताओं के सम्बन्ध में आरोप लगाए गए। निर्वाचित अभ्यर्थी ने उस निर्वाचन का विरोध किया। पक्षकारों के अभिवचनों की सुनवाई करने के बाद न्यायालय ने वे मुद्दे अभिनिश्चित कर दिए जिनके सम्बन्ध में पक्षकारों में मत-वैभिन्न था और उसने समुचित विवाद्यक विरचित किए। निर्वाचन अर्जी साक्ष्य के अभिलिखित करने के प्रक्रम में पहुंच गई। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी निर्वाचन-अर्जीदार ने ऐसे साक्षियों को, जिनके नाम आवेदन में उपवर्णित किए हुए थे, पेश करने और उनकी परीक्षा करने की अनुज्ञा मांगते हुए आवेदन फाइल किया था। आवेदन में यह प्रकथन किया गया था कि ऐसे साक्षियों के नाम जिन्हें वे पेश करना चाहते हैं, निर्वाचन-अर्जी के समुचित पैराओं में पहले ही उल्लिखित हैं और यह कि अर्जीदार उन साक्षियों को उपस्थित रखेगा। जिस विद्वान् न्यायाधीश को वह निर्वाचन-अर्जी समनुदिष्ट की गई थी, उसने 29 नवम्बर, 1982 को यह आदेश किया कि जैसे और जब साक्षी पेश किए जाएंगे, यह अवधारित करते हुए समुचित आदेश दिए जाएंगे कि क्या साक्षी पेश किए जा सकते हैं या नहीं। इसी बीच निर्वाचन-अर्जीदार का साक्ष्य अभिलिखित किया जाता रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि 11 जनवरी, 1983 को अर्जीदार ने न्यायालय को पुनः यह सूचना देते हुए साक्षियों की सूची प्रस्तुत की कि वह उनकी परीक्षा करना चाहता है। निर्वाचित-अभ्यर्थी ने उस पर आपत्ति की। विद्वान् न्यायाधीश ने पक्षकारों की सुनवाई करने के बाद निर्वाचित अर्जीदार द्वारा किए गए आक्षेप को कायम रखते हुए यह आदेश किया कि जिस प्रयोजन के लिए साक्षी पेश किए जाने वाले थे, उसका उल्लेख सूची में नहीं किया गया है और इसी कारण से, निर्वाचन-अर्जीदार को ऐसे साक्षियों की परीक्षा करने की इजाजत नहीं दी जा सकती। न्यायालय ने इसके अलावा यह भी मत व्यक्त किया कि निर्वाचन अर्जीदार को और अधिक ऐसे साक्षियों की परीक्षा करने की इजाजत नहीं दी जा सकती जिनके नामों का उल्लेख सिविल प्रक्रिया संहिता और उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के सुसंगत उपबन्धों के अनुसार प्रस्तुत साक्षियों की सूची में नहीं किया गया है। तदनुसार, विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि एक साक्षी को छोड़कर, किसी भी अन्य साक्षी की परीक्षा नहीं की जा सकती और यह कि जैसे ही पूर्व-उल्लिखित साक्षियों का साक्ष्य अभिलिखित कर लिया जाएगा, वैसे ही न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी की ओर से पेश किए जाने वाले साक्ष्य को अभिलिखित करने की कार्यवाही करेगा। और उसके बाद यह मामला दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेल की मौखिक दलीलों की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुनवाई करने के लिए हाथ में लिया जाएगा । विशेष इजाजत लेकर की गई इस अपील में इसी आदेश को प्रश्नगत किया गया है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—जहां कि पक्षकार न्यायालय के जरिए समन किए जाने पर किसी साक्षी की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए न्यायालय की सहायता चाहता है, वहां उस पक्षकार पर, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 16 के नियम 1 के उपनियम (1) द्वारा निदेश दिया गया है, न्यायालय में साक्षी के साक्ष्य सहित सूची फाइल करना और नियम 1 के उपनियम (2) द्वारा यथाउपबंधित आवेदन करना बाध्यकारी है । जहां कि पक्षकार न्यायालय की सहायता के बिना अपने साक्षियों को पेश करने की स्थिति में है, वहां वह इस तथ्य को विचार में लाए बिना कि क्या ऐसे साक्षी के नाम का उल्लेख सूची में है या नहीं, आदेश 16 के नियम 1-क के अधीन ऐसा कर सकता है । (पैरा 9)

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 16 के नियम 1 के उपनियम (1) और नियम 1-क के बीच कोई भी आन्तरिक विरोध नहीं है । आदेश 16 के नियम 1 का उपनियम (3) न्यायालय को ऐसी स्थिति के सम्बन्ध में कार्यवाही करने की अधिक विस्तृत अधिकारिता प्रदत्त करता है जहां कि पक्षकार सूची में साक्षी का नाम देने में असफल रहा है किन्तु फिर भी वह पक्षकार नियम 1-क के अधीन स्वयं ही उस साक्षी को पेश करने में असमर्थ रहता है और ऐसी स्थिति में ऐसे पक्षकार को आवश्यक रूप से साक्षी की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए उपनियम (3) के अधीन न्यायालय की सहायता लेनी पड़ती है और यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि पक्षकार के पास नियम 1 के उपनियम (1) के अधीन फाइल की गई सूची में ऐसे साक्षी के नाम का उल्लेख करने में हुए लोप के लिए पर्याप्त कारण मौजूद हैं, तो वह न्यायालय के जरिए या अन्यथा समन निकाल कर ऐसे साक्षी की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए अपनी सहायता दे सकता है, जो कि मामूली तौर से न्यायालय ऐसे साक्षियों की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए नहीं देता है जिसका नाम सूची में नहीं दर्शित किया गया है । अतः नियम 1 का उपनियम (3) और नियम 1-क भिन्न-भिन्न दो क्षेत्रों में प्रवर्तित होते हैं और अलग-अलग दो स्थितियों के संबंध में उपबंध करते हैं । (पैरा 10)

यदि साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए नियत तारीख को पक्षकार इस तथ्य के बावजूद कि साक्षियों के नाम नियम 1 के उपनियम (1) के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधीन फाइल की गई सूची में नहीं दिखाए गए हैं, अपने साक्षियों को उपस्थित रखने में समर्थ है, तो ऐसा पक्षकार ऐसे साक्षियों की परीक्षा करने और उन साक्षियों के जरिए दस्तावेज पेश कराने का हकदार है जो कि नियम 1-क के अधीन दस्तावेज़ पेश करने लिए बुलाए गए हों। साक्षियों की परीक्षा करने से इन्कार करने की न्यायालय की जो एकमात्र अधिकारिता है, वह लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1981 की धारा 87 के परन्तुक में उपवर्णित है और वह विवेकाधिकार इस आधार पर साक्षियों की परीक्षा करने से इन्कार करने तक ही सीमित है कि वह साक्ष्य या तो तुच्छ है या तंग करने वाला है या ऐसा साक्ष्य कार्यवाहियों में विलम्ब करने के लिए पेश किया गया है, इनको छोड़कर न्यायालय को पक्षकार द्वारा पेश किए गए ऐसे साक्षियों को जिन्हें कि उस समय उपस्थित रखा गया है, जबकि पक्षकार का साक्ष्य अभिलिखित किया जा रहा है और अभी भी बन्द नहीं हुआ है, परीक्षा करने से इन्कार करने की कोई भी अधिकारिता नहीं है और न्यायालय को ऐसे साक्षी की, जो कि न्यायालय में उपस्थित है, परीक्षा करने से इस आधार पर इनकार करने की कोई अधिकारिता नहीं है कि ऐसे साक्षी का नाम आदेश 16 के नियम 1 के उपनियम (1) के अधीन फाइल की गई सूची में उल्लिखित नहीं है। यदि विभिन्न उपबन्धों की स्कीम वैसे ही है जैसा कि यहां पर विवेचन किया गया है, तो स्पष्टतः विद्वान् न्यायाधीश का आदेश पूर्णतः कायम किए जाने लायक है। उसने निर्वाचित अभ्यर्थी की इस दलील को स्वीकार करके साक्षी की परीक्षा करने से इनकार किया है कि ऐसे साक्षियों के नामों का उल्लेख, जिन्हें अपीलार्थी ने न्यायालय में उपस्थित रखा था, सूची में नहीं किया गया है। यह केवल एकमात्र ऐसा आधार है जिस पर विद्वान् न्यायाधीश ने उसके ऐसे साथियों की जोकि न्यायालय में उपस्थित रखे गए थे, परीक्षा करने के लिए अपीलार्थी को अनुज्ञा देने से इनकार किया था और यह आधार पूर्णतः कायम किए जाने के लायक नहीं है। अतः विद्वान् न्यायाधीश का आदेश अभिखंडित करना होगा। (पैरा 11 और 12)

सिविल अपीली अधिकारिता : 1983 की सिविल अपील सं० 4379.

1983 के विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 3172 के परिणामस्वरूप की गई अपील।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया ।

न्यायाधिपति देसाई—

3 मई, 1983 को हमने निम्नलिखित आदेश किया था—

"विशेष इजाजत दी जाती है । अपील मंजूर की जाती है ।

उच्च न्यायालय के इस आदेश में जिसके द्वारा अपीलार्थी का, ऐसे उसके 54 साक्षियों की परीक्षा करने सम्बन्धी निवेदन से इनकार कर दिया गया था, जो कि उसके मतानुसार, उपस्थित किए गए थे, परिवर्तन किया जा रहा है । यहां पर जो निर्वाचन अर्जीदार (अपीलार्थी) वह उन सभी साक्षियों को पेश करेगा और उनमें से सभी या किन्हीं ऐसे साक्षियों की जिनको कि वह चाहे, परीक्षा कर सकेगा और उनके सम्बन्ध में जिनकी परीक्षा करने की न्यायालय ने अनुज्ञा नहीं दी थी, परीक्षा कर सकेगा । साक्षियों की परीक्षा दिन-प्रति-दिन की जाएगी । उनमें से सभी या किन्हीं की उपस्थिति उपाप्त करने के लिए न्यायालय की कोई भी सहायता दिए जाने की आवश्यकता नहीं है और उनकी परीक्षा उस तारीख से प्रारम्भ होकर जिसको उच्च न्यायालय साक्षियों की परीक्षा प्रारम्भ करता है, 7 दिनों की अवधि के भीतर पूरी कर ली जाएगी । विद्वान् न्यायाधीश और पक्षकारों की सुविधा का ध्यान रखते हुए साक्ष्य को अभिलिखित करने का कार्य उच्च न्यायालय के ग्रीष्मकालीन अवकाश के पूर्वार्द्ध में हाथ में लिया जाए ।

इस मामले की परिस्थितियों में खर्चे के सम्बन्ध में कोई भी आदेश नहीं किया जा रहा है । इसके कारण बाद में बताए जाएंगे ।"

वे कारण ये हैं—

2. अपीलार्थी श्री मांगेराम ने जींद विधानसभा निर्वाचन-क्षेत्र से हरियाणा विधानसभा का निर्वाचन लड़ा था । 14 व्यक्तियों ने उस निर्वाचन में अभ्यर्थी के रूप में अपने को पेश किया था । श्री बृज मोहन नाम के एक व्यक्ति, प्रत्यर्थी सं० 1 को निर्वाचित घोषित किया गया । अपीलार्थी निर्वाचन हार गया । बचे हुए अभ्यर्थियों की जमानतें जब्त हो गईं । अपीलार्थी ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (जिसे संक्षेप में 1951 वाला अधिनियम कहा गया है) की धारा 81 के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधीन निर्वाचन अर्जी उपस्थापित करके प्रथम प्रत्यर्थी (निर्वाचित अभ्यर्थी) के निर्वाचन को प्रश्नगत किया। इस अर्जी में निर्वाचित अभ्यर्थी तथा उन सभी अन्य अभ्यर्थियों को जो निर्वाचन में हार गए थे, पक्षकारों के रूप में शामिल किया गया। उस निर्वाचन अर्जी में भ्रष्ट आचरण और निर्वाचन के संचालन में अनियमितताओं तथा अवैधताओं के सम्बन्ध में आरोप लगाए गए। निर्वाचित अभ्यर्थी ने उस निर्वाचन का विरोध किया। पक्षकारों के अभिवचनों की सुनवाई करने के बाद न्यायालय ने वे मुद्दे अभिनिश्चित कर दिए जिनके संबंध में पक्षकारों में मत-वैभिन्न था और उसने समुचित विवाद्यक विरचित किए। निर्वाचन अर्जी साक्ष्य के अभिलिखित करने के प्रक्रम में पहुंच गई।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी-निर्वाचन अर्जीदार ने ऐसे साक्षियों को जिनके नाम आवेदन में उपवर्णित किए हुए थे, पेश करने और उनकी परीक्षा करने की अनुज्ञा मांगते हुए आवेदन फाइल किया था, आवेदन में यह प्रकथन किया गया था, कि ऐसे साक्षियों के नाम जिन्हें वे पेश करना चाहते हैं, निर्वाचन-अर्जी के समुचित पैराओं में पहले ही उल्लिखित हैं और यह कि अर्जीदार उन साक्षियों को उपस्थित रखेगा। जिस विद्वान् न्यायाधीश को यह निर्वाचन-अर्जी समनुदिष्ट की गई थी, उसने 29 नवम्बर, 1982 को यह आदेश किया कि जैसे और जब साक्षी पेश किए जाएंगे, यह अवधारित करते हुए समुचित आदेश दिए जाएंगे कि क्या साक्षी पेश किए जा सकते हैं या नहीं। इसी बीच निर्वाचन-अर्जीदार का साक्ष्य अभिलिखित किया जाता रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि 11 जनवरी, 1983 को अर्जीदार ने न्यायालय को पुनः यह सूचना देते हुए साक्षियों की सूची प्रस्तुत की कि वह उनकी परीक्षा करना चाहता है। निर्वाचित-अभ्यर्थी ने उस पर आपत्ति की। विद्वान् न्यायाधीश ने पक्षकारों की सुनवाई करने के बाद निर्वाचित-अर्जीदार द्वारा किए गए आक्षेप को कायम रखते हुए यह आदेश किया कि जिस प्रयोजन के लिए साक्षी पेश किए जाने वाले थे, उसका उल्लेख सूची में नहीं किया गया है और इसी कारण से, निर्वाचन अर्जीदार को ऐसे साक्षियों की परीक्षा करने की इजाज़त नहीं दी जा सकती। न्यायालय ने इसके अलावा यह भी मत व्यक्त किया कि निर्वाचन-अर्जीदार को और अधिक ऐसे साक्षियों की परीक्षा करने की इजाज़त नहीं दी जा सकती जिनके नामों का उल्लेख सिविल प्रक्रिया संहिता और उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के सुसंगत उपबन्धों के अनुसार प्रस्तुत साक्षियों की सूची में नहीं किया गया है। तदनुसार, विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि शेर सिंह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के पुत्र बहरे को छोड़कर, किसी भी अन्य साक्षी की परीक्षा नहीं की जा सकती और यह कि जैसे ही पूर्व-उल्लिखित साक्षियों का साक्ष्य अभिलिखित कर लिया जाएगा, वैसे ही न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी की ओर से पेश किए जाने वाले साक्ष्य को अभिलिखित करने की कार्यवाही करेगा; और उसके बाद यह मामला दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेल की मौखिक दलीलों की सुनवाई करने के लिए हाथ में लिया जाएगा। विशेष इजाजत लेकर की गई इस अपील में इसी आदेश को प्रश्नगत किया गया है।

4. 1951 वाले अधिनियम की धारा 81 के अधीन उपस्थापित की गई निर्वाचन-अर्जी की धारा 83 और 84 की अपेक्षाओं की पूर्ति अवश्य ही करनी होगी। 1951 के अधिनियम के भाग 4 के अध्याय 3 में निर्वाचन-अर्जी के विचारण की प्रक्रिया अधिकथित की गई है। धारा 87 जो कि हमारे प्रस्तुत प्रयोजन के लिए तात्विक है, निम्नलिखित रूप में है—

> "87. **उच्च न्यायालय के समक्ष प्रक्रिया**—(1) इस अधिनियम के और तद्धीन बनाए गए किन्हीं भी नियमों के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए, हर निर्वाचन अर्जी उच्च न्यायालय द्वारा यथाशक्य निकटतम उस प्रक्रिया के अनुसार विचारित की जाएगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन वादों के विचारण को लागू है :
>
> परन्तु उच्च न्यायालय को यह विवेकाधिकार होगा कि वह उन कारणों से जो लेखन द्वारा अभिलिखित किए जाएंगे किसी साक्षी या साक्षियों की परीक्षा करने से इनकार कर दे यदि, उसकी यह राय हो कि ऐसे साक्षी या साक्षियों का साक्ष्य अर्जी के विनिश्चय के लिए तात्विक नहीं है या यह कि ऐसे साक्षी या साक्षियों को पेश करने वाला पक्षकार तुच्छ आधारों पर या कार्यवाहियों को विलंबित करने कि दृष्टि से ऐसा कर रहा है।
>
> (2) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) के उपबन्ध इस अधिनियम के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए सब प्रकार निर्वाचन अर्जी के विचारण को लागू होंगे, यह समझा जाएगा।"

5. आदेश 16, नियम 1, जिसका निर्वाचित अभ्यर्थी की ओर से अवलम्ब लिया गया है, निम्नलिखित रूप में है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1. साक्षियों की सूची और साक्षियों को समन—

(1) ऐसी तारीख को या उसके पूर्व जो न्यायालय नियत करे और जो विवाद्यकों का निपटारा कर दिए जाने से पन्द्रह दिन पश्चात् न हो, पक्षकार न्यायालय में ऐसे साक्षियों की सूची पेश करेंगे जिन्हें वे या तो साक्ष्य देने के लिए या दस्तावेज़ों को पेश करने के लिए बुलाने की प्रस्थापना करते हैं और न्यायालय से ऐसे व्यक्तियों को हाजिरी के लिए उनके नाम समन अभिप्राप्त करेंगे।

(2) यदि कोई पक्षकार किसी व्यक्ति की हाजिरी के लिए कोई समन अभिप्राप्त करना चाहता है तो वह पक्षकार न्यायालय में आवेदन उसमें उस प्रयोजन का कथन करते हुए फाइल करेगा जिसके लिए साक्षी को समन किया जाना प्रस्थापित है।

(3) न्यायालय कारण अभिलिखित करते हुए पक्षकार को किसी ऐसे साक्षी की जो उपनियम (1) में निर्दिष्ट सूची में वर्णित नामों से भिन्न हो, चाहे न्यायालय की मार्फत समन द्वारा या अन्यथा बुलाने की अनुमति केवल तभी दे सकेगा जब ऐसा पक्षकार उक्त सूची में ऐसे साक्षी के नाम का वर्णन करने में लोप के लिए पर्याप्त कारण दर्शित कर दे।

(4) उपनियम (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, इस नियम में निर्दिष्ट समन पक्षकारों द्वारा न्यायालय से या ऐसे अधिकारी से जो न्यायालय द्वारा इस निमित्त नियुक्त किया जाए, आवेदन कर के अभिप्राप्त किए जा सकेंगे।

समन के बिना साक्षियों का पेश किया जाना—

1 क. नियम 1 के उपनियम (3) के उपबन्ध के अधीन रहते हुए, वाद का कोई पक्षकार नियम 1 के अधीन समन के लिए आवेदन किए बिना किसी साक्षी को साक्ष्य देने या दस्तावेज़ें पेश करने के लिए ला सकेगा।"

नियम 1-क सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा अन्तःस्थापित किया गया था। नियम 1 और नियम 1-क दोनों का ही संशोधन बड़े पैमाने पर संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा किया गया था जो कि 1 फरवरी, 1977 को प्रवृत्त हुआ। नियम 1 और 1-क जो कि इसमें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके पूर्व प्रोद्धृत किए गए हैं, 1 फरवरी, 1977 से प्रवृत्त संशोधित नियम हैं।

6. अपील की सुनवाई के समय यह कथन किया गया कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने आदेश 16 के नियम 1 के उपनियम (4) में एक परन्तुक अन्तःस्थापित किया है। वह निम्नलिखित रूप में है—

> *"परन्तु कोई भी ऐसा पक्षकार जिसने अपने साक्षियों को समन करना आरम्भ कर दिया है, किसी ऐसे साक्षी की, जिसके विरुद्ध पहले आदेशिका नहीं निकाली गई है, हाजिरी प्रवृत्त कराने के लिए या ऐसी सूची में जो कि न्यायालय में उस तारीख को या उसके पूर्व अवश्य ही फाइल की जानी चाहिए, अनामित किसी साक्षी को पेश करने के लिए, जिसको उसकी ओर से साक्ष्य की सुनवाई आरम्भ हुई है, तथा लिखित रूप में और उसके लिए कारण बताते हुए न्यायालय का कोई आदेश किए बिना ऐसे साक्ष्य की सुनवाई वास्तविक रूप से प्रारम्भ होने के पूर्व, आदेशिका अभिप्राप्त करने का हकदार नहीं होगा।"

लेटर्स पेटेन्ट के खण्ड 27 और 35 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 129 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने 'रूल्स ऑफ प्रासिजर एण्ड गाइडेंस इन दि मैटर ऑफ ट्राइल ऑफ इलेक्शन पिटीशन अण्डर पार्ट 6 ऑफ दि रिप्रेजेंटेशन ऑफ दि पीपल ऐक्ट, 1951 (लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के भाग 6 के अधीन निर्वाचन अर्जियों के विचारण के विषय में प्रक्रिया और मार्गदर्शन के नियम) (जिसे संक्षेप में उच्च न्यायालय नियम कहा गया है) के अभिनाम से

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "Provided that no party who has begun to call his witnesses shall be entitled to obtain process to enforce the attendance of any witness against whom process has not previously issued, or to produce any witness not named in a list, which must be filed in Court on or before the date on which the hearing of evidence on his behalf commences and before the actual commencement of the hearing of such evidence without any order of the court made in writing and stating the reasons therfor"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियम विचरित किए हैं। पूर्वोक्त नियमों का नियम 22 सुसंगत है। वह निम्नलिखित रूप में है—

*"22 (1) ऐसा पक्षकार जो कि उच्च न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से अर्जी के विचारण के समय अपने साक्षियों की हाजिरी उपाप्त कराने का इच्छुक हो, विवाद्यकों के स्थिरीकरण के 15 दिनों के भीतर, रजिस्ट्रार को उस प्रयोजन के लिए आवेदन करेगा। उक्त आवेदन में उक्त साक्षियों के नाम दिए जाएंगे और उन तथ्यों का सार दिया जाएगा जिन्हें उसमें प्रत्येक को साबित करना है। उक्त आवेदन की एक प्रति पक्षकार द्वारा या उसके अधिवक्ता द्वारा, विरोधी पक्षकार के अधिवक्ता को या यदि उसका प्रतिनिधित्व अधिवक्ता द्वारा नहीं किया गया है, तो उक्त पक्षकार को ठीक उसी समय प्रदत्त की जाएगी जबकि आवेदन रजिस्ट्रार को किया जाता है.........।"

7. विधि सम्बन्धी स्पष्ट प्रश्न यह है : जहां कि किसी कार्यवाही का पक्षकार किसी साक्षी या किन्हीं साक्षियों की हाजिरी उपाप्त करने के प्रयोजनार्थ न्यायालय की सहायता नहीं लेना चाहता, वहां क्या उसे साक्षी के साक्ष्य को अभिलिखित करने के लिए नियत तारीख को पक्षकार द्वारा उपस्थित किए गए साक्षियों की परीक्षा करने के विशेषाधिकार से मात्र इस आधार पर वंचित किया जा सकता है कि साक्षियों के नाम और साक्ष्य का सार उस सूची में उपवर्णित नहीं है जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 16, नियम 1 के अनुपालन में फाइल किया गया हो या जिसे फाइल किया जाना चाहिए था।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"22(1). A party desirous of requiring the attendance of his witnesses at the trial of the petition through the process of the High Court shall, within fifteen days of the settlement of the issues, make an application for the purpose, to the Registrar. The said application shall contain the names of the said witnesses and a gist of the facts to be proved by each one of them. A copy of the said application shall also, be delivered by the party or his Advocate to the Advocate for the opposite party or if the same is not represented by an Advocate, to the said party, at the same time it is made to the Registrar............"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

8. आदेश 16 के नियम 1 का उपनियम (1) कार्यवाही के प्रत्येक पक्षकार पर ऐसे साक्षियों की सूची पेश करने की, जिन्हें वह या तो साक्ष्य देने के लिए या दस्तावेज़ पेश करने के लिए बुलाने की प्रस्थापना करता है और न्यायालय में ऐसे व्यक्तियों की हाजिरी के लिए उनके नाम समन अभिप्राप्त करने की बाध्यता अधिरोपित करता है। उपनियम (2) इस बात की अपेक्षा करता है कि ऐसे पक्षकार को जो कि किसी साक्षी की हाजिरी उपाप्त करने के लिए न्यायालय की सहायता लेना चाहता है, यह आवेदन अवश्य ही करना चाहिए जिसमें वह प्रयोजन बताया गया हो जिसके लिए साक्षी को समन किए जाने की प्रस्थापना की गई है। उपनियम (3) न्यायालय को इस बात का विवेकाधिकार प्रदत्त करता है कि वह किसी ऐसे पक्षकार को जो उपनियम (1) में प्रस्तुत सूची में दिए गए नामों से भिन्न हो, चाहे न्यायालय की मार्फत समन द्वारा या अन्यथा किसी साक्षी को बुलवाने की अनुमति केवल तभी दे सकेगा, यदि ऐसा पक्षकार सूची में ऐसे साक्षी के नाम का वर्णन करने में हुए लोप के लिए पर्याप्त कारण दर्शित करता है। नियम 1-क जो कि 1977 से प्रवृत्त हुआ है, अपने संशोधित रूप में किसी पक्षकार को इस बात में समर्थ बनाता है कि वह किसी साक्षी को साक्ष्य देने के लिए या दस्तावेज पेश करने के लिए ला सकेगा। किन्तु समर्थ बनाने वाला यह उपबन्ध आदेश 16 के नियम 1 के उपनियम (3) में अन्तर्विष्ट उपबन्ध के अध्यधीन है। यदि उच्च न्यायालय के नियमों के नियम 22 के प्रति किए गए निर्देश को इस प्रक्रम में स्मरण किया जाए, तो वह आदेश 16 के नियम 1 का उपनियम (1) और (2) का पुनराधिनियमन मात्र है।

9. यदि इन उपबन्धों की अपेक्षाओं को मिलाकर पढ़ा जाए और उचित रूप से उनका विश्लेषण किया जाए, तो स्पष्ट रूप से उनसे यह बात पता चलती है कि सूची तथा ऐसे प्रत्येक साक्षी के साक्ष्य के सार का प्रदाय करने की बाध्यता का अनुपालन जिसका नाम उस सूची में दर्ज किया जाता है, उन साक्षियों के सम्बन्ध में करना होता है जिनकी हाजिरी अभिप्राप्त करने के लिए पक्षकार को न्यायालय की सहायता की जरूरत होती है। जब किसी साक्षी की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए न्यायालय द्वारा समन निकाला जाता है, तो विधि की दृष्टि से उसके कुछ परिणाम होते हैं। यदि समन की तामील हो जाती है और जिस व्यक्ति पर समन की तामील होती है, वह उसका अनुपालन करने में असफल रहता है, तो विधि की दृष्टि से कतिपय परिणाम आदेश 16 के नियम 10 में यथा-उपबन्धित रूप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में होते हैं। परिणाम यह है कि जहां साक्ष्य देने के लिए या दस्तावेज पेश करने के लिए समन किया गया साक्षी ऐसे समन का अनुपालन करते हुए हाजिर होने या दस्तावेज पेश करने में असफल रहता है, वहां न्यायालय द्वारा उसमें यथा-उपबन्धित रूप में तामील के बारे में समाधान होने पर और इसके अलावा इसके बारे में समाधान होने पर, कि वह व्यक्ति किसी विधिपूर्ण प्रतिहेतु के बिना समन का अनुपालन करने में असफल रहा है, वहां न्यायालय ऐसी उद्घोषणा कर सकेगा जिसके द्वारा उस समय और उस स्थान पर, जिसका नाम उसमें दिया जाएगा, साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए हाजिर होने की उससे अपेक्षा कर सकेगा; और ऐसी उद्घोषणा की एक प्रति उसमें यथा-उपबन्धित रीति से चिपका दी जाएगी, साथ-ही-साथ न्यायालय, अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, या तो जमानत सहित या उसके बिना ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए वारन्ट निकाल सकेगा और ऐसी रकम के लिए जैसी कि वह ठीक समझे, उसकी सम्पत्ति की कुर्की के लिए आदेश कर सकेगा। यदि उसके बाद साक्षी हाजिर होने में असफल रहता है, तो न्यायालय उस पर ऐसा जुर्माना अधिरोपित कर सकेगा जो कि 500 रुपए से अधिक होगा, जैसा कि वह जीवन में उसकी दशा और उस मामले की सभी परिस्थितियों पर ध्यान रखते हुए ठीक समझे और उसकी सम्पत्ति या उसके किसी भाग के सम्बन्ध में वह आदेश कर सकेगा कि आदेश 16 के नियम 12 में यथा-उपबंधित रीति से उसकी कुर्की कर दी जाए और उसे बेच दिया जाए। न्यायालय द्वारा समन के निकाले जाने के और उसका अनुपालन न करने के जो विधिक परिणाम होते हैं, उन्हें देखते हुए आदेश 16 के नियम 1 की और उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियमों के नियम 22 की युक्ति में स्पष्ट रूप से ऐसे साक्षियों की सूची फाइल करने के लिए अनुध्यात है जिनकी परीक्षा और उपस्थिति पक्षकार न्यायालय की सहायता से अभिप्राप्त करना चाहता है। तथापि, एक ऐसा क्षेत्र भी बच रहता, यदि किसी कार्यवाही का पक्षकार किसी साक्षी की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए न्यायालय की सहायता नहीं लेना चाहता, वहां स्पष्टतः पक्षकार सुनवाई की तारीख को ऐसा साक्षी पेश कर सकता है और न्यायालय ऐसे साक्षी की परीक्षा करने से तब तक इनकार नहीं कर सकता, जब तक कि वह 1951 वाले अधिनियम की धारा 87 की उपधारा (1) के परन्तुक के अधीन कार्य करने की प्रस्थापना नहीं करता है; जो कि न्यायालय को, लिखित रूप में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, किसी साक्षी या किन्हीं साक्षियों की परीक्षा करने से इनकार करने में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समर्थ बनाता है, यदि उसकी यह राय हो कि ऐसे साक्षी या ऐसे साक्षियों को पेश करने वाला पक्षकार ऐसा तुच्छ आधारों पर या इस दृष्टि से कर रहा है जिससे कि कार्यवाहियों में विलम्ब किया जा सके। अत: इससे निश्चित रूप से यह बात स्पष्ट होती है कि आदेश 16 के नियम 1 के उपनियम (1) के अधीन विहित समय के भीतर साक्षियों की सूची का प्रदाय करने की बाध्यता ऐसे साक्षियों के सम्बन्ध में होती है जिनकी उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए न्यायालय की सहायता आवश्यक हो। और ऐसा इसलिए होना चाहिए, क्योंकि न्यायालय ऐसे साक्षियों के साक्ष्य की आवश्यकता और सुसंगति के बारे में अपना समाधान करना चाहता है जिनकी उपस्थिति न्यायालय की सहायता से अभिप्राप्त की जाएगी। इससे न केवल सूची में साक्षियों के नाम उपवर्णित करने की आवश्यकता की बात स्पष्ट हो जाती है, बल्कि प्रत्येक साक्षी के साक्ष्य के सार की बात भी स्पष्ट हो जाती है। यदि आदेश 16 के नियम 1 के उपनियम (1) द्वारा अनुध्यात सूची में साक्षी के नाम का उल्लेख करने में हुए लोप मात्र से न्यायालय ऐसे साक्षी की परीक्षा करने से इनकार कर सकता, तो आदेश 16 के नियम 1-क में यह उल्लेख करने में लोप न हुआ होता कि केवल साक्षी उन्हीं साक्षियों की जो कि उपस्थित रखे गए हैं, परीक्षा की जा सकती है जिनके नाम उपनियम (1) द्वारा अनुध्यात सूची में उल्लिखित हैं और जो कि न्यायालय की सहायता के बिना पेश किए जा सकते हैं। इस दृष्टि से देखने पर नियम 1-क पूर्णत: व्यर्थ हो जाता है। यदि पक्षकार के लिए सभी साक्षियों के नामों का उल्लेख करना इस तथ्य को विचार में लिए बिना बाध्यकारी है कि क्या उनमें से कुछ या सभी को समन किया जाना है और उन साक्षियों के नामों के जिन्हें न्यायालय की सहायता के बिना पक्षकार पेश करना चाहता है, इस आधार पर सूची में उल्लेख किए जाने की अपेक्षा है कि उनकी परीक्षा किए जाने की इजाजत नहीं दी जा सकती, तो नियम 1-क में उस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से विधायी उपबन्ध किया गया होता और नियम 1-क के पार्श्व-टिप्पण से यह सुझाव स्पष्टत: अस्वीकृत हो जाता। नियम 1-क का पार्श्व-टिप्पण इस प्रकार है: 'समन के बिना साक्षियों का पेश किया जाना' और यह नियम किसी भी साक्षी को साक्ष्य देने के लिए लाने में या नियम 1-क के अधीन समन के लिए आवेदन किए बिना दस्तावेज पेश करने में समर्थ बनाता है। यदि नियम 1-क में यह विवक्षित होता कि वह पक्षकार को केवल उन्हीं साक्षियों की परीक्षा करने में समर्थ बनाता है जिनके नाम नियम 1 के उपनियम (1) में फाइल की गई सूची में उल्लिखित हैं, जिन्हें पक्षकार न्यायालय की सहायता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के बिना न्यायालय के समक्ष पेश करना चाहता है, तो नियम 1-क में यह उपबन्ध करना आवश्यक न होता कि पक्षकार किसी साक्षी को साक्ष्य देने के लिए या नियम 1 के अधीन समन के लिए आवेदन किए बिना दस्तावेज पेश करने के लिए ला सकेगा। आदेश 16 के नियम 1-क में स्पष्ट रूप से दो ऐसी स्थितियां सामने आती हैं जिनमें दो नियम प्रवर्तित होते हैं। जहां कि पक्षकार न्यायालय के जरिए समन किए जाने पर किसी साक्षी की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए न्यायालय की सहायता चाहता है, वहां उस पक्षकार पर, जैसा कि नियम 1 के उपनियम (1) द्वारा निदेश दिया गया है, न्यायालय में साक्षी के साक्ष्य सहित सूची फाइल करना और नियम 1 के उपनियम (2) द्वारा यथा-उपबंधित आवेदन करना बाध्यकारी है। जहां कि पक्षकार न्यायालय की सहायता के बिना अपने साक्षियों को पेश करने की स्थिति में है, वहां वह इस तथ्य को विचार में लाए बिना कि क्या ऐसे साक्षी के नाम का उल्लेख सूची में है या नहीं, आदेश 16 के नियम 1-क के अधीन ऐसा कर सकता है।

10. तथापि यह दलील दी गई कि नियम 1-क नियम 1 के उपनियम (3) के अध्यधीन है और इसी कारण से न्यायालय को यह अवश्य ही अभिनिश्चित करना चाहिए कि उपनियम (3) इस सीमा तक नियम 1-क में अन्तर्विष्ट समर्थकारी उपबन्ध का अपवाद है। आदेश 16 के नियम 1 के उपनियम (1) और नियम 1-क के बीच कोई भी आन्तरिक विरोध नहीं है। आदेश 16 के नियम 1 का उपनियम (3) न्यायालय को ऐसी स्थिति के सम्बन्ध में कार्यवाही करने की अधिक विस्तृत अधिकारिता प्रदत्त करता है जहां कि पक्षकार सूची में साक्षी का नाम देने में असफल रहा है किन्तु फिर भी वह पक्षकार नियम 1-क के अधीन स्वयं ही उस साक्षी को पेश करने में असमर्थ रहता है और ऐसी स्थिति में ऐसे पक्षकार को आवश्यक रूप से साक्षी की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए उपनियम (3) के अधीन न्यायालय की सहायता लेनी पड़ती है और यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि पक्षकार के पास नियम 1 के उपनियम (1) के अधीन फाइल की गई सूची में ऐसे साक्षी के नाम का उल्लेख करने में हुए लोप के लिए पर्याप्त कारण मौजूद हैं, तो वह न्यायालय के जरिए या अन्यथा समन निकाल कर ऐसे साक्षी की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए अपनी सहायता दे सकता है, जो कि मामूली तौर से न्यायालय ऐसे साक्षियों की उपस्थिति अभिप्राप्त करने के लिए नहीं देता है जिसका नाम सूची में नहीं दर्शित किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है। अतः नियम 1 का उपनियम (3) और नियम 1-क भिन्न-भिन्न दो क्षेत्रों में प्रवर्तित होते हैं और अलग-अलग दो स्थितियों के सम्बन्ध में उपबन्ध करते हैं।

11. सुसंगत उपबन्धों का विश्लेषण करने से आदेश 16 के नियम 1 और नियम 1-क के अधीन अन्तर्निहित स्कीम स्पष्ट हो जाती है, और उच्च न्यायालय नियमों का नियम 22 ऐसी स्कीम को अल्पीकृत नहीं करेगा। स्कीम यह है कि न्यायालय द्वारा ऐसे विवाद्यक विरचित किए जाने के बाद, जो कि पक्षकारों को यह सूचना देता है कि कौन-से तथ्य उन्हें उस मामले में सफलता प्राप्त करने के लिए साबित करने होंगे, जो सूचना उन पक्षकारों को यह अवधारित करने में समर्थ बनाती है कि कौन-से मौखिक और दस्तावेज़ साक्ष्य वे पेश करना चाहेंगे, पक्षकार को उपनियम (1) द्वारा विहित समय के भीतर न्यायालय में प्रत्येक साक्षी के साक्ष्य के सार सहित साक्षियों की सूची फाइल करनी चाहिए। सूची को पहले से ही फाइल करने का कार्य इसलिए आवश्यक है क्योंकि न्यायालय द्वारा साक्षियों के समन करने की प्रक्रिया में काफी समय लगता है और इस परिहार्य विलम्ब से बचने के लिए पक्षकार पर ऐसे साक्षियों की सूची फाइल करने की बाध्यता डाली गई है जिनकी उपस्थिति पक्षकार न्यायालय की सहायता से अभिप्राप्त करना चाहता है। किन्तु यदि साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए नियत तारीख को पक्षकार इस तथ्य के बावजूद कि साक्षियों के नाम नियम 1 के उपनियम (1) के अधीन फाइल की गई सूची में नहीं दिखाए गए हैं, अपने साक्षियों को उपस्थित रखने में समर्थ है, तो ऐसा पक्षकार ऐसे साक्षियों की परीक्षा करने और उन साक्षियों के जरिए दस्तावेज पेश कराने का हकदार है जो कि नियम 1-क के अधीन दस्तावेज़ पेश करने के लिए बुलाए गए हों। साक्षियों की परीक्षा करने से इनकार करने की न्यायालय की जो एकमात्र अधिकारिता है, वह 1951 वाले अधिनियम की धारा 87 के परन्तुक में उपवर्णित है और वह विवेकाधिकार इस आधार पर साक्षियों की परीक्षा करने से इनकार करने तक ही सीमित है कि वह साक्ष्य या तो तुच्छ है या तंग करने वाला है या ऐसा साक्ष्य कार्यवाहियों में विलम्ब करने के लिए पेश किया गया है, इसको छोड़कर न्यायालय को पक्षकार द्वारा पेश किए गए ऐसे साक्षियों की जिन्हें कि उस समय उपस्थित रखा गया है, जबकि पक्षकार का साक्ष्य अभिलिखित किया जा रहा है और अभी भी बन्द नहीं हुआ है, परीक्षा करने से इनकार करने की कोई भी अधिकारिता नहीं है और न्यायालय को ऐसे साक्षी की जो कि न्यायालय में उपस्थित है परीक्षा करने से इस आधार पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इनकार करने की भी कोई अधिकारिता नहीं है, कि ऐसे साक्षी का नाम आदेश 16 के नियम 1 के उपनियम (1) के अधीन फाइल की गई सूची में उल्लिखित नहीं है ।

12. यदि विभिन्न उपबन्धों की स्कीम वैसे ही है जैसा कि यहां पर विवेचन किया गया है, तो स्पष्टतः विद्वान् न्यायाधीश का आदेश पूर्णतः कायम किए जाने लायक है । उसने निर्वाचित अभ्यर्थी की इस दलील को स्वीकार करके साक्षी की परीक्षा करने से इनकार किया है कि ऐसे साक्षियों के नामों का उल्लेख, जिन्हें अपीलार्थी ने न्यायालय में उपस्थित रखा था, सूची में नहीं किया गया है । यह केवल एकमात्र ऐसा आधार है जिस पर विद्वान् न्यायाधीश ने उसके ऐसे साक्षियों की जो कि न्यायालय में उपस्थित रखे गए थे, परीक्षा करने के लिए अपीलार्थी को अनुज्ञा देने से इनकार किया था और यह आधार पूर्णतः कायम किए जाने के लायक नहीं है । अतः विद्वान् न्यायाधीश का आदेश अभिखण्डित करना पड़ा था और तदनुसार उसे अभिखंडित किया गया था तथा अपील मंजूर की गई थी ।

अपील मंजूर की गई ।

श्री

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रेम नाथ रैना और अन्य

बनाम

जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य

(Prem Nath Raina and Others
v.
State of Jammu & Kashmir and Others)

(4 अगस्त, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति आर० एस० पाठक और सब्यसाची मुखर्जी)

जम्मू एण्ड कश्मीर एग्रेरियन रिफार्म्स ऐक्ट, 1976 (1976 का 17)—धारा 7(2) (बी) तथा 2(12)—निजी काश्त—यद्यपि सम्बद्ध व्यक्ति की रिहायश उसी ग्राम में या साथ वाले ग्राम में होनी चाहिए, जहां तक प्रतिरक्षा कार्मिक का प्रश्न है, यह अपेक्षित नहीं है और धारा 2(12) के खण्ड (बी) से (जी) के अन्तर्गत आने वाले रक्षा-कर्मचारियों के पक्ष में इस छूट का विस्तार कर दिया जाना न्यायसंगत होगा।

जम्मू एण्ड कश्मीर एग्रेरियन रिफार्म्स ऐक्ट, 1976 (1976 का 17)—उद्देशिका—[सपठित संविधान, 1950—अनुच्छेद 14, 19, 31 और 31-क (जम्मू-कश्मीर को यथा-लागू)]—उक्त अधिनियम खेती संबंधी सुधार का अभ्युपाय है—उसे संविधान के अनुच्छेद 19 अथवा 31 के अधीन किए जाने वाले आक्षेप से अनुच्छेद 31-क की संरक्षा प्राप्त है।

पिटीशनरों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन फाइल किए गए हैं। इन रिट पिटीशनों में जम्मू एण्ड कश्मीर एग्रेरियन रिफार्म्स ऐक्ट, 1976 पर इस आधार पर आक्षेप किया गया है कि उक्त अधिनियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 के उपबंधों का उल्लंघन करता है। इस आक्षेप का जम्मू-कश्मीर राज्य ने जो संक्षिप्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तर दिया है वह यह है कि चूंकि आक्षेपित अधिनियम भूमि सुधार का एक अध्युपाय है इसलिए संविधान का अनुच्छेद 31-क इस आधार पर उसकी विधिमान्यता पर आक्षेप को प्रवारित करता है कि वह अनुच्छेद 14, 19 और 31 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों का उल्लंघन करता है। पिटीशनरों की व्यथा यह है कि न केवल अधिनियम के कतिपय उपबन्ध भूमि सुधार के प्रतिकूल हैं बल्कि वे उपबन्ध ऐसे हैं कि यदि उनको लागू किया जाए तो उनसे राज्य सरकार को इस बात के लिए आबद्ध कर दिया जाएगा कि वह उनके ऐसे अधिकारों की समाप्ति तथा अर्जन के लिए भूमिधारियों को पर्याप्त रकमों का संदाय करे जो कि उन रकमों से कहीं अधिक होंगी जिनका संदाय करने के लिए राज्य सरकार नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 के अधीन करने के लिए दायी हो जाएगी। उच्चतम न्यायालय के समक्ष आने पर जम्मू-कश्मीर एग्रेरियन रिफार्म्स ऐक्ट, 1976 की सांविधानिक विधिमान्यता को कायम रखा गया और पिटीशन खारिज कर दिए गए। पिटीशनों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—कानून का प्रमुख प्रयोजन यह है कि भूमियों का न्यायसंगत तथा साम्यागत पुनर्वितरण किया जाना चाहिए जैसे कि जमीन को जोतने वाले को उस भूमि का स्वामी बनाकर किया जाता है जिसे कि वह जोतता है तथा उस भूमि पर अधिकतम सीमा अधिरोपित करके किया जाता है जिसे कोई व्यक्ति, चाहे वह भू-स्वामी हो अथवा अभिधारी, धारण कर सकता है। यह अधिनियम कृषि संबंधी सुधार का अध्युपाय है और उसे संविधान के अनुच्छेद 14, 19 या 31 के अधीन किए जाने वाले आक्षेप के आधार पर अनुच्छेद 31-क की संरक्षा प्राप्त है। अनुच्छेद 31 को 20 जून, 1979 से लेकर 44वें संशोधन द्वारा निरसित कर दिया गया है और भावी प्रयोजनों के लिए यह सुसंगत नहीं रहा है। यदि इस बात को संवैधानिक आधार-पर्यन्त सीमित कर दिया गया है तो पिटीशनरों की दलील यह है कि अधिनियम के विशिष्ट उपबंध विभेदात्मक हैं और इसलिए वह अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हैं, कि वे उपबन्ध उनके मूल अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करते हैं और इसलिए वे अनुच्छेद 19 का उल्लंघन करते हैं। वे इस दलील का लाभ अनुच्छेद 31-क के परिणामस्वरूप नहीं उठा सकते। (पैरा 5)

किसी भूमि सुधार विधि के अधीन भू-धारकों को उस प्रतिकर से अधिक प्रतिकर का संदाय जो कि नगर अधिकतम सीमा अधिनियम, जिसे किसी अधिनियम के अधीन संदेय हो, इस निष्कर्ष की ओर नहीं ले जाता कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूर्वतर अधिनियम, कृषि सम्बन्धी सुधार का अध्युपाय नहीं है। किसी भू-धारक के अधिकार के निर्वापन के लिए प्रतिकर के संदाय का विस्तार तथा पद्धति, जो एक ऐसी विषयवस्तु है जिसका विनिश्चय विधानमण्डल द्वारा किया जाना होता है और यह परिस्थिति कि किसी विशिष्ट मामले में विधानमण्डल द्वारा नियत प्रतिकर अथवा रकम अतिशय है उस विधि को कृषि सम्बन्धी सुधार के अध्युपाय से न्यूनतम अध्युपाय नहीं बना देगी। (पैरा 8)

जम्मू-कश्मीर एग्रेरियन रिफार्म्स ऐक्ट, 1976 की धारा 7(2)(ख) विषम स्थिति उत्पन्न करती है, विशेष रूप से अधिनियम की धारा 2(12) में दी गई "खुदकाश्त" की परिभाषा के संदर्भ में। भूमि का पुनर्ग्रहण करने के लिए भू-धारक के अधिकार पर धारा 7(2) (ख) द्वारा अधिरोपित शर्तों में से एक शर्त यह है कि जब तक वह सुरक्षा-दल का सदस्य न हो, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह उस ग्राम में जिसमें भूमि स्थित है अथवा उसके आसपास के किसी ग्राम में रिहायश अख्तयार करे। "खुदकाश्त" जिसकी परिभाषा धारा 2(12) में दी गई है, से यह अभिप्रेत है कि स्वयं अपने कुटुम्ब के किसी सदस्य द्वारा अथवा खनानिशीन पुत्री द्वारा अथवा खनादामाद द्वारा या उस व्यक्ति के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य नातेदार द्वारा जिसे कि पुत्र, भाई या बहन जिन्हें धारा 2(12) के विभिन्न खण्डों में विनिर्दिष्ट किया गया है, काश्त की जाती हो।

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1981]	[1981] 4 उम० नि० प० 543 = (1981) 2 एस० सी० आर० 1 : **वामन राव और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य** (Waman Rao and Others *v.* Union of India and Others);	9
[1965]	(1965) 1 एस० सी० आर० 82 : **रंजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य** (Ranjit Singh *v.* State of Punjab);	5
[1960]	(1960) 3 एस० सी० आर० 887 : **कोचुनी वाला मामला** (Kochuni's Case).	5

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मूल अधिकारिता : 1978 के रिट पिटीशन सं० 4195 से 4445
1981 के रिट पिटीशन सं० 8831-8942
1982 के रिट पिटीशन सं० 342-717, 803-804, 1005-1242, 6501-6746, 2860-3049, 3169-71, 3413-63 और 7133-35।

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ ने दिया।

मु० न्या० चन्द्रचूड़—

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए इन रिट पिटीशनों द्वारा पिटीशनरों ने जम्मू-कश्मीर एग्रेरियन रिफार्म्स ऐक्ट, 1976 (1976 का 17) की संवैधानिक विधिमान्यता पर इस आधार पर आक्षेप किया है कि उक्त अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 के उपबन्धों का उल्लंघन करता है। इस आक्षेप का प्रत्युत्तर जम्मू-कश्मीर राज्य द्वारा संक्षिप्त रूप में इस प्रकार दिया गया है कि चूंकि आक्षेपकृत अधिनियम कृषि सम्बन्धी सुधार का अभ्युपाय है इसलिए संविधान का अनुच्छेद 31-क इस आधार पर इसकी विधिमान्यता के प्रति आक्षेप को प्रवारित करता है कि वह अनुच्छेद 14, 19 और 31 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों का उल्लंघन करता है।

2. इस मामले में पिटीशनर मुख्यतः छोटे छोटे भूमिधारी हैं जिनके स्वामित्व में जम्मू-कश्मीर राज्य के अन्तर्गत कृषक भूमि हैं। जम्मू-कश्मीर सरकार ने राज्य के भीतर विभिन्न भू-सम्बन्धी सुधार का सूत्रपात किया जिनके प्रारंभ में 1948 का टेनेन्सी ऐक्ट 7 था। उक्त अधिनियम के अधीन जागीरों और मुआफियों का उत्सादन कर दिया गया जिसके परिणामस्वरूप कृषि भूमियों के लगभग 9,000 स्वामियों को लगभग 4.5 लाख एकड़ भूमि पर साम्पत्तिक हित से हाथ धोना पड़ा। तत्पश्चात् राज्य विधानमण्डल ने टेनेन्सी (अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1948 (1948 का सं० 7), टेनेन्सी (अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1950, बिग लैण्डेड एस्टेट्स अबॉलीशन ऐक्ट, 1950, टेनेन्सी अमेंडमेंट ऐक्ट, 1955, 1962 और 1965, जम्मू-कश्मीर टेनेन्सी (स्टे ऑफ इजेक्टमेंट) प्रोसीडिंग्स ऐक्ट, 1966, एग्रेरियन रिफार्म्स ऐक्ट, 1972 और अन्ततः 1976 का आक्षेपकृत अधिनियम, 1976 का 17 पारित किया। यहां अन्तिम नामित अधिनियम को 21 अगस्त, 1976 को राज्यपाल की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुमति प्राप्त हुई। इसे 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया और उसे 7 अप्रैल, 1978 को राज्यपाल की अनुमति प्राप्त हुई।

3. शीघ्र ही हम संक्षिप्त रूप से आक्षेपकृत अधिनियम के उपबन्धों की प्रकृति को स्पष्ट करेंगे। किन्तु ऐसा करने से पूर्व यह उपयोगी होगा कि हम उन विभिन्न कदमों से अपने आप को अवगत कर लें जिन्हें जम्मू-कश्मीर सरकार ने उन अधिनियमों को पारित करके जिनके प्रति हमने पहले संशोधन किया है, भूमि सुधारों की ओर उठाया था। 1948 के अभिधृति अधिनियम द्वारा जागीरों और मुआफियों का उत्सादन करने के पश्चात् अभिधारी को बेदखल करने हेतु भू-स्वामियों के अधिकार पर निर्बन्धन टेनेन्सी (अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1948 द्वारा अधिरोपित किया गया। किन्तु भू-स्वामी को यह अधिकार दिया गया कि वह ऐसी दशा में अपने अभिधारियों से भूमि का प्रतिग्रहण कर सकता है जिसमें कि अपने पुनरारम्भ के अधिकार की अधिकतम सीमा के अधीन रहते हुए खुदकाश्त और सद्भाविक रूप से उसे अपेक्षा हो। बिग लैण्डेड एस्टेट्स अबोलीशन ऐक्ट, 1950 समय के वातावरण के संदर्भ में विधान का एक क्रांतकारी खण्ड था। उक्त अधिनियम द्वारा 182 केनाल पर्यन्त सम्पत्तियों को धारण करने पर अधिकतम सीमा रखी गई थी, जो कि मोटे तौर पर 23 एकड़ बनती है। अधिकतम सीमा से अतिरिक्त भूमि का किसी प्रतिकर का संदाय किए बिना स्वत्वहरण कर लिया गया और भूमि को जोतने वाला व्यक्ति अतिरिक्त भूमि का स्वामी बन गया। पश्चात्वर्ती विधानों द्वारा अभिधारियों को भाटक के विषय में संरक्षण प्रदान किया गया, अनधिभोगी अभिधारियों के कतिपय वर्गों को संरक्षित अभिधारी माना जाने लगा और भू-स्वामियों को इस बात का एक और अवसर प्रदान किया गया था कि वे भूमि के पुनरारम्भ के लिए आवेदन प्रस्तुत कर सकते हैं। भू-स्वामियों द्वारा अभिधारियों से भूमि के पुनर्ग्रहण के लिए 1965 वाले टेनेन्सी (एमेंडमेंट) ऐक्ट के उपबन्धों के अधीन हजारों आवेदन-पत्र फाइल किए गए किन्तु बाद में उन आवेदन पत्रों के विषय में अतिरिक्त कार्यवाहियों को रोक दिया गया। जानकी नाथ वज़ीर समिति द्वारा भूमि सुधारों के रूप में राज्य विधानमण्डल द्वारा जो विभिन्न अध्युपाय अपनाए गए थे उनमें विषमताएं बतलाई गईं और समिति ने राज्य द्वारा अपनाए गए भूमि सुधारों सम्बन्धी विधान के परिणामस्वरूप होने वाली असमानताओं को दूर करने के लिए सिफारिश की। राज्य सरकार ने 1983 में सैयद मीर कासिम राजस्व मंत्री की अध्यक्षता के अधीन भूमि आयोग का गठन किया जिससे कि वज़ीर समिति की रिपोर्ट की जांच की जा सके। 1967 में राज्य सरकार ने एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्य जांच आयोग्य की नियुक्ति की जिसके अध्यक्ष उच्चतम न्यायालय के सेवा निवृत्त मुख्य न्यायाधिपति श्री पी० बी० गजेन्द्रगडकर थे। गजेन्द्रगडकर आयोग ने दिसम्बर, 1968 वाली अपनी रिपोर्ट द्वारा विभिन्न सिफारिशें कीं। उसने उन त्रुटियों के प्रति भी संकेत किया जिससे कि जम्मू-कश्मीर राज्य में भूमि विधान ग्रस्त था और उन त्रुटियों को दूर करने के लिए उपाय बताए। इस दीर्घ तथा अनुभवविद् प्रक्रिया द्वारा अन्ततः 1976 के अधिनियम को अधिनियमित किया गया जो कि इन कार्यवाहियों में आक्षेपकृत है।

4. पिटीशनरों की ओर से हाजिर होने वाले श्री वी० एम० तारकुण्डे की इस दलील को स्वीकार करना संभव नहीं है कि आक्षेपकृत अधिनियम के किंचित ऐसे उपबन्धों के कारण जो कि कृषि सम्बन्धी कल्याण से सही सम्बन्धित नहीं हैं, अधिनियम के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह कृषि सम्बन्धी सुधार का अभ्युपाय है। अधिनियम के संक्षिप्त शीर्षक से यह दर्शित होता है कि यह उक्त भूमि के बेहतर उपयोग के प्रयोजन के लिए भूमियों को जोतने वालों को उन भूमियों के अन्तरण के लिए उपबन्ध करता है। अधिनियम की धारा 4 में यह उपबन्ध किया गया है कि ऐसी भूमियों के अन्तर्गत सभी अधिकार, हक और हित जो कि 1971 में खरीफ की फसल में खुदकाश्त नहीं की जा रही थीं, उनके बारे में यह समझा जाएगा कि वे अधिकार, हक और हित निर्वापित हो चुके हैं और वे 1 मई, 1973 से लेकर सभी विल्लंगमों से मुक्त रहते हुए राज्य में निहित होंगे। धारा 5 द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि 1 सितम्बर, 1971 को, अधिकतम सीमा क्षेत्र से अतिरिक्त सभी भूमियां 1 मई, 1973 को राज्य में निहित होंगी। धारा 7 में यह उपबन्ध किया गया है कि धारा 7(2) में वर्णित शर्तों के अधीन रहते हुए सद्भावपूर्वक खुदकाश्त हेतु के लिए भूतपूर्व भूस्वामियों द्वारा भूमियों का पुनर्ग्रहण किया जाएगा। धारा 9 में ऐसी भूमियों के लिए जो कि राज्य में निहित हो गई हैं, जमीन को जोतने वालों द्वारा भाटक के लिए संदाय के लिए उपबन्ध किया गया है। धारा 10 में भूमियों के परादेय बन्धकों पर शोध्य रकम के संदाय के लिए उपबन्ध किया गया है। धारा 11 में यह उपबन्ध किया गया है कि ऐसी भूमियां जो कि आक्षेपकृत अधिनियम के अधीन राज्य में निहित हैं, उनके बारे में यह समझा जाएगा कि उन्हें राज्य द्वारा अर्जित कर लिया गया है और अनुसूची 3 के उपबन्धों के अनुसरण में संदाय का अवधारण और कार्यान्वयन किया जाएगा। धारा 13 में उन भूमियों के प्रयोग पर निर्बन्धन लगाए गए हैं जिनका कि जोतने वाले स्वामित्व धारण कर लेते हैं। धारा 14 में भूमि के अधिकतम प्रतिधार्य क्षेत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को विहित किया गया है। धारा 15 में अधिशेष भूमि के निपटाए जाने की रीति की बाबत चर्चा की गई है, जब कि धारा 17 भूमि के अन्तरण पर प्रतिषेध अधिरोपित करती है। अधिनियम के अध्याय 3 में, अधिनियम के अधीन नियुक्त किए गए विभिन्न राजस्व अधिकारियों तथा अधिकरणों की अधिकारिता की चर्चा की गई है और वह प्रक्रिया अधिकथित की गई है जिसका अनुसरण करना उनके द्वारा अपेक्षित है। अध्याय 4 में अनुपूरक उपबन्ध अन्तर्विष्ट हैं, अध्याय 5 में अधिनियम के उपबन्धों के अतिक्रमण के लिए शास्तियों का उपबन्ध किया गया है, जब कि अध्याय 6 में कतिपय प्रकीर्ण विषयों हेतु उपन्ध किया गया है। अध्याय 3 में "प्रतिकर" की परिभाषा करते हुए उससे यह अभिप्रेत माना गया है कि वह बाजार (मार्केट) मूल्य पर भूमि के लिए संदेय धन के रूप में है जब कि "रकम" शब्द की परिभाषा से व्यय की वह राशि अभिप्रेत है जो मार्केट दर से भिन्न दरों पर भूमि में अधिकारों के निर्वापन के बदले संदेय है। ये और अन्य समनुषंगी विषय जिनकी चर्चा अधिनियम द्वारा की गई है, किसी भी भूमि सुधार की सुविचारित स्कीम में आवश्यक कदम हैं।

5. श्री तारकुण्डे तथा श्री संजय कौल, जो कि स्वयं उपसंजात हुए थे, के नेतृत्व में विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि आक्षेपकृत अधिनियम के कतिपय उपबन्ध कृषि संबंध सुधार को सर्वथा लागू नहीं होते और उन उपबन्धों को अनुच्छेद 31-क का संरक्षण प्राप्त नहीं है। अधिनियम की धारा 7 ऐसा ही एक उपबन्ध है। इसमें उपधारा (1) द्वारा भूतपूर्व भूस्वामियों द्वारा सद्‌भावपूर्वक खुदकाश्त के लिए भूमियों के पुनर्ग्रहण हेतु उपबंध किया गया है, किन्तु उपधारा (2) द्वारा यह पुनर्ग्रहण के अधिकार पर किंचित शर्तें अधिरोपित की गई हैं। इन शर्तों में से एक शर्त यह है कि सशस्त्र बलों के किसी सदस्य से भिन्न पुनर्ग्रहण के लिए किसी आवेदक के लिए यह आवश्यक है कि वह अधिनियम के प्रारंभ होने से 6 मास के भीतर उस ग्राम में अथवा किसी समीपस्थ ग्राम में स्वयं भूमि की काश्त के प्रयोजनार्थ सामान्य रिहायश ग्रहण कर ली जिसमें कि वह भूमि आस्थित है जिसे पुनर्ग्रहण करने की ईप्सा की गई है। अधिनियम के जिन अन्य उपबन्धों पर पिटीशनरों के काउन्सेल द्वारा विशेष जोर दिया गया था वह धारा 7 (2) के खण्ड (एफ) में अन्तर्विष्ट उपबन्ध है जिसमें भूमि के उस विस्तार का अवधारण करने के लिए कतिपय कसौटियां अधिकथित की गई हैं जिसका कि पुनर्ग्रहण किया जाना है। यदि इस बात का संक्षेप में कथन किया जाए तो यह है कि जहां कोई व्यक्ति 1971 की खरीफ फसल के दौरान नकदी में भाटक ग्रहण करने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का हकदार था वहां उसके द्वारा पुनर्ग्रहणीय भूमि का विस्तार भाटक की उस सीमा द्वारा विनियमित किया जाएगा जिसमें कि ऐसे नगद भाटक को धारा 9 की उपधारा (3) और (8) के उपबन्धों के अनुसरण में प्रवर्तित किया जाता है। हम यह अभिनिर्धारित करने में असमर्थ हैं कि आक्षेपकृत अधिनियम के ये और सम्बद्ध उपबन्ध यह दर्शित करते हैं कि अधिनियम भूमि सुधार सम्बन्धी कोई अध्युपाय नहीं है। इस बारे में कोई प्रश्न कि क्या कोई अधिनियम भूमि सुधार अध्युपाय है सम्बद्ध अधिनियम के प्रमुख प्रयोजन पर ध्यान देते हुए विनिश्चित किया जाना चाहिए। रंजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य[1] वाले मामले में नजीरों का पुनर्ग्रहण करने पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 31-क में "सम्पदा" "किसी सम्पदा पर अधिकार" तथा "ऐसे अधिकारों का निर्वापन और उपांतरण" अभिव्यक्तियों का व्यापक तथा उदारपूर्वक अर्थ लगाया जाना चाहिए। कोचुन्नी वाले विनिश्चय में[2] जिसके प्रति हमारा ध्यान श्री तारकुण्डे द्वारा आकृष्ट किया गया था। रंजीत सिंह वाले मामले में एक विशेष मामले के रूप में माना गया था जिसे ऐसे मामले को लागू नहीं किया जा सकता जिनमें कि विधान की सामान्य स्कीम निश्चित रूप से कृषि सम्बन्धी सुधार है और ग्राम्य अर्थ व्यवस्था के हितों में तत्संबंधी किंचित समनुषंगी बात को, उन सुधारों को पूर्ण रूप से प्रभावशाली बनाने के लिए अपनाया जाना चाहिए। हमारे मामले में कानून का प्रमुख प्रयोजन भूमियों का न्यायसंगत तथा साम्यागत पुनर्विवरण किया जाना चाहिए जिसे जमीन को जोतने वाले को उस भूमि का स्वामी बनाकर किया जाता है जिसे कि वह जोतता है तथा उस भूमि पर अधिकतम सीमा अधिरोपित करके किया जाता है जिसे कोई व्यक्ति चाहे वह भूस्वामी हो अथवा अभिधारी, धारण कर सकता है। अधिनियम की स्कीम तथा प्रयोजन पर विचार करते हुए हमारे लिए यह अभिनिर्धारित करना निश्चित है कि यह अधिनियम कृषि सम्बन्धी सुधार का अध्युपाय है और उसे संविधान के अनुच्छेद 14, 19 या 31 के अधीन किए जाने वाले आक्षेप के आधार पर अनुच्छेद 31-क की संरक्षा प्राप्त है। अनुच्छेद 31 को 20 जून, 1979 से लेकर 44वें संशोधन द्वारा निरसित कर दिया गया है और भावी प्रयोजनों के लिए यह सुसंगत नहीं रहा है यदि इस बात को संवैधानिक आधार पर्यन्त सीमित कर दिया है तो पिटीशनरों की दलील यह है कि अधिनियम के विशिष्ट उपबन्ध विभेदात्मक है और इसलिए

---

[1] (1965) 1 एस० सी० आर० 82.

[2] (1960) 3 एस० सी० आर० 887.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह अनुच्छेद-14 का उल्लंघन करते है; कि वे उपबन्ध के मूल अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करते हैं और इसलिए वे अनुच्छेद 19 का उल्लंघन करते हैं। वे इस दलील का लाभ अनुच्छेद 31-क के परिणामस्वरूप नहीं उठा सकते।

6. यहां इस बात का उल्लेख कर दिया जाए कि कान्स्टीट्यूशन (ऐप्लीकेशन टु जम्मू एण्ड कश्मीर) आदेश, 1954 जो कि भारत के राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 374 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था, अनुच्छेद 31-क को इस उपांतरण सहित जम्मू-कश्मीर राज्य को लागू करता है कि वे उक्त अनुच्छेद के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड प्रतिस्थापित कर दिया गया है—

*"(क) 'सम्पदा' पद से ऐसी भूमियां अभिप्रेत होंगी जो कृषि संबंधी प्रयोजनों के लिए अथवा कृषि के प्रयोजनों के लिए या चरागाह हेतु अधिभोग में रखी गई हैं और उसके अन्तर्गत—

(i) ऐसी भूमि पर इमारत और अन्य संरचनाओं के आस्थान,

(ii) ऐसी भूमि पर स्थित वृक्ष;

(iii) वन्य भूमि तथा जंगली बंजर भूमि;

(iv) जल मग्न क्षेत्र अथवा जल पर तैरते हुए खेत;

(v) जानदारों तथा घराटों के आस्थान;

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"(a) 'estate' shall mean land which is occupied or has been let for agricultural purposes or for purposes subservient to agriculture, or for pasture, and includes—

(i) sites of buildings and other structure on such land;

(ii) trees standing on such land;

(iii) forest land and wooded waste;

(iv) area covered by or fields floating over water;

(v) sites of jandars and gharats;

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(vi) कोई जागीर, इनाम, मुआफी या मुकर्रारी अथवा अन्य वैसा ही अनुदान होगा, किन्तु इसके अन्तर्गत

(i) किसी नगर क्षेत्र अथवा ग्राम्य में बाधा या ऐसे भवन से संलग्न उक्त भूमि या स्थल में किसी भवन का आस्थान;

(ii) कोई ऐसी भूमि जिसका अधिभोग में नगर अथवा ग्राम के स्थल के रूप में किया जा रहा हो;

(iii) कोई ऐसी भूमि जो किसी नगरपालिका या अधिसूचित क्षेत्र या छावनी अथवा नगर क्षेत्र या किसी ऐसे क्षेत्र में इमारत के प्रयोजन के लिए आरक्षित रखी गई हो जिसके लिए आयोजन स्कीम मंजूर की गई हो ।"

7. पिटीशनरों की व्यथा यह है कि न केवल इस अधिनियम के कुछ उपबंध कृषि सम्बन्धी सुधार के विरुद्ध हैं बल्कि उन उपबन्धों द्वारा राज्य सरकार को इस बात के लिए आबद्ध कर लिया जाएगा कि वे उनके ऐसे अधिकारों की समाप्ति तथा अर्जन के लिए भूमिधारियों को पर्याप्त रकमों का संदाय करे, जो कि उन रकमों से कहीं अधिक होगी जिनका संदाय करने के लिए राज्य सरकार नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 (जिसे संक्षेप में अधिनियम कहा गया है) अधिनियम के अधीन करने के लिए दायी होगी । कृषि सम्बन्धी भूमियां जो कि नगरपालिकाओं पर नगर क्षेत्रीय समितियों की सीमाओं के भीतर आस्थान हैं वे

(vi) any jagir, inam, muafi or mukarrari or other similar grant, but does not include—

(i) the site or any building in any town area or village abadi or any land appurtenant to any such building or site;

(ii) any land which is occupied as the site of a town or village; or

(iii) any land reserved for building purposes in a municipality or notified area or cantonment or town area or any area for which a town planning scheme is sanctioned"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भी अधिनियम की परिधि के अन्तर्गत आने वाली समझी गई हैं और पिटीशनरों को इस बात की आशंका है कि जब जोतने वाले उन भूमियों के कानूनी क्रेता बन जाएंगे तो वे उनका व्ययन ऐसी नगर कीमतों पर करने के लिए स्वतंत्र होंगे जो कि पूरे आसमान को छू रही हैं। उस दलील का एक अन्य पहलू यह है कि नगर समूह में स्थिति भूमियों को आक्षेपकृत कानून लागू करने में कोई कृषि सम्बन्धी सुधार उसके द्वारा आबद्ध नहीं है।

8. ये दलीलें इस प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए सुसंगत नहीं हैं कि क्या अधिनियम का प्रमुख प्रयोजन कृषि सम्बन्धी सुधार है! किसी भूमि सुधार विधि के अधीन भू-धारकों को उस प्रतिकर से अधिक प्रतिकर का संदाय जो कि नगर अधिकतम सीमा अधिनियम, जिसे किसी अधिनियम के अधीन संदेय हो, इस निष्कर्ष की ओर नहीं ले जाता कि पूर्वतर अधिनियम, कृषि सम्बन्धी सुधार का अध्युपाय नहीं है। किसी भूधारक के अधिकार के निर्वापन के लिए प्रतिकर के संदाय का विस्तार तथा पद्धति जो एक ऐसी विषयवस्तु है जिसका विनिश्चय विधानमण्डल द्वारा किया जाना होता है और यह परिस्थिति कि किसी विशिष्ट मामले में विधान मण्डल द्वारा नियत प्रतिकर अथवा रकम अतिशय है उस विधि को कृषि सम्बन्धी सुधार के अध्युपाय ये न्यूनतम अध्युपाय नहीं बना देगी इसी प्रकार यह परिस्थिति कि आक्षेपकृत कानून स्थानीय प्राधिकारियों की सीमा के अन्तर्गत सभी कृषि भूमियों को लागू किया गया है। कृषि संबंधी सुधार के अध्युपाय के रूप में उसकी प्रकृति पर प्रभाव नहीं डालेगी। यदि किसी विकसित क्षेत्र में स्थित भूमि का प्रयोग प्रमुख रूप से कृषि के प्रयोजन के लिए किया जाता तो विधानमण्डल को इस बात की स्वतंत्रता होगी कि वह उस भूमि को कृषि सम्बन्धी सुधार की स्कीम के अन्तर्गत अन्तर्विष्ट करें जिससे कि उस भूमि को जोतने वाले व्यक्ति को उसका स्वामी बनाया जा सके। पिटीशनरों द्वारा अभिव्यक्त यह आशंका मामूली सी कीमत का संदाय करके विकसित क्षेत्रों में स्थित कृषि सम्बन्धी भूमियों के कानूनी स्वामी बन जाएंगे, जोतने वाले व्यक्ति उस भूमि को ऊंची कीमत पर दे देंगे, जो कि नगर क्षेत्रों में स्थित विकसित भूमियों को प्राप्त होते हैं, एक परिकल्पना मात्र है। हालांकि यह अवास्तविक नहीं है। यह अवास्तविक इसलिए नहीं है क्योंकि स्थावर संपत्ति के सम्बन्ध में व्यापार करने का प्रलोभन कृषकों और गैर कृषकों दोनों को ही समान रूप से रहता है। किन्तु यह परिकल्पना संभाव्यतः आज के जोतने वालों द्वारा भविष्य में ही व्यनित कर दी जाएगी। इस आधारभूत स्थिति को प्रभावित नहीं कर सकती कि यह अधिनियम कृषि सम्बन्धी सुधार के व्यापक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हित में कल्पित किया गया है। इसके अलावा धारा 13 जो कि भूमियों के प्रयोग पर निर्बन्धन लगाती है, धारा 17 जो कि ऐसी भूमियों के अन्तरण पर सीमित विस्तार पर्यन्त निर्बन्धन अधिरोपित करती है तथा धारा 14 जो उस अधिकतम भूमि को विहित करती है जिसे किसी भूतपूर्व अभिधारी द्वारा भी रखा जा सकता है, ऊंची कीमत को धारण करने वाली भूमियों का मुनाफा कमाने के लिए विक्रय करने के विरुद्ध प्रभावशील निवेदन है।

9. इस मामले पर विचार समाप्त करने से पूर्व हम यह मत व्यक्त करना चाहेंगे कि अधिनियम की धारा 7(2) (ख) अविषम स्थिति उत्पन्न करती है, विशेष रूप से अधिनियम की धारा 2(12) में दी गई "खुदकाश्त" की परिभाषा के संदर्भ में। भूमि का पुनर्ग्रहण करने के लिए भू-धारक के अधिकार पर धारा 7(2) (ख) द्वारा अधिरोपित शर्तों में से एक शर्त यह है कि जब तक वह सुरक्षा बल का सदस्य न हो, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह उस ग्राम में जिसमें भूमि स्थित है अथवा उसके आस-पास के किसी ग्राम में रिहायश अख्तयार करे। "खुदकाश्त" जिसकी परिभाषा धारा 2(12) में की गई है से यह अभिप्रेत है कि स्वयं अपने कुटुम्ब के किसी सदस्य द्वारा अथवा खनानिशीन पुत्री द्वारा अथवा खनादामाद द्वारा या उस व्यक्ति के माता/पिता द्वारा या किसी अन्य नातेदार द्वारा जिसे कि पुत्र, भाई या बहन जिन्हें धारा 2(12) के विभिन्न खण्डों में विनिर्दिष्ट किया गया है, काश्त की जाती हो। धारा 2(12) के खण्ड (जी 7) के अधीन, कोई भूस्वामी, जो कि अवयस्क, पागल, शारीरिक रूप से अपंग, वृद्ध अवस्था अथवा दुर्बलता के कारण अशक्त, विधवा या निरुद्ध अथवा कारागार में पड़ा हुआ व्यक्ति सम्बद्ध भूमि की काष्ट किसी नौकर या भाड़े पर दिए गए श्रमिक के जरिए अपने या अपने संरक्षक अथवा अभिकर्ता के निजी पर्यवेक्षण के अधीन कर सकता है। यह अनुज्ञेय है कि किसी भूमि की काश्त धारा 2(12) के खंड (बी) से (जी) में यथा विनिर्दिष्ट किसी अन्य व्यक्ति के जरिए कराई जा सकती है। अतः यह बात समझ में नहीं आती कि भला उस ग्राम में रिहायश क्यों अपेक्षित है जिसमें कि भूमियां आस्थित हैं अथवा किसी समीपस्थ ग्राम में रिहायश सभी व्यक्तियों के लिए, जिनके अन्तर्गत अवयस्क, विधवाओं, पागल व्यक्तियों और निरुद्ध व्यक्ति भी शामिल किए गए हैं क्योंकि यह आवश्यक है कि सुरक्षा बल के सदस्यों के पक्ष में विधानमण्डल द्वारा जो अपवाद बनाया गया है उसका विस्तार इन अन्य व्यक्तियों पर्यन्त भी अनिवार्य कर दिया जाए। अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अधीन संवैधानिक आक्षेप का अपवर्जित किया जाना किसी अवस्था अनुच्छेद 31-क द्वारा की गई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है, साम्या की दृष्टि से इन अनुच्छेदों का विवेकहीन उल्लंघन न्यायोचित नहीं ठहराता है। इस न्यायालय ने वामन राव वाले मामले में[1] यह मत व्यक्त किया था : "यह आवश्यकता है कि जब कि वर्तमान असमानताओं को दूर किया जा रहा है, नई असमानताएं सीमांतक तथा आनुषंगिक तौर पर उत्पन्न हो जाएं" किन्तु विधानमण्डल को इस बात पर ध्यान देना होगा कि यदि इस बात को यकीनी बनायें कि सीमांत तथा अनुषंगी असमानताएं अकारण ही उत्पन्न कर दी जाएं। जम्मू-कश्मीर सरकार को चाहिए कि वह धारा 7(2) में अन्तर्विष्ट उपबन्धों पर नये सिरे से विचार करे और रिहायश के बारे में जो उपबन्ध बनाए गए हैं उन्हें उपांतरित करे ताकि वे विवेक तथा सामान्य बुद्धि के अनुकूल बन पाएं। अनुच्छेद 31-क विवेक तथा सामान्य बुद्धि पर आक्षेप नहीं करता है।

10. इन कारणों से हम जम्मू-कश्मीर एग्रेरियन रिफार्म्स ऐक्ट, 1976 की संवैधानिक विधिमान्यता को कायम रखते हैं और इन पिटीशनों को खारिज करते हैं। खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

पिटीशन खारिज किए गए।

सू०

---

[1] [1981] 4 उम० नि० प० 543=(1981) 2 एस० सी० आर० 1.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उच्चतम न्यायालय के (प्रकाशनीय और अप्रकाशनीय) निर्णयों के महत्वपूर्ण मुद्दे

3 सितम्बर को समाप्त सप्ताह

सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 :

1. धारा 47—विवाह-विच्छिन्न (तलाकशुदा) पत्नी को स्थायी निर्वाह-भत्ता दिया जाना—पति का देहान्त हो जाना—क्या वह विधवा मृत पति की सम्पदा पर भार सृष्ट करने के लिए वाद फाइल कर सकती है।

अभिनिर्धारित—यह मानते हुए कि पृथक् वाद फाइल नहीं किया जा सकता, वह वाद, अधिकार के तौर पर निष्पादन अर्जी के रूप में माना जा सकता है।

निष्पादन आवेदन को वाद में संपरिवर्तित करने की काफी नजीरें हैं और वाद को निष्पादन कार्यवाही में संपरिवर्तित करने की विपरीत प्रक्रिया के लिए कोई उचित आपत्ति विशिष्टतया तब नहीं हो सकती, जबकि बहकाई हुई विधवा का किसी प्रक्रियात्मक गलती के फलस्वरूप भरण-पोषण से वंचित होना संभव है।

नन्द रानी मजूमदार (श्रीमती) बनाम इण्डियन एयरलाइन्स : सिविल अपील सं० 1092/80 जिसका विनिश्चय 1-9-1983 को किया गया।

न्या० पी० एन० भगवती, ए० एन० सेन और रंगनाथ मिश्र

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 :

2. धारा 100(4) और (5)—क्या धारा 100(4) और (5) अभिग्रहण के मामलों में लागू होती हैं।

देखिए : मोटरयान अधिनियम, 1939 (मद सं० 10)

---

(1) उच्चतम न्यायालय की अनुज्ञा से प्रकाशित।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिवहन आयुक्त, आन्ध्र प्रदेश बनाम एस० सरदार अली : बस मालिक, हैदराबाद, जिसका विनिश्चय 26-8-83 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी।

संविधान, 1950 :

3. मूल अधिकार—निर्बन्धनों की युक्तियुक्तता—अवधारण की कसौटियां।

देखिए : विक्रय कर (मद सं० 12)

राम नारायण अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : जिसका विनिश्चय 23-8-83 को किया गया।

4. अनुच्छेद 132 और 133—उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रमाण-पत्र में भागतः अनुच्छेद 132 की भाषा और भागतः अनुच्छेद 133 की भाषा का उपयोग किया जाना—ऐसे प्रमाण-पत्र को किस अनुच्छेद के अधीन माना जाना चाहिए।

अभिनिर्धारित—यह उल्लेख करते हुए कि प्रश्न संविधान के निर्वचन के बारे में है, उच्च न्यायालय ने यह प्रमाणित नहीं किया कि इस मामले में संविधान के निर्वचन के बारे में सारवान् विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। अतः ऐसा प्रमाण-पत्र अनुच्छेद 132 के अधीन वाले प्रमाण-पत्र के रूप में नहीं माना जा सकता। उच्च न्यायालय ने प्रमाणित किया कि मामले में व्यापक महत्व का सारवान् विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, जिसका विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए। ऐसा करने में उसने अनुच्छेद 133(1) के खण्ड (क) और (ख) की भाषा का प्रयोग किया। ऐसा प्रमाण-पत्र अनुच्छेद 133 के अधीन वाला प्रमाण-पत्र माना जाए, न कि अनुच्छेद 132 के अधीन वाला, क्योंकि उच्च न्यायालय ने यह प्रमाणित नहीं किया था कि मामले में संविधान के निर्वचन के बारे में सारवान् विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। मामले में ऐसा प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं है।

परिवहन आयुक्त, आन्ध्र प्रदेश बनाम एस० सरदार अली, बस मालिक, हैदराबाद : सिविल अपील सं० 2546 और अन्य/80, जिनका विनिश्चय 26-8-83 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 :

5. धारा 12—उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध निराधार अभिकथन किए जाने—अवमानकर्ता द्वारा गलती मान ली जानी किन्तु अभिकथन वापस लेने के लिए तैयार न होना—क्या उसे दण्डित किया जाए ?

अभिनिर्धारित—अवमान के प्रश्न पर उस न्यायाधीश के दृष्टिकोण से विचार नहीं किया जाना चाहिए, जिसके सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा करना अपेक्षित है अपितु जनसाधारण की दृष्टि से किया जाना चाहिए जिसने उचित न्याय करने का काम न्यायालय को सौंपा है। यदि उचित दण्ड देकर इसे तुरन्त ठीक न किया गया तो समस्त शिष्टताओं की उद्धत अवहेलना से न्याय-प्रशासन की व्यवस्था पूर्णतः डगमगा सकती है।

(न्यायालय ने गहरा दुख व्यक्त किया कि ऐसी परिपाटी पैदा हो गई है कि उच्चतम न्यायालय के अभिलेख अधिवक्ता कागज-पत्रों को देखे बिना ही अपने नाम से ऐसे विशेष इजाजत पिटीशन फाइल कर देते हैं जो दिल्ली से बाहर के काउन्सेलों द्वारा तैयार किए जाते हैं, मानो वे उनके द्वारा लिखे और निर्धारित किए गए हों। यह उचित नहीं है और निश्चय ही न्यायालय के प्रति अभद्र व्यवहार है।)

एम० आशाराम जैन बनाम ए० टी० गुप्त : विशेष इजाज़त पिटीशन (सिविल) सं० 6735/83 तारीख 25-8-1983

न्या० ओ० चिन्नप्पा रेड्डी; ए० पी० सेन और ई० एस० वेंकटरामय्या

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 :

6. धारा 2 और 4—परिधि—विवाह के समय दुल्हे के पिता द्वारा दहेज की मांग—विवाह के बाद भी दहेज की मांग की जानी—क्या यह धारा 4 के अधीन अपराध है ?

अभिनिर्धारित—अधिनियम के संकल्पकृत उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए "दहेज" शब्द का उदार अर्थ करना होगा कि इससे ऐसी कोई सम्पत्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिप्रेत है कि यदि मांगने पर दिए जाने की सहमति दे दी गई तो वह धारा 2 के अर्थ में दहेज हो जाएगी।

उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का प्रयोग कभी-कभी इस सीमा के साथ किया जाना चाहिए कि यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी नागरिक को तंग करने के लिए विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है। इस मामले में उच्च न्यायालय को आरम्भ में ही कार्यवाहियों को अभिखण्डित करने के लिए अपनी अन्तर्निहित अधिकारिता का सहारा लेने से इन्कार कर दिया जाना चाहिए था।

एल० वी० जाधव बनाम शंकरराव आबासाहब पवार : दाण्डिक अपील सं० 494/82, जिसका विनिश्चय 30-8-1983 को किया गया।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 :

7. धारा 2(घ)—कर्मकार—क्या ? जीवन बीमा निगम का विकास अधिकारी 'कर्मकार' है ?

अभिनिर्धारित—(i) यद्यपि विकास अधिकारी को अधिकारी कहा जाता है, फिर भी उसे अभिकर्ता नियुक्त करने या उनके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करने का कोई प्राधिकार नहीं है और न ही उसे उनके काम का पर्यवेक्षण करने की शक्ति है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह कोई प्रशासनिक या प्रबन्धकीय काम करता है, अतः वह एक कर्मकार मात्र है।

(ii) औद्योगिक विवाद अधिनियम ऐसा विधान है, जिसका उद्देश्य श्रमिकों और प्रबन्ध-मण्डल में शान्ति और सौहार्द्र बनाए रखना है। अतः अधिनियम में दी गई परिभाषाओं का निर्वचन इस प्रकार करना चाहिए जिससे कि अधिनियम का उद्देश्य विफल न हो बल्कि उसकी अभिवृद्धि हो।

(iii) लोक क्षेत्र के निगम आदर्श नियोजक होने चाहिए। उन्हें अनावश्यक आक्षेप करने से, अनावश्यक मुकदमे लड़ने से और अनावश्यक रुख अपनाने से विरत रखना चाहिए।

एस० के० वर्मा बनाम महेश चन्द्र : सिविल अपील सं० 2659 (एन०एल०)/80 जिसकाविनिश्चय 2-9-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई, ग्रो० चिन्नप्पा रेड्डी और वरदराजन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नागरिक और राजनैतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा :

8. लोक शुल्क देने में व्यतिक्रम—गिरफ्तारी और निरोध के लिए उपबन्ध—क्या इससे प्रसंविदा के उपबन्धों का अतिवर्तन होता ?

देखिए : विक्रय कर (मद सं० 12)

राम नारायण अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जिसका विनिश्चय 23-8-1983 को किया गया।

निर्वचन :

9. कल्याणकारी विधान—इसका निर्वचन किस प्रकार किया जाए।

देखिए : औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947(मद सं० 7)

एस० के० वर्मा बनाम महेश चन्द्र जिसका विनिश्चय 2-9-1983 को किया गया।

मोटरयान अधिनियम, 1939 :

10. धारा 129क और 123—परिधि—क्या धारा 129क संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकार पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 100(4)(5)—क्या अभिग्रहणों के सम्बन्ध में लागू होती है ?

अभिनिर्धारित—(i) अधिनियम की धारा 129क विधिमान्य है और इससे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन वाले मूल अधिकार का अतिलंघन नहीं होता।

(ii) जब कभी दण्ड संहिता से भिन्न किसी विधि के अधीन कोई अपराध किया जाए और वह विधि अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को स्वयं विनियमित न करती हो तो न्यायालय को आगे कार्यवाही के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों का सहारा लेना होगा। यदि मोटरयान अधिनियम के उपबन्ध दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों के तालमेल में पढ़े जाएं तो धारा 129क के अनुसार अभिगृहीत यान की उचित अभिरक्षा और व्ययन के बारे में कोई त्रुटि नहीं रहेगी। यदि पुलिस अधिकारी यान का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिग्रहण करने के बाद कोई कार्रवाई नहीं करता है तो मालिक अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में समावेदन कर सकता है।

(iii) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 100 तलाशियों के बारे में है न कि अभिग्रहणों के बारे में। जब सम्पत्ति का अभिग्रहण किया जाए तो धारा 100(4) और (5) का अनुपालन करना संभव नहीं होता।

परिवहन आयुक्त, आन्ध्र प्रदेश बनाम एस० सरदार अली : सिविल अपील सं० 2546 और अन्य/83 जिनका विनिश्चय 26-8-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई तथा ओ० चिन्नप्पा रेड्डी

प्रक्रिया :

11. किसी अधिनियम के अधीन किए गए अपराधों का विचारण करने के लिए प्रक्रिया विनियमित करने के लिए उस अधिनियम में कोई उपबन्ध न किया जाना—क्या न्यायालय दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुसार मामले का विचारण कर सकता है ?

देखिए : मोटरयान अधिनियम, 1939 (मद सं० 10)

परिवहन आयुक्त, आन्ध्र प्रदेश बनाम एस० सरदार अली

न्या० डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी

विक्रय कर :

12. उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948—कर व्यतिक्रमी की गिरफ्तारी और निरोध—भू-राजस्व की वसूली विषयक उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम के उपबन्धों को लागू किया जाना—क्या ये उपबन्ध अनुच्छेद 14, 19(1)(घ) और 21 का उल्लंघन करते हैं ? क्या ये युक्तियुक्त हैं ?

नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा—क्या अनुच्छेद 11 का सहारा लिया जा सकता है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित—(i) चूंकि अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 को हमारी नगरपालिका विधि का अंग अभी तक नहीं बनाया गया है, इस लिए इसका सहारा नहीं लिया जा सकता। दूसरे, वह अनुच्छेद सांविधानिक बाध्यता के अधीन देय ऋण के विषय में है न कि किसी क़ानून के अधीन संदेय लोक शुल्क के बारे में।

(ii) मूल अधिकारों पर निर्बन्धन की युक्तियुक्तता अवधारित करने के लिए बदलती हुई सामाजिक अवस्थाएं, मानव-जीवन के मूल्य, विद्यमान सामाजिक दर्शन और चतुर्दिक परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(iii) जहां लोक शुल्क एकत्र करने होते हैं, वहां उद्धत व्यतिक्रमी से शुल्क लेने के लिए कुछ प्रपीड़न आवश्यक है, जिसके पास शुल्क देने के साधन हैं किन्तु जिसने अपनी आस्तियों को कपटपूर्वक गुप्त रखा है, जिससे कि उसके विरुद्ध कार्यवाही न की जा सके। समकालीन भारतीय अवस्थाओं में यह उपबन्ध अयुक्तियुक्त नहीं है।

(iv) धारा 281 द्वारा विहित प्रक्रिया और नियम व्यतिक्रमी की गिरफ्तारी और निरोध की प्रक्रिया के सम्बन्ध में एक पूर्ण संहिता है और यह सिविल प्रकिया संहिता के किसी उपबन्ध द्वारा उपांतरित नहीं होती। अत: सिविल प्रकिया संहिता की धारा 51 के उपबन्ध लागू नहीं होंगे।

(v) इस मामले में नियम 251 द्वारा अनुध्यात जांच नहीं की गई है, अतः पिटीशनरों को पहले जारी किए गए गिरफ्तारी के किसी वारन्ट के अनुसरण में निरुद्ध नहीं किया जा सकता।

राम नारायण अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : रिट पिटीशन सं० 1110 और अन्य/82 जिसका विनिश्चय 23-8-1983 को किया गया।

न्या० ए० पी० सेन०, ई० एस० वेंकटरामय्या और आर० बी० मिश्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्णय-सूची

		मद सं०	
1.	आशा राम, एम० जैन बनाम ए० टी० गुप्ता	(5)	(प्रकाशित)
2.	जाधव एल० वी० बनाम शंकरराव आबासाहेब पवार	(6)	(प्रकाशित)
3.	नन्द रानी मजूमदार (श्रीमती) बनाम इण्डियन एयरलाइन्स	(1)	(अप्रकाशित)
4.	राम नारायण अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	(3,8,12)	(प्रकाशित)
5.	परिवहन आयुक्त, आन्ध्र प्रदेश बनाम एस० सरदार अली	(2,4,10 और 11)	(प्रकाशित)
6.	वर्मा, एस० के० बनाम महेश चन्द्र	(7,9)	(प्रकाशित)

---

10 सितम्बर, 1983 को समाप्त सप्ताह

प्रशासनिक विधि :

1. आयकर अधिनियम, 1961—धारा 72क(i)(क)—व्याप्ति—कानूनी निकाय की सिफारिश—केन्द्रीय सरकार द्वारा पुष्टि—क्या इसका न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है ?

अभिनिर्धारित—यदि प्रशासनिक प्राधिकारी की कार्यवाही द्वेषपूर्ण है या ऐसी है कि कोई भी सुविज्ञ युक्तिवान व्यक्ति-निकाय उसे नहीं कर सकता अथवा प्राधिकारी ने गलत दृष्टिकोण अपनाकर गलत निष्कर्ष निकाला है या असंगत या बाह्य बातों से प्रभावित हुआ है, तो न्यायालय द्वारा उसमें हस्तक्षेप करना औचित्यपूर्ण होगा।

इस मामले में, विनिर्दिष्ट प्राधिकारी का यह निष्कर्ष है कि समामेलन कम्पनी अपने समामेलन से पूर्व वित्तीय दृष्टि से समर्थ थी—जबकि वस्तुतः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह समामेलन से पूर्व कुछ वर्षों से भारी खर्च कर रही थी और वाणिज्यिक दृष्टि से दिवालिया हो गई—और अपनी वित्तीय असमर्थता को कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 370 और 371 के उपबन्धों की पूर्ण उपेक्षा के साथ मूलभूत असामर्थ्य से गलत समतुल्य ठहराना यह दर्शित करता है कि उस प्राधिकारी एवं केन्द्रीय सरकार गलत मार्ग अपनाकर विधि की दृष्टि में गलत निष्कर्ष पर पहुंचे। वह निष्कर्ष ऐसा था जिसपर कोई भी सुविज्ञ युक्तिवान व्यक्ति-निकाय नहीं पहुंचेगा। उच्च न्यायालय ने उस आदेश में हस्तक्षेप करके ठीक ही निर्णय दिया।

आयकर आयुक्त, मुम्बई बनाम महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा लिमिटेड : सिविल अपील सं० 3685/82 जिसका विनिश्चय 2-9-1983 को किया गया।

न्या० वी० डी० तुलजापुरकर और मदान।

2. निचले प्राधिकारी को प्रदत्त शक्ति—क्या इसका प्रयोग उससे ऊंचे प्राधिकारी द्वारा किया जा सकता है ?

अभिनिर्धारित—कानून में यह उपबन्ध न होने पर कि उच्चतर प्राधिकारी निचले प्राधिकारी की शक्ति का प्रयोग कर सकता है, मात्र नीचे से ऊपर के पदानुक्रम के आधार पर ही यह कहना कठिन होगा कि जब कभी कानून में निचले प्राधिकारी का उल्लेख किया जाए, तो उसमें उच्चतर प्राधिकारी भी सम्मिलित होता है।

एस० कानन बनाम सचिव, कर्नाटक राज्य प्रादेशिक परिवहन अधिकरण : रिट पिटीशन सं० 7897/83 जिसका विनिश्चय 28-8-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी

3. विज्ञापन में वर्णित स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए न्यूनतम अर्हता—सरकार ने वह निदेश जारी किए कि चयन सर्वथा शासकीय अनुदेशों के अनुसार किया जाना चाहिए—क्या विज्ञापन के प्रतिकूल ऐसे निदेश विधिमान्य हैं ?

अभिनिर्धारित—सरकार द्वारा जारी किए गए कोई भी अनुदेश किन्हीं न किन्हीं नियमों के अनुरूप होने चाहिएं। यदि नियम हैं तो वे निश्चित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूप से भारतीय चिकित्सा परिषद् द्वारा बनाए गए नियमों के अनुरूप होने चाहिएं। कालेज प्राधिकारी और प्रधानाचार्य, जिन्होंने विज्ञापन निकाला था, वे उस विज्ञापन से आबद्ध थे और जो अभ्यर्थी उसमें वर्णित अपेक्षाओं की पूर्ति करते हैं, उन्हें पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिया जाना चाहिए।

विनय रामपाल (डा०) बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य : रिट पिटीशन (सिविल) सं० 8177/83, जिसका विनिश्चय 8-8-1983 को किया गया। (अप्रकाशनीय)

न्या० डी० ए० देसाई और बालकृष्ण इराडी

सिविल सेवा :

4. सरकारी सेवक का सेवोन्मुक्त किया जाना—यह सेवोन्मुक्ति अविधिमान्य और अवैध अभिनिर्धारित की जाना—पिछले वेतन की संगणना कैसे की जाए ?

अभिनिर्धारित—सरकारी सेवक पिछले वेतन के लिए वैसे ही हकदार है मानों कि उसकी सेवा निर्विघ्न चली आ रही है। फिर भी पिछले वेतन की संगणना करते समय सेवोन्मुक्ति के दौरान उसके द्वारा उपार्जित रकम (इस मामले में शिक्षक के रूप में 100 रुपए प्रतिमास के हिसाब से) काट ली जाए और अतिशेष उसे दे दिया जाए।

अभिनाश चन्द्र गौतम बनाम संघ शासित प्रदेश त्रिपुरा : सिविल अपील सं० 1507/70 जिसका विनिश्चय 24-8-1983 को किया गया। (अप्रकाशनीय)

न्या० डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी, ए० वरदराजन

दण्ड प्रक्रिया संहिता :

5. धारा 195(1)(ख)(i)—सिविल न्यायालय में फाइल किया गया वाद—एक पार्टी ने यह अभिकथन किया कि विरोधी पक्षकार ने दस्तावेज पर उसके जाली हस्ताक्षर कर लिए थे—क्या न्यायालय प्राइवेट परिवाद का संज्ञान कर सकता है ?

अभिनिर्धारित—उस न्यायालय से जिसमें अभिकथित जाली दस्तावेज पेश की गयी थी, लिखित परिवाद न होने की दशा में, प्राइवेट परिवाद के आधार पर अभियोजन कायम नहीं रखा जा सकता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गोपाल कृष्ण मेनन बनाम डी० राजा रेड्डी : दाण्डिक अपील सं० 307/83 जिसका विनिश्चय 5-9-1983 को किया गया ।

न्या० डी० ए० देसाई और रंगनाथ मिश्र

महंगाई भत्ता :

6. प्रकृति—नियोजक का घाटे पर चलने वाला यूनिट होना—अधिकरण द्वारा महंगाई भत्ता बढ़ाया जाना—क्या न्यायालय को नियोजक की कठिन वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए महंगाई भत्ता कम करना चाहिए ?

अभिनिर्धारित—मूल्य सूचकांक में वृद्धि और महंगाई भत्ते में हमेशा अंतर रहता है, उसका निष्प्रभावीकरण कभी भी मूल्य सूचकांक में वृद्धि के बराबर नहीं होता । अधिकरण द्वारा बनाए गए फार्मूले में सुधार करने से कर्मकारों के अन्यथा स्वल्पलाभ वेतन पैकेट पर प्रभाव पड़ेगा ।

ब्रिटिश इण्डिया कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम औद्योगिक अधिकरण पंजाब : सिविल अपील सं० 2685/77 जिसका विनिश्चय 24-8-1983 को किया गया । (अप्रकाशनीय)

न्या० डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

साक्ष्य :

7. हितबद्ध साक्षी—साक्ष्य—न्यायालय उनके साक्ष्य का क्या दृष्टिकोण अपनाए ?

अभिनिर्धारित—हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाना चाहिए और यदि न्यायालय यह महसूस करे कि इसमें कोई कानूनी तथा तथ्य संबंधी दोष नहीं है, तो ऐसे साक्षी के साक्ष्य में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है । हितबद्ध साक्षी का साक्ष्य इकबाली साक्षी के साक्ष्य की तरह नहीं है, जिसमें संपुष्टि आवश्यक होती है ।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरीराम : दांडिक अपील सं० 450/77 जिसका विनिश्चय 7-9-1983 को किया गया ।

न्या० एस० मुर्तजा फजल अली और ठक्कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आयकर अधिनियम, 1961 :

8. धारा 72(1)(क)—परिधि ।

देखिए : प्रशासनिक विधि (मद सं० 1)

आयकर आयुक्त, मुम्बई बनाम एम० एण्ड एम० लिमिटेड : जिसका विनिश्चय 2-9-1983 को किया गया ।

न्या० वी० डी० तुलजापुरकर और मदान ।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 :

9. कर्मकार—परिभाषा—क्या उजरत दर पर काम करने वाले दर्जी कर्मकार की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं ?

अभिनिर्धारित—उजरत दर पर काम करने वाले कर्मकारों की स्थिति में; यदि उत्पादित माल उसके अनुदेशों के अनुरूप नहीं है, तो उसे उस माल को अस्वीकार करने का अधिकार और किसी कर्मकार को काम न देने का उसका अधिकार कर्मकार पर मालिक द्वारा नियन्त्रण और पर्यवेक्षण का तत्व प्रदर्शित करता है । सेवा-संविदा की गई या नहीं, इस पर विचार करते समय विभिन्न संघटक ध्यान में रखने होंगे और किसी एक कसौटी से कोई लाभदायक प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा ।

शाइनिंग टेलर्स बनाम औद्योगिक अधिकरण 11, उत्तर प्रदेश : दाण्डिक अपील सं० 1781/82 जिसका विनिश्चय 25-8-1983 को किया गया ।

न्या० डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

10. पदच्युति और बहाली—बहुत से हड़तालियों को बहाल किया जाना—प्रत्यर्थी कर्मकार का बहाल न किया जाना—अधिकरण द्वारा बहाली का आदेश दिया जाना—क्या ऐसा आदेश विधिमान्य है ?

अभिनिर्धारित—यह विभेद का मामला है क्योंकि जबकि अन्य अनेक हड़ताली कर्मकार बहाल कर दिए गए थे, इन तीन कर्मकारों को ऐसे कठोर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यवहार के लिए विलग करने का कोई कारण नहीं था। अधिकरण ने सही दृष्टिकोण अपनाया।

आयरन एण्ड मैटल ट्रेडर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम एम० एस० हास्केल : सिविल अपील सं० 1521/78 जिसका विनिश्चय 24-8-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

11. धारा 11-क—प्रबन्ध-मंडल द्वारा कर्मकार की सेवाएं समाप्त की जाना—श्रम न्यायालय द्वारा दण्ड को घटाकर वेतन-वृद्धि पर रोक लगायी जाना—ऐसी स्थिति में, क्या उच्चतम न्यायालय श्रम न्यायालय के विनिश्चय में हस्तक्षेप करेगा ?

अभिनिर्धारित—यदि श्रम न्यायालय ने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि कर्मकार की सेवाओं की समाप्ति गम्भीर अधिक दण्ड है और उसका दण्ड कम कर दिया है तो किसी महत्वपूर्ण विधिक सिद्धांत के न होने की दशा में, यह न्यायालय इस प्रश्न पर पुनः विचार नहीं करेगा कि श्रम न्यायालय के समक्ष वाली सामग्री पर्याप्त थी या नहीं।

हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड का प्रबन्ध-मण्डल बनाम मो० उस्मान : सिविल अपील सं० 199(एल)/78 जिसका विनिश्चय 24-8-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

12. धारा 33-ग(2)—औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णय में कारखाने में नियोजित सभी प्रवर्गों के कर्मकारों को जिनमें दिल्ली शाखा में नियोजित साधारण कर्मचारीवृन्द भी शामिल था, संदेय महंगाई भत्ते का उल्लेख किया जाना—गाजियाबाद में नियोजक के कारखाने में नियोजित कर्मकारों के सम्बन्ध में क्या यह अधिनिर्णय लागू होगा—धारा 33-ग(2) के अधीन कर्मकारों का आवेदन—क्या महंगाई भत्ते में परिवर्तन के लिए यह मूल मांग के समान है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित—धारा 33-ग(2) के अधीन किए गए अपने आवेदन में कर्मकारों ने जो मांग की थी वह यह थी कि वे "दिल्ली शाखा में नियोजित साधारण कर्मचारिवृन्द भी शामिल है" पद के अन्तर्गत आते हैं और इसीलिए अधिनिर्णय उन्हें भी लागू होता है। जो कर्मकार दिल्ली शाखा के प्रशासनिक और प्रबंन्धकीय नियन्त्रण में थे, वे 'साधारण कर्मचारिवृन्द' पद के अन्तर्गत आएंगे। कारखाने में कर्मकारों द्वारा नई मांग किए जाने का कोई प्रश्न नहीं है। यद्यपि गाज़ियाबाद, तकनीकी दृष्टि से, दिल्ली से बाहर है, तथापि वह दिल्ली का एक उपनगर है और दोनों स्थानों में मूल्य-ढांचा प्रायः एक-सा है।

गोवर्धन प्रसाद बनाम मैसर्स इण्डियन आक्सीजन लिमिटेड का प्रबन्ध-मण्डल : सिविल अपील सं० 1556/82 जिसका विनिश्चय 24-8-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

13. अधिकरण द्वारा बढ़ाए गए महंगाई भत्ते को मंजूरीं—नियोजक एक घाटे पर चलने वाला यूनिट होना—क्या न्यायालय नियोजक की कठिन वित्तीय स्थिति को देखते हुए बढ़ाए गए महंगाई भत्ते को कम कर सकता है ?

देखिए : महंगाई भत्ता (मद सं० 6)

ब्रिटिश इण्डिया कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम **ओद्योगिक अधिकरण, पंजाब** : जिसका विनिश्चय 24-8-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

मोटरयान अधिनियम, 1939 :

14. धारा 63(7) और 62—परिधि—पूरे भारत में चलाने के लिए पर्यटन गाड़ियों के लिए अस्थायी परमिट—क्या प्रादेशिक परिवहन प्राधिकरण ऐसा परमिट जारी कर सकता है ?

अधिनिर्धारित—प्रादेशिक परिवहन प्राधिकरण नियमित परमिट या ठेका वाहन परमिट की मंजूरी के लम्बित रहते हुए अस्थायी अखिल भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर्यटन परमिट देने के लिए सक्षम नहीं है। ऐसा परमिट मंजूर करने की संकल्पना अखिल भारतीय पर्यटन परमिट की संकल्पना के लिए अपरिचित है।

> एस० कानन बनाम सचिव, कर्नाटक राज्य प्रादेशिक परिवहन प्राधिकरण : रिट पिटीशन सं० 7897/83 जिसका विनिश्चय 29-8-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी

दण्ड संहिता :

15. धारा 302—हत्या—उच्च न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील—उच्चतम न्यायालय इसमें कब हस्तक्षेप करेगा ?

अभिनिर्धारित—जब उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने में और अपने निष्कर्षों को विचारण न्यायालय के समक्ष दिए गए साक्ष्य के आधार पर निकालने की अपेक्षा अनुमान मात्र पर अधिक करने में विधि की भारी गलती की हो, तो यह न्यायालय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करके उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करेगा। प्रस्तुत मामले में, अभियोजन का पक्षकथन युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति का आदेश विधि के मुद्दे पर गलत था जोकि इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त है।

> **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरी राम** : दांडिक अपील सं० 450/77 जिसका विनिश्चय 7-9-1983 को किया गया।

न्या० एस० मुर्तजा फजल अली और ठक्कर

16. धारा 302—दण्डादेश—अभियुक्त के अपराध के बारे में उच्च न्यायालय के दो न्यायमूर्तियों में असहमति—उच्च न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्डादेश घटाकर आजीवन कारावास में बदला जाना—क्या उच्चतम न्यायालय इसमें हस्तक्षेप करेगा ?

अभिनिर्धारित—यदि उच्च न्यायालय मृत्यु दण्डादेश को कायम रखता तो यह उसमें हस्तक्षेप नहीं करता, किन्तु चूंकि उच्च न्यायालय ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दण्ड घटाकर उसे आजीवन कारावास में बदल दिया है, इसलिए यह न्यायालय सेशन न्यायाधीश द्वारा दिए गए मृत्यु दण्डादेश को पुन: स्थापित नहीं करेगा।

वी० के० सक्सेना (डा०) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : विशेष इजाज़त पिटीशन (दाण्डिक) सं० 3372/80 जिसका विनिश्चय 29-8-1983 को किया गया।

मु० न्या० वाई० वी० चन्द्रचूड़ और न्या० ए० एन० सेन और रंगनाथ मिश्र

17. दण्डादेश—मामला संस्थित करने की तारीख से निर्णय की तारीख तक 15 वर्ष का अन्तराल—क्या यह परिस्थिति दण्ड को घटाने वाली परिस्थिति है ?

अभिनिर्धारित—अभियोजन और दोषसिद्धि की तारीख के बीच कितना भी समय हो गया हो, जब एक बार अभियुक्त उस पर आरोपित अपराध का दोषी पाया जाए, तो विधि के अनुसार ही कार्यवाही की जानी चाहिए।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरी राम : दांडिक अपील सं० 450/77 जिसका विनिश्चय 7-9-1983 को किया गया।

न्या० एस० मुर्तज़ा फज़ल अली और ठक्कर

कराधान :

18. आमोद तथा पण कर अधिनियम, 1937 (संयुक्त प्रान्त अधिनियम)—धारा 2(3)—परिधि—आमोद—आमोद है या नहीं, यह अवधारित करने की कसौटियां—वीडियो खेल—कोई प्रदेश-शुल्क न लिया जाना—दर्शकों से अपेक्षा कि वे बक्से में 15 पैसे जमा करें—क्या ऐसा संग्रहण आमोद कर से बाहर है ?

अभिनिर्धारित—अधिनियम के अर्थ में किसी प्रदर्शन को आमोद की संज्ञा देने के लिए यह आवश्यक है कि किसी सार्वजनिक हाल में प्रदर्शित किया जाए जहां आम आदमी तमाशा देखते हैं और उससे कुछ मनोरंजन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भी होना चाहिए और साथ ही ऐसा प्रदशन भी होना चाहिए, जिसमें बुद्धि का प्रयोग हो। हाल में प्रवेश निःशुल्क हो सकता है, किन्तु यदि तमाशा दिखाने वाला उससे धन कमाता है तो वह आमोद होगा। 'आमोद' शब्द के अर्थ के मूल्यांकन में प्रदर्शन की अवधि या यह तथ्य सर्वथा असंगत है कि प्रचालक जो स्वयं संदेय करता है, उससे प्रमुदित महसूस करता है।

गीता एन्टरप्राइजेज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य : दाण्डिक रिट पिटीशन सं० 1731/81 जिसका विनिश्चय 5-9-1983 को किया गया।

न्या० एस० मुर्तज़ा फज़ल अली ए० वरदराजन और ठक्कर

निर्णय-सूची

मद सं०

1. अभिनाश चन्द्र गौतम, **बनाम** संघ शासित प्रदेश, त्रिपुरा (4) (अप्रकाशनीय)
2. ब्रिटिश इण्डिया कार्पोरेशन लिमिटेड **बनाम** औद्योगिक अधिकरण, पंजाब (6 और 13) (अप्रकाशनीय)
3. आयकर आयुक्त, मुम्बई **बनाम** महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा लिमिटेड (1 और 8) (प्रकाशनीय)
4. गीता एन्टरप्राइजेज **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (18) (प्रकाशनीय)
5. गोपाल कृष्ण मेनन **बनाम** डी राजा रेड्डी (5) (प्रकाशनीय)
6. गोवर्धन प्रसाद **बनाम** मैसर्स इण्डियन आक्सीजन लिमिटेड का प्रबन्ध-मण्डल (12) (अप्रकाशनीय)
7. आयरन एण्ड मैटल ट्रेडर्स प्रा० लि० **बनाम** एम० एस० हास्केल (10) (अप्रकाशनीय)
8. एस० कानन बनाम सचिव, कर्नाटक राज्य क्षेत्रीय परिवहन अधिकरण (2 और 14) (प्रकाशनीय)
9. हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि० का प्रबन्ध-मंडल **बनाम** मोहम्मद उस्मान (11) (अप्रकाशनीय)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

10. शाइनिंग टेलर्स बनाम औद्योगिक अधिकरण-11, उत्तर प्रदेश (9) (अप्रकाशनीय)

11. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरी राम (16) (प्रकाशनीय)

12. वी० के० सक्सेना (डा०) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (7, 15 और 17) (प्रकाशनीय)

13. विनय रामपाल (डा०) बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य (3) (अप्रकाशनीय)

---

17 सितम्बर, 1983 को समाप्त सप्ताह

आन्ध्र प्रदेश (एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस एण्ड लाइवस्टाक) मार्केट्स ऐक्ट, 1966 :

1. धारा 7(6) और 12(1) तथा नियम 74(1)—विधिमान्यता—क्या ये नियम संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन वाले मूल अधिकार का अतिलंघन करते हैं ?

अभिनिर्धारित—(i) विधान के प्रयोजन और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए धारा 7(6) द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन संविधान के अनुच्छेद 19(6) के अर्थ में युक्तियुक्त निर्बन्धन है।

(ii) धारा 7(6) और 12(1) सुभिन्न और पृथक् उद्देश्य प्राप्त करने के लिए अभिप्रेत हैं तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में लागू होती हैं।

(iii) नियम 74(1) विधिमान्य है।

श्री निवास जनरल ट्रेडर्स बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य : रिट पिटीशन 2727/81 जिसका विनिश्चय 6-9-1983 को किया गया।

न्या० ए० पी० सेन, वेंकटरामय्या और आर० बी० मिश्र

सिविल प्रक्रिया संहिता :

2. आदेश 11, नियम 10-क—परिधि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित—नियम 10-क किसी वाद (या अपील) के पक्षकार की ओर से हाजिर होने वाले काउन्सेल को यह व्यादेश देता है कि ज्यों ही उसे अपने मुवक्किल की मृत्यु के बारे में जानकारी मिले त्यों ही वह न्यायालय को उसकी जानकारी दे। यह नियम इसलिए समाविष्ट किया गया था जिससे कि प्रक्रियात्मक न्याय अधिष्ठायी न्याय से आगे न निकल जाए। प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी ने मृतक मूल प्रत्यर्थी के स्थान पर प्रतिस्थापन के लिए उसकी मृत्यु के एक वर्ष से भी अधिक बाद आवेदन किया और उसके बाद दो सप्ताह के भीतर अपीलार्थियों ने प्रतिस्थापन के लिए अनुज्ञा मांगी तथा विलम्ब की माफी के लिए अनुरोध किया। यह मालूम नहीं है कि प्रत्यर्थी या उसके अधिवक्ता ने अपीलार्थियों पर कब सूचना तामील की थी। इन परिस्थितियों में अपीलार्थी प्रतिस्थापन का आवेदन करने में पर्याप्त हेतुक द्वारा निवारित था, अतः विलम्ब माफ किया जाना चाहिए।

गंगाधर बनाम राज कुमार : सिविल अपील सं० 6731/83 जिसका विनिश्चय 26-8-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई और रंगनाथ मिश्र

3. धारा 80—राज्य को जारी सूचना—क्या वाद में सम्मिलित किए गए लोक अधिकारी को पृथक् सूचना जारी की जाए ?

अभिनिर्धारित—जब एक बार धारा 80 के अधीन राज्य को सूचना जारी कर दी गई तो लोक अधिकारी को जिसे प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित किया गया, कोई सूचना जारी की जानी आवश्यक नहीं थी। वाद राज्य के विरुद्ध था और लोक अधिकारी को वादी के कब्जे में हस्तक्षेप के राज्य के अभिकरण के रूप में सम्मिलित किया गया था।

गुलाम रसूल बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य** : सिविल अपील सं० 825/78 जिसका विनिश्चय 14-9-1983 को किया गया।

न्या० ए० एन० सेन और रंगनाथ मिश्र

संविधान, 1950 :

4. अनुच्छेद 136—परिधि—अधिकारिता—औद्योगिक विवाद।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित—अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता प्रधानतः पर्यवेक्षणात्मक है किन्तु न्यायालय सारवान न्याय करने के लिए सभी आवश्यक अपीली शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। इस अधिकारिता के प्रयोग में न्यायालय को वादकालीन प्रक्रमों पर और आरम्भिक विवाद्यकों के बारे में विशेष अधिकरणों द्वारा अधिकारिता के प्रयोग में हस्तक्षेप करने के लिए बहुत अधिक इच्छुक नहीं होना चाहिए।

डी० पी० महेश्वरी बनाम दिल्ली प्रशासन : सिविल अपील सं० 3844 (एन० एल०)/83 जिसका विनिश्चय 14-9-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई, चिन्नप्पा रेड्डी और वरदराजन

5. अनुच्छेद 226—उच्च न्यायालय की अधिकारिता—औद्योगिक विवाद।

अभिनिर्धारित—चूंकि इस अनुच्छेद के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता पर्यवेक्षणात्मक होती है, इसलिए उसे वादकालीन प्रक्रमों पर और आरम्भिक विवाद्यकों के बारे में विशेष अधिकरणों की अधिकारिता के प्रयोग में हस्तक्षेप करने के लिए बहुत अधिक आग्रह नहीं करना चाहिए। कर्मकारों के हितों के प्रतिकूल नियोजकों द्वारा इस अधिकारिता का शोषण नहीं करने दिया जाना चाहिए।

कोई भी अपील न्यायालय तथ्य संबंधी प्रश्नों के बारे में विनिर्दिष्ट साक्ष्य के बिना, साधारणीकरण के आधार पर, श्रम न्यायालय से भिन्न मत अपनाने के लिए हकदार नहीं है। तब और भी कम जबकि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के अधीन पर्यवेक्षणात्मक अधिकारिता का प्रयोग कर रहा हो।

डी० पी० महेश्वरी बनाम दिल्ली प्रशासन : सिविल अपील सं० 3844(एन०एल०)/83 जिसका विनिश्चय 14-9-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई, चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिल्ली भूमि सुधार अधिनियम, 1954 :

6. धारा 13(2)—परिधि—अभिधारी को भूमिधर घोषित करने में विलम्ब या असफलता—क्या इससे अभिधारी भूमिधरी अधिकार अर्जित करने के लिए हकदार नहीं रहेगा ?

अभिनिर्धारित—उपायुक्त या राजस्व सहायक द्वारा अभिधारी को भूमिधर के रूप में घोषित करने में विलम्ब या ऐसी घोषणा न करने से अभिधारी अधिनियम के अधीन अधिकार अर्जित करने से निर्हकित नहीं हो जाएगा।

फतेह सिंह बनाम सेवा राम : सिविल अपील सं० 195/70 जिसका विनिश्चय 13-9-1983 को किया गया।

न्या० डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

उत्पाद-शुल्क :

7. पंजाब शराब अनुज्ञप्ति नियम, 1956—नियम 36(3)—अनुज्ञप्तिधारी द्वारा संदाय में व्यतिक्रम किया जाना—फिर से विक्रय नीलाम किया जाना—दोबारा नीलामी के लिए कोई प्रचार न किया जाना—निजी बातचीत द्वारा अनुज्ञप्ति दी जानी—क्या अनुज्ञप्तिधारी अपनी बोली और पुनः नीलामी से मूल रकम का अन्तर देने के लिए दायी है ?

अभिनिर्धारित—जब किसी नियम के अनुसार किसी नीलाम विक्रय का प्रचार किया जाना आवश्यक हो तो आशयित विक्रय की पहले से पर्याप्त सूचना और उसके तात्विक निबंधन जनसाधारण को या कम से कम उन लोगों को जो इस प्रकार के कारबार में लगे हुए हैं, जो कि नीलाम विक्रय की विषय वस्तु है, बताए जाने चाहिएं। इस मामले में सम्यक् प्रचार न करने से पुनः नीलामी दूषित हो गई है। निजी बातचीत द्वारा अनुज्ञप्ति की पुनः मंजूरी नियमों के अनुसार नहीं थी। जिस समय नीलामी चल रही थी; उत्पाद शुल्क प्राधिकारी अपना विचार बदलकर लोक नीलामी आयोजित नहीं कर सकते और उसी दिन उसी क्षण निजी बातचीत द्वारा अनुज्ञप्तियां नहीं दे सकते। ऐसे विनिश्चय से मनमानेपन की गंध आती है।

हरियाणा राज्य बनाम जागे राम : सिविल अपील सं० 1507/69 जिसका विनिश्चय 12-9-1983 को किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मु० न्या० वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति आर० एस० पाठक और सव्यसाची मुखर्जी

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 :

8. निलम्बन—निलम्बन के दौरान निर्वाह-भत्ता दिया जाना—क्या ऐसा करना नियोजक के पूर्ण विवेकाधिकार में है ?

माननीय आधारों पर कर्मचारी को निलम्बन की तारीख तक चार वर्ष की अवधि के दौरान निर्वाह भत्ता दिया गया था ।

[न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि नियोजक द्वारा कर्मचारी के निलम्बन का आदेश सेवा संविदा के प्रवर्तन के रूप में है—इस निमित्त नियोजक को कितना विवेकाधिकार प्राप्त है, यह प्रश्न किसी बेहतर मामले में विनिश्चित किए जाने के लिए छोड़ा जाता है ।]

वी० सुब्रह्मण्यम बनाम **स्टेट बैंक आफ इण्डिया की कर्मचारिवृन्द सहकारी समिति**

न्या० डी० ए० देसाई ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

9. अधिकरण को किए गए निर्देश में आरम्भिक विवाद्यक उठाए जाने—ऐसे विवाद्यकों का विनिश्चय करने में अधिकरण का कर्तव्य ।

अभिनिर्धारित—औद्योगिक अधिकरणों को सभी विवादग्रस्त प्रश्नों का विनिश्चय करना चाहिए किन्तु साथ ही साथ उनमें से कुछ का विचारण आरम्भिक विवाद्यकों के रूप में नहीं करना चाहिए । अधिकरणों को अपने आप से यह अवश्य पूछना चाहिए कि क्या आरम्भ में ऐसा भागतः न्याय-निर्णयन वस्तुतः आवश्यक है और क्या इससे अन्य दुखद परिणाम नहीं निकलेगे । अधिकरणों का गठन विशेष प्रकार के विवाद्यकों का शीघ्र विनिश्चय करने के लिए किया जाता है । अतः यह आवश्यक है कि उनकी अधिकारिता को आरम्भिक आक्षेपों द्वारा व्यर्थ न किया जाए ।

डी० पी० महेश्वरी बनाम दिल्ली प्रशासन : सिविल अपील सं० 3844(एन० एल०)/83 जिसका विनिश्चय 14-9-1983 को किया गया ।

न्या० डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० वरदराजन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 :

10. धारा 3(2)—पिटीशनरों के जेल में रहते हुए निरोध आदेश पारित किया जाना—क्या इससे निरोध आदेश दूषित हो गया ? उसी अपराध की बाबत न्यायालय में दाण्डिक कार्यवाहियों का लम्बित होना—क्या यह निरोध के लिए वर्जन है ? शान्तिपूर्ण सभा पर बम फेंका जाना—क्या यह लोक व्यवस्था भंग करने के समान होगा ? प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में लोक व्यवस्था भंग की आशंका का उल्लेख न किया जाना—क्या इससे आदेश दूषित हो गया है ?

अभिनिर्धारित—(i) निरोध प्राधिकारी यह जानता था कि पिटीशनर जेल में हैं और उसका समाधान हो गया था कि उन्हें लोक-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली रीति से कार्रवाई करने से निवारित करना आवश्यक है। (ii) दाण्डिक अभियोजन का लम्बन निवारक निरोध के लिए वर्जन नहीं है। यह निरोध प्राधिकारी के व्यक्तिपरक समाधान पर छोड़ दिया गया है कि वह कौन सा मार्ग अपनाए। (iii) सांस्कृतिक कार्यक्रम में एकत्र लोगों पर बम फेंकने से प्रशान्ति भंग हो जाती है और जन-जीवन भी अस्त-व्यस्त हो जाता है। ऐसी एक घटना से भी निरोध प्राधिकारी का पर्याप्त समाधान हो सकता है कि यदि वे निरुद्ध न किए गए तो वे लोक-व्यवस्था बनाए रखने के प्रतिकूल कार्रवाइयों में भाग लेंगे। (iv) प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में लोक-व्यवस्था भंग के बारे में अभिकथन न करने से निरोध आदेश पर प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि निरोध प्राधिकारी का समाधान हो गया था कि यदि पिटीशनरों को जमानत पर छोड़ दिया गया तो उनसे लोक व्यवस्था भंग होने की आशंका है।

अलीजान मियां बनाम जिला मजिस्ट्रेट, धनबाद : रिट पिटीशन (दाण्डिक) सं० 678/83 जिसका विनिश्चय 13-9-1983 को किया गया।

न्या० ए० पी० सेन, ई० एस० वेंकटरामय्या और आर० बी० मिश्र

11. धारा 3(2) सपठित धारा 3(3)—निरुद्ध व्यक्ति की कार्रवाइयों से प्रभावित समाज के लिए आवश्यक प्रदायों और सेवाओं के विवरण निरोध आदेश में न दिए जाने—वे विशिष्टियां निरोध के आधारों में दी जानी—क्या इससे निरोध आदेश दूषित हो जाएगा ? क्या निरुद्ध व्यक्ति के पिछले आचरण के आधार पर निरोध आदेश किया जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित—(i) निरोध आदेश में विशिष्टियां न देने से आदेश दूषित नहीं होगा यदि निरोध के आधारों में उनका उल्लेख कर दिया जाता है। निरोध के आधार निरोध आदेश के शीघ्र बाद निरुद्ध व्यक्ति पर तामील कर दिए गए हैं। (ii) निरुद्ध व्यक्ति के पिछले आचरण को ध्यान में रखते हुए और भविष्य में ऐसे आचरण की पुनरावृत्ति की युक्तियुक्त आशंका के आधार पर निरोध प्राधिकारी निरोध आदेश पारित कर सकता है जिससे कि निरुद्ध व्यक्ति को भविष्य में ऐसी कार्यवाही में भाग लेने से रोका जा सके।

जिला मजिस्ट्रेट बनाम सरत भदोई : दांडिक अपील सं० 468/83 जिसका विनिश्चय 14-9-1983 को किया गया।

न्या० ए० एन० सेन और रंगनाथ मिश्र

कराधान :

12. कर और शुल्क—अन्तर।

अभिनिर्धारित – इस पारम्परिक विचारधारा में कि शुल्क के लिए वास्तविक तत्प्रतिदान होना चाहिए, भारी परिवर्तन हो गया है। कोई उद्ग्रहण शुल्क है या नहीं, यह निर्धारित करने की वास्तविक कसौटी यह होनी चाहिए कि उसका प्रधान और अनिवार्य प्रयोजन किसी विनिर्दिष्ट क्षेत्र या वर्ग को विनिर्दिष्ट सेवाएं देना है। इससे कोई परिणाम नहीं निकल सकता कि राज्य को अन्ततोगत्वा और प्रत्यक्षतः उस शुल्क से फायदा हो सकता है। कर और शुल्क में कोई मूल अन्तर नहीं है। दोनों लोक प्राधिकारियों द्वारा अनिवार्य वसूली हैं। मात्र व्यवस्था के कारण उद्ग्रहण शुल्क होना बन्द नहीं हो जाता और न ही प्रत्येक व्यक्ति को जो सेवा से फायदा प्राप्त करता है, प्राधिकारी द्वारा की गई वास्तविक सेवा से कोई सीधा सम्बन्ध होना आवश्यक है।

केवल कृष्ण पुरी बनाम पंजाब राज्य : (1979)3 एस० सी० आर० 1217 वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय उस मामले के तथ्यों तक सीमित रहना चाहिए।

देखिए : आन्ध्र प्रदेश (एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस एंड लाइवस्टाक) मार्केट्स ऐक्ट, 1966 (मद सं० 1)

श्री निवास जनरल ट्रेडर्स बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य : जिसका विनिश्चय 6-9-1983 को किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायाधिपति ए० पी० सेन, ई० एस० वेंकटरामय्या और आर० बी० मिश्र।

निर्णय-सूची

		पद सं०	
1.	अलीजान मियां बनाम जिला मजिस्ट्रेट, धनबाद	(10)	(प्रकाशनीय)
2.	जिला मजिस्ट्रेट बनाम सरत मुदोई	(11)	(प्रकाशनीय)
3.	फतेह सिंह बनाम सेवा राम	(6)	(प्रकाशनीय)
4.	गंगाधर बनाम राज कुमार	(2)	(अप्रकाशनीय)
5.	गुलाम रसूल बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य	(3)	(अप्रकाशनीय)
6.	डी० पी० महेश्वरी बनाम दिल्ली प्रशासन	(4, 5 और 9)	(प्रकाशनीय)
7.	श्री निवास जनरल ट्रेडर्स बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य	(1 और 12)	(प्रकाशनीय)
8.	हरियाणा राज्य बनाम जागे राम	(7)	(प्रकाशनीय)
9.	वी० सुब्रह्मण्यम बनाम कर्मचारिवृन्द सहकारी समिति, (स्टेट बैंक आफ इंडिया)	(8)	(अप्रकाशनीय)

24 सितम्बर, 1983 को समाप्त सप्ताह

सिविल सेवा :

1. एक कर्मचारी का चोरी के मामले में भाग लेना—सेवोन्मुक्त किया जाना—बाद में दाण्डिक मामले में दोषमुक्त किया जाना—क्या सेवोन्मुक्ति विधिमान्य है ?

अभिनिर्धारित—सेवोन्मुक्ति का आदेश मुख्यत: इस आधार पर दिया गया कि वह चोरी के मामले में दोषसिद्ध किए जाने के लिए संभाव्य था अर्थात् उसकी दोषसिद्धि होने की संभावना का प्राधिकारी पर बहुत प्रभाव पड़ा। किन्तु उसे दोषमुक्त कर दिया गया। यदि वह सेवोन्मुक्ति के आदेश से पहले सेवोन्मुक्त कर दिया जाता तो उसे सामान्य तौर पर सेवा में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

6 वर्ष का विस्तार दिया जाता। सेवोन्मुक्ति के बाद उसे अच्छे आचरण का प्रमाण-पत्र दिया गया। इन बातों को ध्यान में रखते हुए वास्तविक दावे के गुणागुण पर विचार किए बिना उसे उसके अतिरिक्त जिसके लिए वह वास्तविक रूप से हकदार था, प्रतिकर के रूप में 35,000 रुपये की धनराशि दी जानी चाहिए।

सोहन सिंह बनाम भारत संघ : सिविल अपील सं० 727/78 जिसका विनिश्चय 15-9-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति ए० एन० सेन और रंगनाथ मिश्र।

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 :

2. धारा 354(5)—मृत्यु दण्ड—फांसी लगाकर मृत्युदण्ड दिया जाना—क्या सांविधानिक दृष्टि से यह विधिमान्य है ?

अभिनिर्धारित—धारा 354(5) द्वारा विहित मृत्युदण्ड देने की पद्धति से संविधान के अनुच्छेद 21 के उपबंधों का उल्लंघन नहीं होता। अन्य विभिन्न पद्धतियों में से कोई भी अर्थात् विद्युत कुर्सी या गैस कक्ष या प्राणान्तक इंजेक्शन या गोली मारना, जिनका सुझाव मृत्युदण्डादेश को कार्यरूप देने के लिए दिया गया था फांसी लगाने की पद्धति से अधिक कोई सुभिन्न लाभप्रद नहीं है। इस सम्बन्ध में काफी वैज्ञानिक और विधिक राय है कि फांसी लगाना मृत्युदण्ड देने का निर्मम ढंग नहीं है। (ii) मृत्युदण्डित व्यक्ति का अवमान, प्रपीड़न या निरादर नहीं किया जा सकता। इनमें से कुछ भी करना ऐसा दण्ड देने के समान होगा जिसे विधि का प्राधिकार प्राप्त नहीं है। किसी भी दण्डादेश के निष्पादन में किसी भी प्रकार का प्रपीड़न बर्बरता, निर्ममता, अवमान और निरादर अनुज्ञेय नहीं है। फांसी लगाने की प्रक्रिया में ऐसा कुछ नहीं होता; (iii) बचन सिंह वाले मामले की सीमाएं परिरक्षित की जानी चाहिए। यदि व्यष्टिगत हित की जगह समष्टिगत हित में यह आवश्यक है कि आपवादिक मामलों में मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए तो उन्हीं समष्टिगत हितों की दृष्टि से उस दण्डादेश का निष्पादन न्यायोचित होगा यद्यपि वह पूरी तरह अनुच्छेद 21 की अपेक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए।

इस प्रकार के मामलों में राज्य को यह सिद्ध करना होगा कि मृत्यु-दण्ड देने के लिए संहिता की धारा 354(5) में विहित प्रक्रिया न्यायसंगत,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऋजु और युक्तयुक्त है। इस भार के अन्तर्गत यह सिद्ध करने की बाध्यता भी है कि उक्त प्रक्रिया कठोर, क्रूर और निरादरपूर्ण नहीं है।

दीना उर्फ दीनदयाल बनाम भारत संघ : रिट पिटीशन सं० 503/83 जिसका विनिश्चय 23-9-83 को किया गया।

मु० न्या० वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति आर० एस० पाठक और सव्यसाची मुखर्जी।

संविधान, 1950 :

3. अनुच्छेद 21—किसी व्यक्ति को प्राण या दैहिक स्वाधीनता से वंचित करना—सबूत का भार किसपर है ?

अभिनिर्धारित—अनुच्छेद 14 के अधीन उत्पन्न होने वाले मामलों में सबूत के भार का नियम लागू होता है जो कि उस नियम से भिन्न है जो संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 के अधीन उत्पन्न मामलों में लागू होते हैं। अनुच्छेद 21 के अधीन उत्पन्न मामलों में यदि यह प्रतीत हो कि कोई व्यक्ति प्राण या दैहिक स्वाधीनता से वंचित किया जा रहा है तो उस विधि की सांविधानिक विधिमान्यता सिद्ध करने का भार राज्य पर है। उस भार के अन्तर्गत यह साबित करने की बाध्यता भी है कि उक्त प्रक्रिया कठोर, क्रूर या निरादरपूर्ण नहीं है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(5) की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न पर राज्य ने यह साबित करने के अपने भार का निर्वहन कर दिया है कि फांसी लगाने की पद्धति से संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं होता।

(न्या० सव्यसाची मुखर्जी, सम्मत निर्णय देते हुए) :

माननीय न्यायाधिपति इस बहुमत से सहमत थे कि ज्योंही यह दर्शित कर दिया जाए कि कोई अधिनियम अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत अधिकार का अतिक्रमण करता है तो यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या राज्य ने यह साबित कर दिया है कि क्या उस व्यक्ति को उसके प्राण, या दैहिक स्वाधीनता से वंचित विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार किया गया है। किन्तु यह राय आरक्षित रखी गई कि क्या ऐसे सभी मामलों में यह साबित करने का आरम्भिक भार राज्य पर होगा कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया, न्यायसंगत, ऋजु और युक्तयुक्त है।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दीना उर्फ दीनदयाल बनाम भारत संघ : रिट पिटीशन सं० 503 और अन्य/83 जिसका विनिश्चय 23-9-1983 को किया गया।

मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति आर० एस० पाठक और सव्यसाची मुखर्जी।

निर्वचन :

4. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(5) द्वारा विहित फांसी लगाकर मृत्युदण्डादेश का निष्पादन—क्या न्यायालय को विधानमण्डल की प्रज्ञा के प्रश्न पर विचार नहीं करना चाहिए ?

अभिनिर्धारित—विधानमण्डल का काम यह उपबन्ध करके समाप्त हो जाता है जो कुछ मृत्युदण्ड देने की सर्वोत्तम पद्धति समझी गई है। जहां विधानमण्डल का काम खत्म होता है, न्यायपालिका का काम शुरू होता है। दण्डादेश को कार्यान्वित करने या निष्पादित करने के लिए विधानमण्डल द्वारा विहित पद्धति की सांविधानिकता के बारे में अभिनिश्चय करने का काम न्यायालयों का है। वह पद्धति संविधान की अपेक्षाओं के अनुरूप है या नहीं, यह विषय न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन ही नहीं अपितु न्यायपालिका के कार्य का विधिसम्मत अंग है।

दीना उर्फ दीन दयाल बनाम भारत संघ : रिट पिटीशन सं० 503 और अन्य/83 जिसका विनिश्चय 23-9-1983 को किया गया।

मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति आर० एस० पाठक और सव्यसाची मुखर्जी।

मोटरयान अधिनियम, 1939 :

5. कर्नाटक टैक्सेशन एण्ड सर्टेन अदर लाज (अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1979—परिवहन गाड़ियों पर कर में वृद्धि—क्या इससे अनुच्छेद 301 का उल्लंघन होता है ? क्या कर का भार परिवहन गाड़ियों के विभिन्न वर्गों पर बराबर-बराबर बांटा जाए ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित—नई सड़कें बनाने और वर्तमान सड़कों के रख-रखाव के लिए तथा नई अनेक सुविधाएं देने के लिए प्रतिकरात्मक करों द्वारा राजस्व की वृद्धि प्रतिकरात्मक करों के अन्तर्गत आएगी। किसी कर को प्रतिकरात्मक के रूप में न्यायोचित ठहराने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कर के रूप में संगृहीत समस्त राजस्व सड़कों के निर्माण और रख-रखाव पर तथा अन्य सुविधाएं देने के लिए खर्च किया जाए।

यह सही है कि चुंगी समाप्त करने से हुई कमी को पूरा करने के लिए परिवहन गाड़ियों पर कर में वृद्धि की गई किन्तु चुंगी समाप्त करने से अब माल और यात्री गाड़ियां आसानी से और तेजी से आ जा सकती हैं। चुंगी समाप्त करने से वाणिज्य और व्यापार को लाभ पहुंचा है। जब यात्री गाड़ियों पर कर बढ़ाया जाता है तो उसका भुगतान व्यक्ति को करना होता है जबकि मालगाड़ियों की स्थिति में यह भार असंख्य उपभोक्ताओं पर पड़ेगा। दूसरे माल गाड़ियां और यात्री गाड़ियां एक ही वर्ग में नहीं आतीं।

मीनाक्षी उर्फ रामा बाई (श्रीमती) बनाम कर्नाटक राज्य : सिविल अपील सं० 2878-87/81 और अन्य जिसका विनिश्चय 20-9-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ए० वरदराजन।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 :

6. धारा 5(1)(घ)—यह अभिकथन किया गया कि सरकारी सेवक ने रिश्वत ली है—परिस्थितिजन्य साक्ष्य कब स्वीकार किया जा सकता है—क्या परिवादी और पुलिस अधिकारी ने झूठा मामला गढ़ा है ?

अभिनिर्धारित—जब परिस्थितिजन्य साक्ष्य हो, जो कि अभियुक्त के अपराध से संगत और उसकी निर्दोषिता से संगत नहीं है, तो अभियोजन पक्ष के मामले को कायम रखने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। प्रस्तुत मामले में, परिस्थितिजन्य साक्ष्य इस प्रकार का है कि इससे अभियोजन-पक्ष का मामला पर्याप्त रूप से सम्पुष्ट हो जाता है।

न तो परिवादी और न ही पुलिस अधिकारी भ्रष्टाचार का झूठा मामला गढ़ेंगे क्योंकि उसके फलस्वरूप असंख्य कठिनाइयां और जोखिम उठानी पड़ती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जी० के० घोष (डा०) : दांडिक अपील सं० 609/81 जिसका विनिश्चय 31-9-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति एस० मुर्तज़ा फज़ल अली; वरदराजन और ठक्कर।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 :

7. धारा 41(ख)—परिधि—क्या न्यायालय किसी व्यक्ति को उस न्यायालय में जो उसके अधीनस्थ नहीं है, जिससे व्यादेश की प्रार्थना की गई है, कार्यवाही संस्थित करने से अवरुद्ध करने के लिए व्यादेश दे सकता है ?

अभिनिर्धारित—(i) न्यायालय ऐसा व्यादेश नहीं दे सकता जो किसी व्यक्ति को समन्वय या वरिष्ठ अधिकारिता के न्यायालय में कोई कार्यवाही संस्थित करने से या उसकी पैरवी करने से अवरुद्ध करे। (ii) समुचित मामलों में न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए उन मामलों में अस्थायी व्यादेश दे सकता है जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 के अन्तर्गत नहीं आता। किन्तु अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उसे अधिनियम की धारा 41(ख) के कानूनी उपबन्ध को अनदेखा नहीं करना चाहिए। अन्तर्निहित शक्ति का सहारा किन्हीं कानूनी उपबन्धों को अकृत या विफल करने के लिए नहीं लिया जा सकता।

काटन कार्पोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड बनाम यूनाइटेड इण्डस्ट्रियल बैंक लिमिटेड : सिविल अपील सं० 7348/83 जिसका विनिश्चय 19-9-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और बालकृष्ण एराडी।

नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 :

8. धारा 2(थ)(ii) (iii) और धारा 4(9)—परिधि।

अभिनिर्धारित—धारा 4(9) में अनुध्यात है कि यदि किसी व्यक्ति जिसके पास खाली भूमि है और साथ ही भूमि का दूसरा भाग भी है जिस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर आवासी मकान के साथ भवन है, उस भवन की भूमि और उससे लगी हुई भूमि को खाली भूमि की सीमा संगणित करने के लिए हिसाब में लिया जाएगा। इन दोनों उपबन्धों को एक साथ पढ़ने से पता चलता है कि जहां कोई भवन और आवासीय इकाई है, वहां अधिकतम सीमा संगणित करते समय उस भवन के नीचे का क्षेत्रफल और उस आवासी इकाई का क्षेत्रफल उसमें से अलग करना होगा। यदि ऐसी कोई उपविधियां हैं जो भूमि के किसी भाग को खाली रखना अपेक्षित बनाती हैं तो वह भूस्वामी लाभप्रद उपयोग और उपभोग के लिए अधिक से अधिक 500 वर्गमीटर तथा 500 वर्गमीटर अतिरिक्त क्षेत्रफल अलग रखने के लिए अनुज्ञात होगा। अत: यदि भवन का क्षेत्रफल जमा 500 जमा वर्गमीटर दो हजार वर्गमीटर (अधिकतम सीमा) से कम है, तो उस भूस्वामी को दो हजार वर्गमीटर रखने की इजाजत दी जाएगी और उसकी शेष भूमि यदि अधिक होगी जिसे सरकार ले सकती है, यदि भवन का क्षेत्रफल जमा एक हजार वर्गमीटर दो हजार वर्गमीटर से अधिक है तो वह उसे रखने के लिए हकदार होगा भले ही वह दो हजार वर्गमीटर से अधिक है और उसकी शेष भूमि अधिक होगी जिसे सरकार ले सकती है।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एल० जे० जानसन : सिविल अपील सं० 2005/82 और अन्य जिसका विनिश्चय 8-9-1983 को किया गया।

न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ठक्कर।

निर्णय-सूची

		मद सं०	
1.	काटन कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड बनाम यूनाइटेड इण्डस्ट्रियल बैंक लिमिटेड	(7)	(प्रकाशित)
2.	दीना उर्फ दीन दयाल बनाम भारत संघ	(2, 3 और 4)	(प्रकाशित)
3.	मीनाक्षी उर्फ रामा बाई (श्रीमती) बनाम कर्नाटक राज्य	(5)	(अप्रकाशित)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

4. सोहन सिंह बनाम भारत संघ (1) (अप्रकाशित)

5. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एल० जे० जानसन (8) (प्रकाशित)

6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जी० के० घोष (डा०) (6) (प्रकाशित)

कृ०

————

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.